

# कुंभनदास—

जीवनी, पद-संग्रह और भाषार्थ



प्रकाशक : —

विद्या-विभाग

[ अष्टछाप-स्मारक समिति ]

कांकरोली

[ राजस्थान ]



[ श्री द्वा. अ. माला पुस्तक २२ ]

# “ कुंभनदास ”

[ जीवनी, पद-संग्रह और भावार्थ ]



सम्पादक :—

गो. श्री ब्रजभूषण शर्मा  
पो. कण्ठमणि शास्त्री  
क. श्री गोकुलानन्द शर्मा



प्रकाशक :—

विद्या-विभाग

[ अष्टछाप-स्मारक समिति ]

कांकरोली.

प्रकाशक :—

प०. कण्ठमणि शास्त्री

संचालक :—

विद्या-विभाग, कांकरोली

[ राजस्थान ]

यह पुस्तक पृष्ठ १ से १२८ तक ( केवल मूल पद-संग्रह ) बडौदा, रावपुरा-  
‘ अशोक प्रिन्टरी ’ में सेठ श्री रमणलाल नानालाल शाह ने छापी और  
अन्य सर्व शेष भाग बडौदा-शियाबाग, श्रीकबीर प्रेस में  
पं. श्री. मोतीदासजी चेतनदासजी ने छापा ।

प्रथम संस्करण ] ता. १५, फरवरी १९५४ [ मूल्य—  
१००० — सं. २०१० — ३-०

मुद्रक :—

केवल पद-संग्रह :

‘ अशोक प्रिन्टरी ’ रावपुरा, बडौदा.

भावार्थ और शेष भाग :

‘ श्रीकबीर प्रेस ’ शियाबाग, बडौदा.

❀ श्रीद्वारकेशो जयति ❀

## सम्पादकीय



### पूर्वप्रसंग—

प्रायः २० वर्ष पूर्व का प्रसंग है—‘काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा ‘सूरसामर’ का प्रकाशन प्रारंभ किया गया था। इस महान् ग्रन्थ के पाठ-सम्बादार्थी प्रामाणिक, प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा था।

कांकरोली ‘विद्याविभाग’ की स्थापना हुए थोड़ा ही समय अतीत हुआ था। उसके विशाल हस्तलिखित संग्रहालय—अस्तव्यस्त उत्ताल तरंगा-कुल महासमुद्र—के किस निभृत कोण में किस परिवेष्टन, परिस्थिति में कौनसा ग्रन्थ छिपा पड़ा था, सर्वथा अपरिज्ञात था।

साहित्य-गगन के जैवानुक, सकलकलागुणलिखि, ख्यातनामा विद्वान् तृतीय पीठाधीश गो. श्रीबालकृष्णलालजी महाराज के नित्यलीलास्थ होजाने से साहित्य-जगत् की एक विशेष चहल पहल—जो श्रीरत्नाकरजी, नवनीतजी चतुर्वेद, पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी और बाबू रामकृष्णवर्मा आदि के आयोजनों से परिचालित होरही थी—सहसा ठप्प-सी होगई थी।

कांकरोली के वर्तमान पीठाधीश्वर की स्वल्प वयस्कता के उषःकाल से ही यावदार्थ—कुलकमल—दिवाकर महाराणा उदयपुराधीश श्रीफतहसिंहजी का ललाटंतप शासन चल रहा था। साहित्योपवन का सुहावन सावन आने के लिये समय की बाट जोह रहा था।

किन्हीं पुण्यों के प्रताप से उक्त संग्रहालय की व्यवस्था के दो युगंधर नियत किये गये, एक इन पंक्तियों का लेखक, दूसरे उसके सहयोगी मित्र ध्राफा (सौराष्ट्र) निवासी पं. श्रीजटाशंकर कहानजी शास्त्री। अध्यापन के अतिरिक्त समय ग्रन्थों की सुध्यवस्था का कार्य चल ही रहा था, सहसा राजकीय शासन-परम्परा की सीढियों में ४-५ मास से उत्तरवा चढ़ता ‘काशी नग्नारी प्रचारिणी सभा’ का एक पत्र कांकरोली पहुंचा। ‘सूरसामर’ की हस्तलिखित प्राचीन प्रति भेजने का अनुरोध था।

‘बिल्ली के भाग्य से छींका दूटा’। संस्थाओं से परिचयाभिवृद्धि की अभिलाषा ने सीधा पत्राचार चालू कर दिया। निश्चित हुआ कि—संचालक ‘विद्याविभाग’ स्वयं ‘सूरसागर’ की प्रतियां लेकर ‘सभा’ में उपस्थित हो जायगा।

अ. भा. ब्रा. महासम्मेलन (प्र. अधिवेशन) के अवसर पर उक्त ग्रन्थ की ६-७ प्रतियां कष्ट और लगन के साथ निकालकर काशी ले जाई गईं। ‘सभा’ के कार्यालय में ‘नमोनमस्ते’ के बाद श्रीरत्नाकरजी से परिचय हुआ। स्वर्गीय महाराजश्री की गुणग्राहकता, और वर्तमान व्यवस्था के प्रसंगोपरान्त ‘सूरसागर’ के सम्पादन की बात चली। साथ में लाई हुई सूरसागर की पोथियां करकमलों में समर्पित की गईं। उलटा-सुलटा कर ध्यानपूर्वक उनका निरीक्षण होने लगा।

पर हैं? यह क्या? आग्रह-भरा पत्र लिखकर, सानुरोध सुरक्षा का वचन देकर, आयाचित ‘सूरसागर’ की इतनी प्रतियों को देखकर भी अद्वेय चतुर्वेदीजी के गौरवभरे मुखमण्डल में कुछ भी अन्तर की रेखा नहीं झलकी! आयत सघन अकृतियों की जिम्हता बढ़ती ही गई!! ब्रज-भाषा के सरस कवि की स्मित माधुरी आभासित नहीं हुई!!! वे मुझे और मैं उन्हें २ मिनिट तक निर्निमेष देखते रहे।

अन्ततो गत्वा सहसा मेरे कानों में शब्द पड़े—“पंडितजी? आप मुझे धोखा न दीजिये। ग्रन्थ न देना चाहें न दें? पर हस प्रकार बरगलानें की कोशिश न करें, यह वह प्रति नहीं है—जिसकी हमें आवश्यकता है।”

विदित हुआ कि—“यह सब प्रतियां केवल दशमस्कन्ध की हैं। एक हाथ लम्बी, पौन हाथ चौड़ी, बारह स्कन्धों वाली प्रति जो—मैंने (रत्नाकरजीने) स्वयं कांकरोली में स्वर्गीय महाराजश्री के समक्ष देखी थी, इनमें नहीं है।”

‘प्रथमग्रासे मक्षिकापातः’। अस्तु दिष्टम्।

दिव्यवेशधारी, मूर्तिमान् शास्त्र-स्वरूप, प्रकाण्ड पण्डितों के सम्मेलन द्वारा तात्कालिक मार्ग दर्शन पाकर, दुरितहारिणी जानहवी के अभिषेक से कृतार्थ होकर भी घर आकर रायसागर के तटपर (कांकरोली में) ‘सूरसागर’ का अन्वेषण करने लगा। आरोपित साहित्यिक प्रवञ्चना की कालिका एक छेद वर्षे तक न धुलसकी, न धुलसकी। क्या किया जाता?

सहसा एक दिन सम्पाद मिला कि-महाराजश्री (वर्तमान पीठाधीश गो, श्रीवज्रभूषणलालजी जो अष्टछाप-साहित्य के विशेषज्ञ और प्रधान संपादक हैं) ने गुजरात की अपनी यात्रा में संखेड़ा ग्राम में 'सूरसागर' की वही प्रति प्राप्त करली है। यह प्रति एक तथाकथित वैष्णव के पिता के समय-जो कांकरोली में मंदिर के कार्यवाहक थे-कांकरोली से सरक गई थी-दर्शनीय रूप में विराजमान होकर अपने दिन गिन रही थी।

मानसिक अनुतापपूर्ण साधना और अन्वेषण के फलस्वरूप खोई हुई निधि प्राप्त हुई और वास्तव में प्राप्त हुई। श्रीरत्नाकरजी प्राप्तव्य ग्रन्थरत्न पाकर प्रशान्त बन गये। 'विद्याविभाग' को सौजन्यपूर्ण धन्यवाद का पत्र प्राप्त हुआ-और हिन्दीजगत को 'सूरसागर'। सम्पादन में उक्त प्रति का अच्छा सदुपयोग हुआ। हम लोगों का श्रम सफल हो गया अब मनोरथ के पंख ऊंगने लगे।

### आयोजन—

उसी समय से अष्टछाप की दिव्य वाणी के संकलन, संपादन और प्रकाशन का उत्साह जागरूक हुआ। अध्यवसाय ने करवट बदली। संग्रहालय की व्यवस्था के अनन्तर यावत्प्राप्य पोथीयों से अष्टछापी कवियों के पदों की सूचियाँ बनाई गईं-और पदों का सम्पादन कर क्रमशः प्रकाशन की व्यवस्था चालू की गई।

विद्याविभाग के अन्तर्गत 'शुद्धाद्वैत एकेडमी (अष्टछाप-स्मारक समिति) के सम्पादक-मण्डल ने सूरसागर के अनन्तर (जो काशी ना. प्र. सभा से प्रकाशित होनेवाला था) परमानन्ददास कृत 'परमानन्दसागर' को सभा के अधीक्षाद्वी महोत्सव (सन् १९५०) के उपलक्ष में प्रकाशित करने का संकल्प किया-उसका सुध्यवस्थित प्रामाणिक सम्पादन भी किया, पर व्यय-बाहुद्य के कारण (द्वि. महायुद्ध के समय) उसका मुद्रण प्रारंभ न किया जा सका। उक्त ग्रन्थ आज भी सम्पादित होकर प्रकाशन की ओर उन्मुख हो रहा है।

सामयिक विषम परिस्थितियों के द्वारा विद्याविभाग के ग्रन्थ-प्रकाशन में पड़ी हुई एक लम्बी यवनिका को देखकर सम्पादकों ने अष्टछाप के छोटे संग्रहों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी, जिसके फलस्वरूप गतवर्ष गोविन्दस्वामी के पदों का संग्रह 'गोविन्दस्वामी' के नाम से प्रकाशित किया गया। और अब उसके अनन्तर 'कुंभनदास' के यावत्प्राप्य पदों का संग्रह प्रस्तुत ग्रन्थ रूप में साहित्य-जगत के सन्मुख रखा जारहा है।

## आदर्श प्रतियों—

कुंभनदास के पद—सम्पादनार्थ कांकरोली के सरस्वती—भंडार में ही इतनी सामग्री मिल गई है, जिससे अन्यत्र की प्रतियों की अपेक्षा ही नहीं हुई। ‘कुंभनदास जैसे महानुभावी, मानसीसेवा—परायण भक्तकवि की पद—रचना का इतना विस्तृत आधिक्य भी तो नहीं हैं जो—हमें इस दिशा में अधिक प्रोत्साहित करता। फलतः प्रस्तुत सम्पादन में जिन आदर्श प्रतियों का उपयोग किया गया, उनका परिचय इस प्रकार है।

(१) ‘क’ प्रति—यह प्रति स. भ. के हिन्दी—विभाग में बंध सं. १९/७ पर विद्यमान है। इसमें पत्र १ से ८७ तक पत्रों में कुंभनदास कृत पद हैं, और बाद में पत्र ८७ से १२२ तक नन्ददास कृत, पत्र १२२ से २२५ तक अन्यके पद संग्रहीत हैं। इसमें ‘जन्मोत्सव के पदों’ से प्रारंभ होकर ‘रथयात्रा’ तक पद लिखे गये हैं जिनके बीचमें प्रायः सभी विषयों के पदोंका समावेश हो गया हैं। यहाँ श्लोक सं. ७२५ का निर्देश कर पीछे से ‘मेरी अङ्गियनि यह टेव परी’ यह पद और लिख दिया गया है। ग्रन्थान्त में—“कुंभनदासजी के पद जेते भाले तेते लखे हैं। श्री श्री” ऐसी पुष्टिका दी गई है। इसके लेखनकाल के सम्बन्ध में—“संवत् १८२९ ना वर्षे फाल्गुन भासे कृष्ण पक्षे पष्ठयां रवौ गुर्जरे मेदपाट ज्ञातीय मयारामेण लिखितमिदं पुस्तकम्” ऐसा उल्लेख है। पुस्तक का आकार ४” x ५” गुटकारूप में है, काली स्थानी में सुवाच्य और शुद्धरूप में लेखन धाराबाहिक रूप से है। कहीं कहीं असावधानीवश एकाध पंक्ति या शब्द छूट गया हैं। इसमें संग्रहीत पदों की एकत्र संख्या १९० है। पदों के प्रारंभ में रागों के नाम दिये गये हैं। ‘वर्षोत्सव’ या ‘नित्यलीला’ के पदों का कोई विभाग नहीं है।

इसमें निम्न लिखित विषयों का समावेश है :—

| सं | नाम                              | पद | सं | नाम                           | पद |
|----|----------------------------------|----|----|-------------------------------|----|
| १  | मंगलाचरण                         | १  | ७  | श्रीस्वामिनीजीकी स्वरूप वर्णन | ११ |
| २  | भक्ति के आसक्ति के वचन           | २५ | ८  | सखीके वचन श्रीस्वामिनीजी      |    |
| ३  | आसक्ति की वर्णन                  | ९  |    | प्रति सुरतांत                 | १४ |
| ४  | आसक्ति अवस्था                    | १  | ९  | खंडिता के वचन साक्षात्        |    |
| ५  | द्वान प्रसंग                     | ४  |    | भक्ति के श्रीप्रभुजू सों      | ८  |
| ६  | साक्षात् प्रभुजी की स्वरूप वर्णन | ८  | १० | भानारेनोदन                    | ३१ |

| सं | नाम  | पद | सं | नाम  | पद            |
|----|--|----|----|--|---------------|
| ११ | विरह-समय                                       | २५ | २१ | रास-समय                                      | ९             |
| १२ | युगल स्वरूप कौ सौंदर्य वर्णन                   | २  | २२ | उराहने के वचन भक्ति के श्रीयशोदाजू सों       | १             |
| १३ | प्रभु के आसक्ति वचन भक्ति सों                  | १  | २३ | अन्नकूट-समय                                  | ४             |
| १४ | गो-दोहन समय                                    | ३  | २४ | प्रभु कौ बनतें आगमन                          | ४             |
| १५ | साक्षात् भक्ति के वचन प्रभु सों                | १  | २५ | साक्षात् भक्ति की प्रार्थना प्रभु सों        | १             |
| १६ | समीप-विरह                                      | २  | २६ | वर्षारितु वर्णन                              | ४             |
| १७ | परस्पर हासवाक्य श्रीस्वामिनी जू के प्रभु प्रति | ३  | २७ | स्वामिनी जू कौ प्रभु प्रति गवन               | १             |
| १८ | हिंडोला प्रभु कौ छलिवो                         | ४  | २८ | श्रीप्रभुजी की मुरली श्रीस्वामिनी जू इरन-समय | २             |
| १९ | प्रभु की आरती                                  | १  | २९ | रथयात्रा। .....                              | १             |
| २० | वसन्त-समय                                      | ६  |    |  | एकत्र सं. १९० |

२ 'ख' प्रति—यह प्रति स. भं. के हि. विभाग में बंध सं. १०/६ पर विद्यमान है। इसमें पत्र १६१ से १९५ तक कुंभनदास कृत पदों का लेखन है। मध्य में १६२ वां पत्र अनुपलब्ध है, और १६३, १६७, १७०, १७६, १८०, १८६, १८८, १९० यह आठ पत्र खाली हैं (केवल पृष्ठांक डले हुए हैं)। इसमें 'बाललीला' से प्रारंभ कर 'द्वितीय अवस्था' [विरह] तक २३ विषयों में १५९ पद लिखे मिलते हैं। आकार १०"×८" है। प्रत्येक विषय के पदों की समाप्ति पर पत्र खाली छोड़ दिया गया है। इससे निश्चित होता है कि-लेखक ने भविष्य में उपलब्ध होनेवाले अन्य पदों या विषयों को यथास्थान सन्निविष्ट करने के लिये ऐसा किया है। किसी मूल प्रति के अनुकरण किस्ता अन्य प्रतियों के सम्बाद के लिये भी इस पद्धति को स्वीकार किया गया हो, ऐसी संभावना है।

लेखनकाल—इस प्रति का आदि अन्त नष्ट हो गया है। इसी लिपि तथा आकार-प्रकार में 'सूरदास' आदि अन्य अष्टछापी कवियों की रचनाएँ भी लिखी मिलती हैं—मध्यपातिनी पत्र-[१६३] की संख्या भी इसीका बोध कराती है। यह ग्रन्थ जीर्णशीर्ण अवस्था में प्रोत्स हुआ था। महस्त्वपूर्ण आद्यांश-सूरपद संग्रह-और अनितमांश बहुत कुछ नष्ट हो गया है। एकही लेखक द्वारा सुवाच्य अक्षरों में लिखी हुई यह प्रति यदि सम्पूर्ण रूप में

अंथसे इति तक प्राप्त हो जाती तो अष्टछाप के पदों का प्रामाणिक और शुद्ध विश्लेषण [ पारस्परिक असंमिश्रण ] हो सकता । उस समय नहीं कहा जा सकता था कि-अमुक पद अमुक का नहीं, अमुक का है । इसका लेखन मन को मुन्ध कर लेता है ।

प्रस्तुत प्रकाशन में पदों के नीचे फुट नोट में जहाँ भी सूकृत; परमानन्दकृत, कुभनदासकृत पदों का आदि का विश्लेषण किया गया है इसी प्रति के आधार पर किया गया है । [ देखो पद सं. ५४, ५६, ९९, १००, १०५, १३७ आदि । ]

इस प्रति के लेखनकाल का निर्धार मैंने “परमानन्ददास और उनका परमानन्दसागर” नामक लेख [ सुधा लखनऊ ] में किया था । फलतः इसका लेखनकाल सं. १५६६ से १५८० के बीच निश्चित होता है । अतः यह प्रति अष्टछाप के कीर्तन-संग्रह, विचारणा के लिये सबसे अधिक शुद्ध प्रामाणिक और प्राचीन सिद्ध होती है । अतः इसी के पाठ को प्राथमिकता दी गई है ।

| सं | नाम                                | पद | सं | नाम                                    | पद |
|----|------------------------------------|----|----|--|----|
| १  | बाकलीला                            |    | २  | [ श्रीस्वामिनीजू कों प्रभु प्रति गवन ] | १  |
| २  | गो दोहन-प्रसंग                     | २  | ३  | पौढे समय के पद                         | १  |
| ३  | [ परस्पर हासवाक्य ]                | १  | ४  | खंडिता                                 | ८  |
| ४  | स्वामिनीजू कों स्वरूप वर्णन        | ११ | ५  | सुरतांत                                | १२ |
| ५  | दान प्रसंग—                        |    | ६  | [ मुरली हरन ]                          | २  |
|    | प्रभुके वचन                        | १  | ७  | [ हिंडोला ]                            | ४  |
|    | गोपिकाजू के वचन                    | ३  | ८  | [ वर्षारितु वर्णनु ]                   | ४  |
| ६  | बनते व्रज कों पांड धारिवौ ( आवनी ) | २  | ९  | अञ्जकूट-समयके पद                       | ५  |
| ७  | आसक्ति—                            |    | १० | १० रास उत्सव समयके पद                  | ६  |
|    | सखी प्रति वचन                      | १९ | ११ | वसंत                                   | ५  |
|    | आसक्तिकौ वर्णन                     | १० | १२ | फागु धमारि                             | ३  |
|    | आसक्ति साक्षात प्रभुप्रति          | २  | १३ | द्वितीय अवस्था ( विरह )                | २४ |
| ८  | मानापनोदन                          | ३१ |    |  |    |

## अन्य प्रतियाँ—

उक्त प्रतियों के अनन्तर कीर्तन-संग्रह की अनेक प्रथियों से 'कुंभनदास' की छापवाले पदों की प्रतीक-सूची बनाकर उनका मिलान किया गया और पदों को लिपिबद्ध। सर. भं. के हिन्दी-विभाग के जिन बंधों में पद प्राप्त हुए वे इस प्रकार हैं :—

### बंध और पुस्तक संख्या :—

१/२-२। २/३-४-५। ३/१। ४/४। ५/१-६। ६/३-५। ७/४  
८/८। ९/३-५-६। ११/५-६। १२/३। १३/१-३। १४/२। १५/१-२  
१७/३-४। १८/१-२। १९/१-७। २०/१०। २१/९। २४/९। २५/५  
२७/४। २८/३। २९/१। ३०/६-१०। ३८/४। ४६/३। ११५/९। ११६/१  
१३३/७। १३९/६। १४५/१-२। १४६/२। १४७/२। १५५/२। २१५/५

उक्त प्रतियाँ समय २ पर लिखी गई हैं—जिसमें किन्हीं में लेखनकाल है और किन्हीं में नहीं। यह सब प्रतियाँ या तो वर्षोत्तम, नियलीला के क्रम से हैं—या राग के क्रमसे। इसमें पुष्टिसम्प्रदाय की सेवा-पद्धति में गाये जानेवाले अन्य कवियों के पद—कीर्तनों का भी संकलन है।

इन सब प्रतियों के पाठ-भेद को 'क' 'ख' प्रति के अनन्तर ही प्रामाणिकता दी गई है। बहुतसे पद 'कुंभनदास' की छाप होते हुए भी दूसरी अन्य प्रतियों में उपलब्ध नहीं हुए। कुछ ऐसे भी पद लिखे मिले जो अन्य की छाप से प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। अतः इस पद-संग्रह में उन्हीं पदों का समावेश किया गया है जो एकसे भविक प्रतियों में मिले हैं।

उसके अतिरिक्त बहादरपुर [ संखेडा गुजरात ] गोवर्द्धननाथजी के कीर्तन सेवाकार, वयोवृद्ध, भगवदीय श्रीछगनभाई ने भी कई पद अपने संग्रह से लिखकर दिये। इन्होने कई वर्ष तक कांकरोली में भी सेवा की थी। कीर्तन के विशेषज्ञ और संगीतज्ञ थे-अब हरिःशरण हो चुके हैं, वे संग्रह के लिये संस्मरणीय हैं। इसके अनन्तर पद-मुद्रण के समय उक्त नगर के निवासी भाविक सेवापरायण, सेठ श्रीपुरुषोत्तमदासजी ने भी सूचियों से मिलान कर कई पद लिखकर भेजे-फलतः इनका सहयोग भी इसे प्राप्त हुआ और संग्रह को परिपुष्टि।

'दानलीला' और 'इयाम-सगाई' पृथक् रचना के रूप में भी मिलती है और संयुक्तरूप में भी। इसकी दो प्रतियाँ सरस्वती-भंडार कांकरोली में ही विद्यमान हैं।

## विषयका वर्गीकरण—

यह स्पष्ट है कि—कुंभनदासजी ने काव्य-रचना की दृष्टि से पदों का निर्माण नहीं किया है। वे श्रीगोवर्धनधर प्रभु के साक्षिध्यमें श्रीमहाप्रभु-द्वारा सोंपी हुई कीर्तन-सेवा कर अपने जीवन को कृतार्थ करते थे। लौकिक निर्वह उनका चलता ही था, यश की उन्हें कामना नहीं थी। संगीत की स्वर-लहरी में आत्मिक एकतानता का अनुभव कर भगवदानन्द का आस्वाद लेना ही उनका परम पुरुषार्थ था।

तेय भगवत्त्वलीला, सनातन होते हुए भी नित्यनूतन, विविध रस-संपूरित और शुद्धभाव-भरित होती है। उसमें सात्त्विक अनुभूतियों का प्राबल्य और दिव्य कल्पनाओं का साक्षात्कार होता है। अन्य समानकक्षाधिष्ठित भगवदीय कवियों की भाँति कुंभनदासजी ने भी सेवा-सम्बन्धी विविध प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर तत्काल ही अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'वाचमर्थे नुधावति' जो वे आत्मानन्द-निमग्न होकर गाते गये—काव्य बनता चला गया। स्वर, ताल, लय, छन्द, अलंकार, रस, शब्द-सौष्ठुव सभी, भाव के पीछे भागते चले आए।

यद्यपि भाव, काव्य की आत्मा है—उसके प्रतिष्ठित किये बिना वर्णनात्मक सौन्दर्य परिलिपित नहीं होता, पर रससिद्ध कवियों के लिये वह आगन्तुक न होकर साहिजिक होता है। हृदयाकाश में सदा घुमडती हुई रसघटाएँ न जाने किस रूपमें कहाँ कितनी बरत जायें? कहा नहीं जा सकता। सच तो यह है कि— साहित्य-क्षेत्र 'नदीमातृक' नहीं हैं 'देवमातृक' है। इसकी सरसता उन्मुक्त भावाभिवर्षण से ही होती आई है।

इस तरह कुंभनदास की रचना को चाहे स्वच्छन्द, कहा जाय? चाहे उन्मुक्त, भाव-प्रधान रचना है। ऐसा होते हुए भी विविध प्रवृत्तियों में है।

संकलन के सौकर्यार्थ सम्पादन में हमनें उसे इस प्रकार विभाजित किया है :—

### (क) क्रिया-प्रधान पद-रचना—

पुष्टिमार्गी सेवा-पद्धति में सम्पन्न होनेवाले उत्सवों-महोत्सवों के अवसर पर सामयिक वातावरण के वर्णनार्थ जो कीर्तन-रचना की जाती थी उसे हम 'क्रिया-प्रधान पद-रचना' कह सकते हैं। ऐसी रचना में हिंडोरा फाग, बधाई, दशहरा रास, धनतेरस, गोवर्धनपूजा, रथयात्रा, पवित्रा, राखी, वादिकी पद-रचना का समावेश किया जा सकता है। जिसे हम स्थूलरूप में 'वर्षेत्सव पद-संग्रह' का नाम दे सकते हैं।

### (ख) प्रसंग-प्रधान पद-रचना—

‘प्रसंग-प्रधान पद-रचना’ में क्रियात्मक वर्णन के साथ ही एक सजीव भाव-वर्णन होता है जो-प्रसंग के साथ-साथ हृदयको छूता हुआ चलता है। इस शैली में क्रिया और भाव दोनों सहभाव से प्रसंग की परिपुष्टि करते हैं। उदाहरणार्थ-कलेऊ, क्रीडा, मुरलीहरण, स्वरूप-वर्णन, छाक भोजन, आवनी आदि के पद लिये जा सकते हैं। इसमें जहाँ प्रासंगिक सजीव वर्णन होता है वहाँ मानसिक उत्ताप, अभिलाषा और मनोरथ-संपूर्ति का भी एक चित्र-साखिच जाता है। क्रिया और भाव दोनों अपनी समृद्धि का दिग्दिशन करते हैं। इसमें प्रधान-गौण-भाव नहीं होता।

### (ग) भाव-प्रधान पदरचना —

‘भाव-प्रधान पदरचना’ में उन पदों का समावेश किया जा सकता है— जो लीला के मानसिक साक्षात्कार का परिदर्शन करते हैं। जहाँ कवि की प्रथक् सत्ता नहीं रहती—वह स्वयं भाव में तलीन होकर प्रत्येक चेष्टा प्रत्येक अभिव्यक्ति और प्रत्येक अनुभूति में अपने आपको खो बैठता है। वह दर्शक, निर्देशक किंवा समीक्षक न रहकर अभिनय का स्वयं पात्र सा बनजाता है। इस अवस्था में उसकी उक्ति क्रत्रिमता से रहित, सत्य के तात्त्विक प्रभावोत्पादक रूप में हमारे सामने आती है। इस परंपरा में हम दानलीला, आसक्ति, आसक्ति-वचन, विरह आदि के पदों का समावेश कर सकते हैं जिनमें कवि की मानसिक भाव-तलीनता का ही सर्वतोमुखी साक्षात्कार होता है।

उक्त दोनों प्रकार की रचनाओं को हम स्थूलरूप से ‘लीला पद-संग्रह’ के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। अस्तु

### प्रस्तुत विभाजन—

उपलब्ध विभिन्न आदर्श प्रतियों में विभिन्न क्रम से विषयों का संकलन प्राप्त होता है। जैसा कि ‘क’ ‘ख’ संज्ञक प्रति के प्रारंभ में दिये गये विषय-दिग्दर्दन से पता चलेगा। अतः संग्रह को सुचारुता और उपयोग की दृष्टि से महत्त्व प्रदान करने के लिये पदों को ‘वर्षोत्सव’ और ‘लीला’ इन दो विभागों विभक्त कर दिया गया है—

(१) ‘वर्षोत्सव’ के पदों का उपयोग सम्प्रदाय की पद्धति में जन्माष्टमी से प्रारंभ होकर आवण के उत्सव तक समाप्त होता है—अतः उसी क्रम से

उनके पदों का संकलन किया गया है। श्याम-सगाई, और दानलीला, यद्यपि असावधानी वश यहाँ संकलित हो गई है, पर उनका उपयोग वर्षोत्सव प्रसंग में भी होता है।

(२) 'नित्य-लीला' में प्रातःकाल से लेकर शयन-पर्यन्त और शृंगार के संयोग एवं विप्रयोग रूपी दोनों दलों की पदरचना का समावेश होता है।

शृंगार के दोनों दलों की एकरसता के बिना रस की परिपुष्टि असंभव है—साक्षात् सेवा में संयोग और सेवा के अनवसर में विप्रयोग (विरह) की सानुभावता जबतक हृदयंगम नहीं होती—‘सानंदाश्रुकलाकुलेक्षणता’ के साथ गुण-लीला-गान की परिस्थिति जबतक प्रगट नहीं होती—भक्त के हृदय में एक अभाव-सा रहता है, न्यूनता-सी रहती है। दोनों का महत्व अन्योन्याश्रित है, एतदर्थ सभी भक्त कवियों ने लीला वर्णन-ध्याज से उनका कथोपकर्धन कर भावना से भाव की सिद्धि समधिगत की है। वास्तविकतया इस प्रकार के उच्च परमकाष्ठापञ्च भक्तकवियों का क्या काव्य-सौन्दर्य, क्या वर्णन-वैचित्र्य, क्या रसपुष्टि और क्या वर्णनात्मक तन्मयता इसी प्रकार के पदों में समधिगत होती है। वर्षोत्सव-वर्णन तो एक सामयिक उल्लास है जो—क्रिया-प्रधानता के कारण आता और चला जाता है। हृदय पर अनुभूति की गहरी छाप, चित्त की तन्मयता, और मानसिक उद्देश की शान्ति के साथ आत्मिक परमानन्द की लहरें तो इसी में आविर्भूत-तिरोभूत होती है—यहाँ वे उठती और बिलीन होकर एक ऐसी अनन्त परम्परा स्थापित कर जाती हैं जो—स्वानुभवैक संवेद्य हो जाती हैं, वर्णनातीत अतएव अलौकिक।

सूरदास आदि अन्य समकक्ष महानुभावों के समान कुंभनदास भी इस रससिद्धता में साधारण नहीं हैं—उन्होंने संयोग-विप्रयोगात्मक ऊभय दलों का वर्णन किया है। आसक्ति और विरह के पद अपनी मौलिकता से पाठक को जिस गहराई में उतार देते हैं उससे उवरना कठिन—सा हो जाता है।

अतः परंपराप्राप्त मौलिकता को परिलक्षित कर 'गोविन्दस्वामी' के पदसंग्रह के समान यहाँ भी पदों को उक्त दो विभागों में विभाजित कर ग्रन्थ के सौष्ठवार्थी प्रयत्न किया गया है।

(३) 'प्रकीर्ण' विभाग में ऐसे पदों का समावेश किया गया है जो 'कुंभनदास' की छापसे प्रचलित हैं—संभव है उनका कोई शुद्ध रूपान्तर हो, पर वे वर्तमानरूप में साधारण रूचना प्रतीत होते हैं—और कुछ प्रक्षिप्त—से भी प्रतीत होते हैं। उनके सम्बन्ध में भी कुछ निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा।

## प्रक्षिप्त पद—

कुंभनदासजी की छाप से ऐसे कई पदों की रचना हुई है, जो—प्रारंभिक तुक से तो भव्य लगते हैं—पर अध्ययन से उनकी वास्तविकता प्रगट हो जाती है। इस प्रकार के पदों की रचना में अन्य पदों की तुकों, शब्द—योजना का समावेश मिलता है—मानना पड़ेगा कि—ऐसे पद किसी अभाव का अनुभव कर बनाये और गाये गये हैं—जैसे भोगदर्शन के अवसर पर ‘टिपारा’ या ‘कुलद’ या ‘पगा’ किसी भी शृंगार का दर्शनकर इधर-उधर की शब्द—योजना द्वारा कीर्तन की संपूर्ति करदी गई हैं।

वार्ता के अध्ययन से ज्ञान होता है कि—‘सूरदास’ के समय ही उनकी प्रसिद्धि का लाभ उठाकर ऐसे कई पद उनकी छाप से प्रचलित होगये थे—बाध्य होकर अकबर बादशाह को उनकी वास्तविकता की परीक्षा का एक उपाय करना पड़ा था \*जलमें पद लिखकर ढाले जाते थे, वास्तविक होते थे वे तर जाते थे, नकली होते वे छूब जाते थे। सो—इस प्रकार अन्तस्तल के स्वच्छ मीमांसा—नीर में ऐसे पद छुबोकर देखे जा सकते हैं। प्रकीर्ण—विमाग में कुंभनदानजी की छाप के इस प्रकार के कई भी दुए पद दीख पड़ेंगे। वर्षोंत्सव और नित्यलीला—संग्रह में भी वे क्वचित् दृष्टिगोचर हो जायेंगे।

यह तो मानना पड़ेगा ही प्रक्षिप्त पदोंका रचना—कार संगीतज्ञ तो अवश्य था—उसने ऐसे पदों पर ‘राग और ताल’ की छाप लगाकर उन्हें सुदृढ़ बनाया है—वह प्रसिद्धि लोलुप भी नहीं था, वैष्णवता की सद्भावना और स्वकीय वाणी को भगवत्—सेवा में विनियोग करने की लालसा ने ऐसे पदों से उसके अहंभाव को समाप्त कर उन पदों को महानुभावी कवियों के नामपर उत्सर्ग कर दिया था। ऐसा सभी के साथ हुआ है।

इसका एक कारण यही भी था कि—पुष्टिमार्ग में उन्ही भक्तों के पदों का कीर्तन होता है, जिन्हें लीला की सानुभावता थी। लगभग १५० वर्ष के इधर फिर किसी भी कीर्तनकार की रचना का समावेश नहीं हुआ और एक रेखा—सी खिचगई, सूची—सी बनगई।

‘बज में बड़ौ मेवा टेटी’ इस पद को कई गुजराती भावुक वैष्णव ‘बज’ और उसकी \*‘मेवा टेटी’ के प्रेम के कारण अच्छा महत्व देते हैं। सम्पादन के समय जो पद सन्मुख आया वह इस प्रकार था—

\* देखो—अष्टव्याप वार्ता [सूरदास पत्र ५५] कांकरोली प्रकाशन.

“ब्रज में बड़ी मेवा टेटी ।

जाकौ होत हैं साग संधानौ अरु बेहर की रोटी ॥

मरि मरि डला जव पीवन लागे, बडे गोप की बेटी ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्धनधर भुज ओढनी लपेटी” ॥१॥

हन तुकों का परस्पर क्या सम्बन्ध है? कुछ कहा नहीं जा सकता?

एक दो और—

“धरें कटि स्थाम पिछोरा पीरा ।

तापे लप्पेदार किनारी किंकिनी-नाद मंजीरा ॥

कुंजभवन में बैठे राधा-संग सारंग गावत सीरा ।

‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर-सिर धरचौ मुकुट कैसौ चीरा ॥२॥

देखि सखी मोहन सिर फेटा ।

मन गडि रहो माधुरी मूरती उयों लपटे गुड चेटा ॥

राधा-संग हैं मन मनावत नंदराह के बेटा ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्धनधर अखिल अंड जाके पेटा ॥३॥

मलार

अवधि अषाढ घाम श्रीषम रितु अब बरसा रितु आई जू ।

दै सिर डला चली गोपीजन, मारग अति अकुलाई जू ॥

गिरिवर-धर आतुर उठि आए छाक तरें उतराई जू ।

कमलनैन अब भोजन कीजै, षटरस बिज्जन लाई जू ॥

मंडल जोरि सब जैवन बैठे ग्वाल-मंडली बुलाई जू ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्धनधर जैवत रुचि उपजाई जू ॥

मलार

आंधी अधिक ऊठी आवति है, बेरि करो इकठोरी गैयां ॥

हरे हरे चहुं ओर निहारत जैवत ग्वाल मंडली-मैयां ॥

और लेहु कछु कहत सबनि सों तुम द्वी कहां बलदाऊ भैयां ॥

लेत देत अति रुचि उपजावत अधिक निहोरत कुँबह कन्हैया ॥

चहुं दिसि सोभित बन चलि बैठो सुंदर बट की छैयां ॥

बरखत बुन्द परसि अंग आनंद ‘कुंभनदास’ गिरिधर मन मैयां ॥

कित बरखा आगम के दंबर बरसि असाढ़ के बदरा छाए ।  
 बन वेली सुख संतनि मन हुलसत गाइनि तुन मुख आए ॥  
 आशा अवधि बंधी जड जीवनि मोरनि कूक सुनाए ।  
 यों कहि के हरि हसत परस्पर बातनि रुचि उपजाए ॥  
 भोजन भयो अधाने भैया जमनोदक जल भाए ।  
 'कुंभनदास' गिरधर मुख बीरी लै ग्वालिनी ढिंग आए ॥

मलार

गिरधर ढूँढत फिरी बन मांही ॥  
 मास असाढ़ भाग पथिकनि के कहूं घांम कहूं छांही ॥  
 बादर बने मानों तंबुवास, जो देखहु चहुं घांही ।  
 नर नारी एकौ न मिले मोहिं मारग में कहूं नहीं ॥  
 गैयां देखि भयो मन आनंद चिते हुती इकठांही ।  
 भूलि गई संकेत सघन घन, सौंह बाबा की खांही ॥

वार्ता और पदों का पारस्परिक सम्बन्ध—

कुंभनदास के पद-संग्रह में ऐसे बहुत से पद हैं, जो उनकी वार्ता से सम्बन्ध रखते हैं। प्रस्तुत विषय में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि-कुछ पद ऐसे हैं जिनके आधार पर वार्ता या प्रसंगों की रचना हुई है, और कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिनके कारण पद-रचना हुई है। योंतो साधारण रूप में रचना के पूर्व किसी सूक्ष्म उत्थानिका की आवश्यकता रहती ही है—पर उस विषय का विस्तार वार्ता में आदि अथवा अन्त में निश्चित किया गया है—और वे पदरत्न सुवर्ण में जड़ दिये गये हैं।

प्रसङ्गोपात्त पद-रचना का उदाहरण—‘टोंड के घना’ का पद है, जब म्लेच्छोपद्रम की आशंका से श्रोगोवर्द्धनोद्धरण को ‘टोंड के घना’ जैसे बीहड़ स्थान में ले जाया गया था, ‘कुंभनदास—जो सख्य भक्ति का भी अनुभव करते थे—मार्ग की झंझट और निवास की विषम स्थिति से प्रभु की डंग रूपमें सुना बैठा :—“भावत तोहि टोंड कौ घनौ” [पद सं. ३९५] इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

पदरचनोपरान्त प्रसङ्ग-निर्माण के सम्बन्ध में—“भक्त कौ कहा सीकरी काम” यह पद लिया जा सकता है। अकबर बादशाह ने गुणग्राहकता-वश

संगीत-कलादक्ष और भक्त कवि के रूप में कुमनदास का परिचय सुना और उन्हें फतहपुर सीकरी के राजदरबार में बुला भेजा। त्याग, विमनस्कता, और औदासीन्य ने संगीत की स्वरलहरी का रूप धारण किया, सम्राट् का सारा ऐश्वर्य प्रभाव-इस भक्त की त्याग एवं निर्भय वृत्ति के आगे हतप्रभ और मूर्छित होकर रह गया। मूलस्थिति को लेकर वार्ता-प्रसंग की रचना की गई। अस्तु.

इस प्रकार वार्ता-प्रसंगों में आनेवाले कई पद वार्ताओं की प्राचीनता की पुष्टि भी करते हैं, तो कई पद वार्ता-प्रसंगों की कलेवर की अभिवृद्धि। वार्ता-सम्बन्धी अध्ययन में इस पर विशेष धृष्टि देने की आवश्यकता है।

जैसा कि—वार्ताओं के त्रिविध संस्करण का निश्चय किया गया है—सबसे प्राचीन चौरासी वैष्णव की वार्ता सं १६९७ की लिखित प्राप्त होती है, जिसकी अष्टछाप-वार्ता का संस्करण इसी वर्ष कांकरोली ‘विद्याविभाग’ से प्रकाशित किया गया है। इस प्राचीन वार्ता और तदुत्तरकालीन वार्ताओं में कुमनदास के जिन पदों का उल्लेख मिलता है, उनका निर्देश करदेना यहाँ अप्रासंगीक न होगा ?

अष्टछाप के सभी कवियों के पदों की इस प्रकार की सूची उक्त संस्करण में दी गई है—यहाँ केवल कुमनदास के पदों का परिचय कराने के लिये साथ में दी गई प्रतीक अनुक्रमणिका में उन प्रतीकों को बड़े अक्षरों से छापा गया है जिनका वार्ता-प्रसंगों में उल्लेख मिलता है।

### पदों का भावार्थ—

प्रस्तुत प्रकाशन में ‘अर्थयुग’ की यथार्थता को ध्यान में रखकर आर्थिक सहयोग देनेवाले कुछ महानुभावों के आग्रह को सार्थक करने के लिये ही गूढ़ार्थ पदों का सरल भावार्थ प्रकाशित करने का व्यर्थ सा प्रयत्न करना पड़ा है। कहाँ भक्तकवि, महानुभावी, पदकार कुमनदास के भावभरित गंभीर गेय पद ? और कहाँ उनका निःसार भावार्थ प्राकृतिक सुषुमा-सम्पन्न आध्यात्मिक जगत की किसी सरस कुंज में स्वानन्दमरण होकर रस-साक्षात्कार करने वाले गायक के गीतिमय काव्य का लोहलेखनी द्वारा गद्य में अर्थ लिखना मुझ जैसे अनधिकारी के लिये अशक्य असंभव और अपराध-सा है—पर विवशता है।

चाहिये तो यह था कि सुन्दर पदों पर सारगर्भित भाष्य की पद्धति पर कुछ लिखकर लेखनी को पवित्र किया जाता—पर भाषा-सारलय की मांग ने ऐसा न होने दिया। तीन चार बार की—कांट-छांट ने जामा को कुछ का कुछ कर दिया। ‘स्वयमसमर्थः कथं परार्थान् साधयेत्’ के न्याय से पाठकों का कहाँ तक सन्तोष होगा? भगवान् जाने। जैसे—तैसे पूर्ति कर दी गई है।

प्रकीर्ण पदों का अर्थ देना आवश्यक नहीं समझा गया है।

### धन्यवाद—

प्रस्तुत प्रकाशन—ब्यय में अहमदाबाद—निवासी भगवदीय सेठ श्रीचुन्नीलाल बुलाखीदास के सत्प्रयत्न से प्रायः अर्द्धाशरूप में आर्थिक सहयोग—प्राप्त हुआ है जो स्मरणीय है।

यद्यपि पुष्टिमार्गीय भावनानुसार सेवा के उपलक्ष में यशःकामना और प्रत्युपकार की इच्छा स्वयं सहायकों को नहीं है, फिर भी लौकिक व्यवहार—पूर्त्यर्थ—उसका प्रतिनिर्देश करना अप्रासंगिक नहीं है। ऐसे सज्जन धन्यवादार्ह हैं जो—साहित्य की सेवा में द्रव्य का समुचित सदुपयोग करते हैं—वि. विभाग निम्न लिखित महानुभावों का आभारी है।

(१) भगवदीय सेठ श्रीसाकरलाल बालाभाई अहमदाबाद ने प्रथमतः ग्रन्थ की ४०० प्रतियाँ वितरणार्थ खरीद कर साहाय्य प्रदान किया है।

(२) भगवदीय सेठ श्रीरतिलाल नाथालालभाई—अहमदाबाद ने ग्रन्थ की २०० प्रतियाँ वितरणार्थ खरीद कर साहाय्य प्रदान किया है।

### मुद्रण—

अन्ततो गत्वा ग्रन्थ का मुद्रण ‘अशोक प्रिंटरी’ बडौदा के अधिपति सेठ श्रीरमणलाल नानालाल शाह द्वारा प्रारंभ हुआ। कार्य बाहुल्य—ब्यस्तता के कारण मूल पदों के मुद्रण में लगभग ६ मास लग गये। अतः भावार्थ आदि मुद्रण का अवशिष्ट कार्य ‘कवीर प्रेस’ के अध्यक्ष पं. श्री मोतीदासजी चेतनदासजी को सौंपा गया। कहना न होगा कि लगभग दो मास के भीतर ही ग्रन्थ की छपाई समाप्त होने का सौभाग्य आ गया।

इस प्रकार अन्य कार्य—ब्यावृत्तिवश एक वर्ष के सम्पादन और लगभग ६ मास के मुद्रण-काल के अनन्तर ग्रन्थ का प्रकाशन हो सका है। सुन्दर छपाई आदि के लिये दोनों महानुभाव संस्मरणीय हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन को लेकर अष्टछाप-साहित्य की लड़ी में अद्यावधि निम्न लिखित महानुभावी कवियों की रचनाएँ प्रकाशित हो गई हैं जो—हिन्दी साहित्य के एक महान अंश की पूर्ति करती हैं :—

- (१) 'सूरसागर'—सूरदासकृत। प्रकाशक—काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
- (२) 'गोविन्दस्वामी'—[ पद संग्रह ] गोविन्दस्वामी कृत। प्रकाशक—विद्याविभाग कांकरोली।
- (३) 'नन्ददास-ग्रन्थावली'—नन्ददासकृत [ ग्रन्थ—संग्रह ] प्रकाशक—विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- (४) 'कुंभनदास' [ पद—संग्रह ] कुंभनदास कृत। प्रकाशक—विद्या-विभाग कांकरोली।

अवशिष्ट चार अष्टछाप कवियों में 'परमानन्ददास' कृत 'परमानन्द सागर' [ १५०० पद ] सम्पादित कर लिया गया है। समुचित अर्थ—सौकर्य प्राप्त कर प्रकाशित करने की प्रतीक्षा में रखा हुआ है। इसके अतिरिक्त कृष्णदास का 'कृष्ण सागर' चतुर्भुजदास एवं छीतस्वामी तथा नन्ददास के पदों के संग्रह का प्रकाशन अवशिष्ट रह जाता है।

श्रीप्रभु के बुद्धि-प्रेरणानुग्रह द्वारा यह मनोरथ भी सफल होगा, ऐसी आशा सेवित करते हुए 'श्रीकुंभनदास' कृत भगवत्तीला-गुण-वर्णनात्मक उनकी पदरचना भगवान्, उनके भक्त और भावुक साहित्य-रसिकों की सेवा में सादर समर्पित की जा रही है। इति शुभम्

बडौदा  
शरदुत्सव  
सं. २०१०

विषेय,  
पो. कण्ठमणि शास्त्री  
संचालक,  
विद्याविभाग, कांकरोली।





गो. वा. सद्गत सेठ श्रीत्रीकमलाल भोगीलाल  
अहमदावाद ना  
स्मरणार्थ  
सेठ श्रीरतिलाल नाथालाल ना  
जय श्रीकृष्ण



दैवी सम्पत्ति के अन्यतम प्रतीक

## — महानुभाव श्रीकुंभनदास —

[एक चारित्रिक विश्लेषण] —प०० कण्ठमणि शास्त्री—

— अनुवादकोश —

लक्ष-लक्ष जागतिक जीवन-परम्परा की साधनात्मक अन्तिम उत्तरांत ज्योति मानव-जन्म की प्राप्ति और उसका सदुपयोग, करुणावरुणालय स्वानन्दतुन्दिल श्रीप्रभु की परम कृपा की दैन है। अन्यथा 'जायस्व भ्रियस्व' की आपूर्यमाण परिस्थिति एक ऐसा प्रबल प्रवाह है जो-कभी अवरुद्ध नहीं होता, धर्घर रव करता हुआ निर्बाध अगाध धारा के रूप में बहता ही चला जाता है, जिसका न और दीखता है न छोर। वह मानव की ऊँद्धि से अपरिज्ञेय और उसकी शक्ति से अशक्य संतरण है।

लीलामय की ललित लीलाओं के परिदर्शनोपकार में सतत निरत, स्वयं संतरण के दृष्टान्त, परकीय संतरण की साधन-सुलभता के सम्पादक, 'मनुष्याणां सहस्रेषु' के उदाहरण स्वरूप, लोकवन्द्य अनेकों महापुरुष समय-समय पर भूतल पर अवतरित होकर स्त्रीय आचरण और उपदेश की विविध उत्तरांत ज्योतियों के द्वारा सृष्टि के पथ को सदा आलोकित करते रहते हैं-जो कष्टों से ऊरङ्ग खाबड़, यातनाओं से अस्तव्यस्त एवं बाधा और चिन्ताओं से टेढ़ामेढ़ा होता रहता है, और निराशा के सूची-भेद्य संतमस के कारण जहाँ कुछ भी परिलक्षित नहीं होता। उनकी इस दिव्य चेतना, प्रेरणा एवं भावना से स्वरूपज्ञान का आलोक पाकर सहस्रशः जीव आत्मिक उल्लास का परिदर्शन पाते, कृतकृत्य और धन्य होते आए हैं।

इसी मानवीय महनीयता की एक कड़ी भक्तप्रवर, कविवर, महानुभावी श्रीकुंभनदासजी थे, जो-जगदुदारक, श्रीशूदामुद्विक्षम श्रीवल्लभ महाप्रभु के शिष्य और 'येषां त्वन्तगतं पापं०' की प्रकाशमान परिभाषा थे। 'अभयं सत्त्वसंगुद्धिः' इत्यादि दैवी लक्षणों से लक्षित, 'विगते-च्छाभयकोधः' के स्वच्छ आदर्श के रूप में उनका दिव्य जीवन हमें एक विलक्षण प्रकाश प्रदान करता है।

भौतिक विज्ञास से चकचोंधिया देनेवाले महान् सम्राट अकबर के राजवैभवसम्पन्न, दबदबाभरे दरबार में “ भक्त कों कहा सीकरी काम ” की तान छेड़ कर आश्र्येचकित कर देनेवाला, “ आव्रत जात पन्हैयां दूटीं ” की पुट देकर वैभव पर तिरस्कार फेंकेवाला, “ जाकौं मुख देखत दुःख उपजत ” की मूर्ढ्छना पर निर्भयता की ठोकर से शांदशाह के हृदय को तिलमिला देनेवाला क्या साधारण यावदायुध्य जीनेवाला मर्त्य जन हो सकता है ? नहीं, वह स्वयं अभय की प्रतिष्ठा था । परिश्रमो-पांजित कृषिधान्य-बेजर और टेटी घेरों-से जीवनवृत्ति-निर्वाहक, राजा मानसिंह की ओर उदासीन रहकर परिहास में भी याङ्गावृत्ति दर्शने वाली भतीजी को शिड़क देनेवाला ‘ सत्वसंशुद्धि ’ का उदाहरण था, और भगवत्सान्निध्य में अमर गेय पदों की रचना के द्वारा जन-जन के साथ आत्मिक परम सुख का उपासक ‘ ज्ञानयोग ’ व्यवस्थिति का केन्द्र-बिन्दु था ।

इस प्रकार वार्ता के अध्ययन से अनावश्यक भौतिक परिचय की अपेक्षा कुंभनदास के दैवी गुणों का हमें अधिक परिचय प्राप्त होता है । महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के ८४ और प्रभुचरण श्रीविठ्ठलनाथजी के २५२ शिष्य वैष्णवों का महत्व इन्हीं दैवी सम्पत्ति के गुणों पर आधित है—संख्या के न्यौन्य और आधिक्य से उसे धाँकना तथा इतिहास के जीर्णशीर्ण पत्रों से उसे धाँकना एक बड़ी सी त्रुटि है ।

प्रस्तुत पद-संग्रह के सम्बन्ध में पद-रचयिता का इत्थंभूत दिव्य परिचय और क्या दिया जा सकता है ? निर्विकार रूप में चिरन्तन परिस्थित, आलोकमय, आदर्श यशःकाय के समुख अशाश्वत पार्थिव परिचय कुछ महत्व भी तो नहीं रखता ? फिर भी लेखिनी को पावन करने के लिये साधारणतया उसका दिग्दर्शन आवश्यक है, जो इस प्रकार है\* :—  
जन्म और परिवार—

सं. १५२५ में ( का. कृ. ११ के दिन ) जमनावतौ ( ब्रजमण्डल ) नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ । श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्राकृत्य वार्ता के अनुसार सं. १५३५ में जबकि श्रीगोवर्द्धननाथजी का प्राकृत्य हुआ था, कुंभनदासजी की वय १० वर्ष की थी । अनुश्रुति के अनुसार कुंभ-

\* इनका जीवन वृत्त ‘ चौरासी वैष्णवन की वार्ता ’ में सं. ८३ और “ अष्टसखानन की वार्ता ” में सं. ३ पर उपलब्ध होता है ।

संक्रांति के पर्व में तीर्थयात्रा के समय इनके पिता को पुत्रप्राप्ति का आशीर्वाद किसी महात्मा ने दिया, जिसके संस्मरण में इनका 'कुभनदास' नामकरण किया गया था।

इनके पिता गौरवा\* क्षत्रिय थे। पिता का नाम और परिचय प्राप्त नहीं होता। 'धर्मदास' नामक इनके एक काका थे—जो एक धर्मशील व्यक्ति थे। संभवतः पिता के दिवंगत हो जाने पर कुभनदासजी पर उनके काका की धार्मिक वृत्ति का अधिक प्रभाव पड़ा। 'परासौली' गाँव के पास थोड़ी सी भूमि इस वंश के अधिकार में थी, जहाँ रह कर यह अपना निर्वाह चलाते थे। कृषि के द्वारा ही कुटुम्ब का निर्वाह होता था। 'श्वरूप्ति' [तौकरी] द्वारा जीवन-निर्वाह कुभनदासजी को अभीष्ट नहीं था। 'यावल्लब्धेन सन्तोषः' के अनुसार साधारण रूप में कुटुम्ब का परिपालन कर लेने में ही इन्हें आनन्द एवं आत्म-गौरव का अनुभव होता था।

धर्मदास की धार्मिक चर्या से बाल्यावस्था में ही भगवद्-भक्ति एवं सदाचरण की ओर इनकी प्रवृत्ति हो गई थी। सांसारिक वाद-विवादों, झगड़ा-झंझटों और ईर्ष्या-द्वेष से जीवन को कटु बनाना उन्हें अभीष्ट नहीं था। उनको बाल्यकाल से ही गृहासक्ति नहीं थी। असत्य भाषण और पापकर्म से सदा दूर रहकर सीधे-साधे व्रजवासियों की रीति से रहना इनकी एक विशेषता थी। अध्ययनादि की न्यूनता होने पर भी कथा-शास्त्र-पुराणादि-श्रवण के द्वारा बहुश्रुतता और गंभीर ज्ञान इन्हें प्राप्त हो गया था—यह मानना ही पड़ेगा। चाहे सत्संग से हो, चाहे अध्ययन से ? इनका साहित्य-संगीत-कला का ज्ञान पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ था, इसमें कोई शंका नहीं है। पदरचना-शैली, संगीत-सेवा और प्रख्याति से सहज ही इस कथन की पुष्टि होती है।

समय आने पर इनका विवाह हुआ। 'जेत' गाँव के पास 'बहुला वन' में इनका समुराल था। इनकी खी यद्यपि साधारणतया ग्रामीण थी पर उस पर इनकी संगति का प्रभाव पड़ा, जिसके कारण इन्हें गृहस्थान्वय कभी सेवा में प्रतिबन्धक सिद्ध नहीं हुआ।

\* मिथ्र 'बन्धुओं'ने इन्हें गौरवा ब्राह्मण लिखा है जो-ठीक नहीं है। इनकी जाति और वंश के कई लोग अब भी व्रज तथा मेवाड़ में विश्वामान हैं।

## शरणागति-दीक्षा—

सं. १५५० के आसपास महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जब अपनी परिक्रमा करते हुए शारखंड में विद्यमान थे, श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्रेरणा से उनकी सेवा-प्रतिष्ठार्थी गिरिराज पधारे। यहाँ उनके अनेक व्रजवासी शिष्य हुए-जिनमें ‘सदू पांडे’, ‘माणिकचंद पांडे’ और ‘नरो भवानी’ आदि सुख्य थे। इसके अनन्तर जब ‘रामदास चौहान’ को श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा सौंपकर उसका प्रकार बढ़ाया गया तब [संभवतः सं. १५५६ के लगभग] कुंभनदासजी श्रीमहाप्रभु के शरण आए। उन्होंने ‘अष्टाक्षर’ और ‘ब्रह्मसम्बन्ध’ की दीक्षा देकर पत्नी-सहित कुंभनदासजी को अपना शिष्य बनाया। दीक्षा और गुरु के सिद्धान्तोपदेश से कुंभनदासजी पर अहेतुकी भक्ति का प्रभाव पड़ा। भगवल्लीलाओं की इन्हें स्फूर्ति होने लगी। संगीत-विद्या में तो यह प्रवीण थे ही, कण्ठ भी मधुर था, निर्दिष्ट अवसर पर उपस्थित होकर यह श्रीनाथजी की अहर्निश कीर्तन-सेवा करने लगे।

पुष्टिमार्गीय भावपूर्ण सेवा के कारण इनके सात्त्विक हृदय में दिव्य अनुभूतियों का प्रकाश होने लगा। नित्य नई पद-रचना और गायन के द्वारा प्रभु को रिक्षाने और उनके सुमधुर सुखारविन्द के दर्शन करने में ही इन्हें परमानन्द प्राप्ति का अनुभव होने लगा। दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं माधुर्य भाव की ऊर्मियों ने इनके हृदय और जीवन दोनों को आप्लावित, रसपूर्ण कर दिया, जिससे हिन्दी-साहित्य में व्रजभाषा-काव्य की एक विशेष धारा को परिपुष्टि मिली।

सं. १६०२ के लगभग जब महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के स्वनामधन्य आत्मज, आचार्य गो. श्रीविठ्ठलनाथजी ने ‘व्रजभाषा के अष्टछाप’ की स्थापना की, तब उसमें कुंभनदासजी और उनके पुत्र चत्रभुजदासजी को समिलित किया गया। इस अष्टछाप की स्थापना में तथाकथित साम्राज्यिकता की मनोवृत्ति का पुट नहीं था। इसका वैशिष्ट्य, साहित्यिक पद-रचना के उत्कर्ष, भाव के माधुर्य, संगीत के सौष्ठव और भक्ति के उस प्राञ्जल दिव्य सौन्दर्य पर आधारित था जो-रंक से-लेकर सन्नाट् तक, गृहस्थ से लेकर त्यागी महात्माओं तक को मुग्ध करता था। राधावल्लभी

सम्प्रदाय के संस्थापक 'श्रीहित हरिवंशजी' का कुंभनदासजी के समीप आ कर पद सुनकर प्रशंसा करना इसी ओर संकेत करता है । \*

कुंभनदासजी का परिवार बड़ा था । सात पुत्र, उनकी सात पत्नियाँ और एक विधवा भतीजी तथा दम्पति कुल १७ प्राणी थे । बड़े पांच पुत्र सांसारिक व्यवहारों में आसक्त थे, अतः उनके प्रति इनका कोई ममत्व नहीं था + । छठे पुत्र कृष्णदास थे जो-श्रीगोवर्द्धननाथजी की गायों की सेवा किया करते थे । कृष्णदास गोरक्षा करते हुए सिंह के द्वारा आइत होकर 'हरिशरण' हो गये । सप्तम पुत्र चत्रभुजदास थे जो-अपने पिता के अनुरूप भक्त, साहित्यचतुर तथा कीर्तन-सेवा परायण हुए । अष्टछाप में इनका समावेश हुआ । भगवद्-भक्ति के कारण 'पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः' के कथनानुसार कुंभनदासजी का चत्रभुजदास पर अधिक ममत्व था और वे इन्हें अपना 'पूरा बेटा' कहते थे । कृष्णदास को आधा बेटा कहा जाता था । जिसका कारण यह था कि-चत्रभुजदास जहाँ प्रभु की नाम-सेवा और स्वरूप-सेवा दोनों में लिष्ट थे, वहाँ कृष्णदास केवल रूप-सेवा ( गोचारण ) में ही मान थे । इस प्रकार श्रीगुरुमांडिजी के समय हास्यवार्ता-प्रसंग में इनके लिये 'डेढ़ पुत्र' की बात प्रचलित थी × । सात्विक जीवन—

जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है—‘कुंभनदासजी अपनी आजीविका कृषि द्वारा चलाते थे । धान्य की उपज के ऊपर ही आश्रित होने और

\* देखो—अष्टछाप वार्ता—‘कुंवरि राधिका तू सकल सौभाग्य०’ नामक पद और प्रसंग [ पत्र २५८ ] कांक० प्रकाशन ।

+ सं. १६९७ वाली वार्ता के अतिरिक्त अर्वाचीन अन्य वार्ताओं में कुंभनदासजी की खींद्वारा शरण आने के अनन्तर श्रीवल्लभाचार्य से पुत्र-ग्रासि का वर मांगने और महाप्रभु द्वारा सात पुत्र होने के वरदान का उल्लेख मिलता है, जो ठीक नहीं है । महापुरुषों द्वारा आशीर्वाद से प्राप्त पुत्र ऐसी साधारण कोटि के नहीं होने चाहिये जिनके प्रति कुंभनदास जैसे श्रद्धालु शिष्यों को वैराग्य हो ? सन्तत्यर्थ वर-याचना का उल्लेख यदि सत्य माना जाय तो कृष्णदास के जन्म के पूर्व होना चाहिये । फिर भी ‘सात’ पुत्रों का कथन तो असंगत ही ज़ंचता है ।

× कुंभनदासजी की पृष्ठ वार्ता [ अष्टछाप पत्र २७०, कांकरोली प्रकाशन ]

भगवद्गुणगान के अतिरिक्त अन्य व्यासज्ञ से विमुख रहने, याचा-वृत्ति का सर्वथा परित्याग करने के कारण कभी २ हृन्दें विषम परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ता था । महाराजा मानसिंह के प्रसंग में वार्ता से स्पष्ट होता है कि-करील और वेर जैसे वृक्षों के फल से भी यह स्वकीय निर्वाह चला लेते थे । सं. १६२० में मानसिंह के एक सहस्र स्वर्णमुदाओं की थैली, जमुनावता ग्राम का पट्टा और किसी साहूकार को इनका व्यय चलाते रहने के आदेश का इन्होंने सहज परित्याग कर दिया था । राजा ने भी अपने जीवन में कई सन्त, महन्त, त्यागी और भक्तों का संग किया था, पर गृहस्थ त्यागी कुंभनदासजी को देख कर जो वह आश्रयमग्न हो गया । कुंभनदासजी की अपरिग्रह वृत्ति का राजा पर तब और भी प्रभाव पड़ा जब उसने कुंभनदासजी की भतीजी द्वारा कहे हुए “आसन खाइके आरसी पड़िया पी गई” वाक्य का तात्पर्य समझा । सोने की आरसी (दर्पण) में देखकर तिलक करने की लालसा के अभाव और फिर कभी आकर तंग न करने की स्पष्टोक्ति से राजा दंग रह गया, श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उसे वहाँ से विदा हो जाना पड़ा । \*

प्रस्तुत प्रसंग की अपेक्षा कुंभनदासजी के जीवन की महत्वपूर्ण घटना फतहपुर सीकरी का बादशाही दरबार था । कुंभनदासजी की साहित्य, संगीत एवं भक्ति की चन्द्रिका से भारतीय प्रांगण धर्वलित हो रहा था । सं. १६३८ में गुणग्राही महान् सम्राट् अकबर के मन में उत्सुकता हुई और उसने राजपैमंत्र के प्रखर आलोक में संगीत की साधना को परखना चाहा । ‘जमुनावता’ गांव की धूलि से धूमरित होता हुआ-रथ, घोड़ा, पालकी आदि का शाही वाहन-परिकर दबदबे के साथ ‘परासोली’ के खेतों की मुंडेर पर जा पहुंचा । कुंभनदासजी को दरबार का आद्वान था ।

“ चित्तोद्वेगं विधायापि हरियद्यत्करिष्यति, तथैव तस्य लीला ” इस गुरु-वाक्य के अभ्यासी ने इसे भी नटनागर की एक लीला समझी । घोड़ा और रथ के बैलों जैसे मूरक पशुओं और पालकी के बाहक नरपशुओं को आधि-व्याधि पहुंचाना क्या अच्छा काम था ? फटी पाग, छोटी अंगरखी, पुरानी अंगोद्धी, ऊंची धोती और दूसी पन्हैया, टेढ़ी लकुटी लिये हुए वे पैदल ही हरिनाम गुनगुनाते हुए फतहपुर सीकरी जा पहुंचे । जड़ाव की रावटी,

\* अष्टछाप वार्ता [ पत्र २४६ से २५० ] कांक० प्रकाशन ।

मोतियों की झालरों, सुगन्धि की लपटों, मखमली गलीचों तथा सोने चांदी के सिंहासनों ने माया, मोह, लालसा की अवेक्षा उनके वैराग्य को और भी उद्दीप्त कर दिया। इथामसुन्दर के बिना यह सब वैभव-विलासमय दरबार में उन्हें काटने-सा लगा।

बादशाह अकबर के यथोचित आदर सत्कार को पाकर भी कुंभनदास-जी का उत्तप्त हृदय शीतल नहीं हुआ। संगीत सुनाने का निदेश पाकर उन्हें श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा-संगीत का स्मरण हो आया। छुंझलाहट और विवशता का कडवा धूट पीकर उन्होंने तानपूरा के तार जनश्वनाये, कुठित अंगुलियों की टोकर खाकर भी तारों ने अपनी मंजुल स्वरलहरी का परित्याग नहीं किया, श्रान्त तृष्णाते कण्ठ के माधुर्य ने सारे दरबार को विमुग्ध कर दिया। “ भक्त कौ कहा सीकरी काम ” [ पद सं. ३९७ ] की धुन में दरवारी झूमने लगे। मानी बादशाह संगीत की धारा में बहता चला गया-पर सहसा वह—“ जाकौ मुख देखत दुख उपजै ताकों करती परी प्रनाम ” की कठोर चट्टान से जा टकराया। गुणग्राहकता की प्रख्याति-वश उसे सावधानतया धैर्य का अवलम्बन लेना पड़ा। पारितोषक के प्रलोभन पर मुहतोड़ उत्तर पाकर तो उसे निर्भीक, त्यागी और निर्लोभी सन्त महानुभाव को सादर घर पहुंचा देने में ही निज श्रेय दीख पड़ा।

समय आने पर बादशाही साम्राज्य नष्टभ्रष्ट हो गया पर कवि की स्पष्टोक्ति आज भी उनकी स्मृति को प्रदीप्त करती रहती है। +

कुंभनदासजी की इस अपरिग्रह, असंचय एवं अकिञ्चन वृत्ति द्वारा संभूत सीदक्तकुटुम्बता का करुणामय प्रभाव एक बार प्रभुवरण श्रीविठ्ठलनाथजी पर भी पड़ा। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि—सर्वस्व समर्पण कर देनेवाला शिष्य गुरु के द्रव्य को स्वीकार नहीं करेगा, अतः तीर्थयात्रा के व्याज से प्रदेश-परिभ्रमण में धनी-मानी वैष्णवों के द्वारा उसकी सहायता करा देने का विचार उनको आया। सं. १६३१ में द्वारिका-यात्रा में साथ चलने के उनके आदेश को कुंभनदासजी कैसे टाल सकते थे? राजभोग सेवा के अनन्तर शिरिराज के समीप में ही ‘अप्सराकुण्ड’ पर सायंकालीन विश्राम हुआ। प्रातःकाल आगे कूच करने का निश्चय था। अनिश्चित काल के लिये क्षणिक विप्रयोग की ऊँझा से ही कुंभनदासजी के हृदयाकाश में विरह की अकाल जलद-घटा धिर आई। “ कहिये कहा कहिवे

+ देखो-अष्टछाप वार्ता [ पत्र २२७-३३ ] कांक० प्रकाशन।

की होइ ” [ पद-सं. ३६२ ] और “ किते दिन है जु गए विनु देखे ” [ पद सं. ३३७ ] की झंझावात के चलते ही नेत्र-नीरदों से झरझर बरसा होने लगी । सह-यात्रियों का परिकीर्य वातावरण करुणा से गीला हो गया । श्रीगोवर्धन-धरण के एक पहर भर के वियोग की व्याकुलता देख द्वित द्वित होकर श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण को भी वापिस लौट जानेकी कुंभनदासजी को आज्ञा देती पड़ी, “ गुरोराज्ञा वाघन ” के अपराध एवं प्रभु की विप्रयोग-व्यथा दोनों से बचकर कुंभनदासजी को जिस आन्तरिक परमानन्द की उपलब्धि हुई वह—“ जो पैं चौंप मिलन की होइ ” [ सं. २२१ ] इस पद में मूर्तिमत्ती होकर प्रत्यक्ष हो उठती है । \*

अष्टछाप के कवियों में कुंभनदासजी सब से अधिक दीर्घजीवी थे । परोपकार और भगवद् भक्ति के बिना वे जीवन का मूल्य ही क्या । समझते थे ? उत्तमश्लोक वासुदेव के चिन्तन के अतिरिक्त जीवन का जो भी क्षण बीतता है—वह एक-अपूरणीय हानि, महाचिद्द्र, और वृहद् विभ्रम है—यह सिद्धान्त था जो-कुंभनदासजी जैसे भगवद् भक्तों का ध्येय है । अतः कहना होगा कि उन्होंने अपनी आयु का अधिकांश क्या सर्वांश ही स्वकीय ध्येय-प्राप्ति में सफलतया व्यतीत किया था । जीवन के ११५ वर्षों में १०-११ वर्ष ही उनके खेल-कूद बाल्यकाल में व्यतीत हुए होंगे । श्रीवल्लभाचार्य के द्वारा पुष्टिमार्ग में शरण आने के पूर्व भी भगवत्कथा-व्याख्या, सत्संग और सदाचार वृत्ति से उनका समय व्यतीत होता था । दीक्षा के अनन्तर तो उन पर कुछ ऐसा रंग चढ़ा जो-वे भक्ति की पराकाष्ठा रूप भगवलीलाओं का साक्षात्कार करने लगे । शरण आने के समय से ही इनकी इस लीलानुभूति के पद सुनकर स्वयं महाप्रभु श्रीवल्लभ ने इनके भाग्य को सराहा और सदा हरि-रसमझ रहने का आशीर्वाद दिया था । X

सं. १६४० के लगभग एक दिन नित्य सेवा का लाभ लेते हुए वे भौतिक शरीर का परित्याग कर यशःकायाधारी हो गये । भगवत्सान्निध्य और लीला-साक्षात्कार की प्रबल लालसा ने उनके तनुनवत्व का संपादन कर दिया । प्रभुचरण श्रीविठ्ठलनाथजी का वरद आश्रय पाकर भगवद्-गुणगान करते वे द्वित्य शाश्वत लोक को पदार्पण कर गये, जिसे आम्नाय में “ यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम ” इन शब्दों से अभिव्यक्त किया जाता है ।



# एक भाव-विश्लेषण



क. गोकुलानंद तैलंग.

अष्टछाप की अमर काव्य-वाणी ने भारतीय साहित्य में जो अविरल रस-निर्झरणी प्रवाहित की है, वह भारतीय वाङ्मय के लिये ही नहीं, विश्व-साहित्य के लिये एक अनूठी दैन है। अष्टछाप के महानुभावों ने 'अष्टसखा' के रूप में जहाँ अपने सुहृद वृन्दावन-विहारी के साथ सख्य-भाव की प्राप्ति की है, वहाँ उन्हें अविरल आगाध भक्ति-भावना का अनुगामी एक सरस कवि-हृदय भी मिला है, जो उसी मनमोहन की विश्व-विमुग्धकारिणी वेणु-स्वर-लहरी से प्रतिक्षण अमिगुञ्जित रहता है और जिसके साथ उनकी काव्य-वाणी ने स्वर में स्वर मिला कर समग्र जन-जीवन को अनुपल अनुप्राणित करने की अपूर्व क्षमता पायी है।

इन महानुभावों में एक और उस नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में गहन आसक्ति है—तन्मयता है—भाव-विभोरता है, तो दूसरी ओर जगत् के सुखमय भासमान् यावन्मात्र पदार्थों के प्रति एक गहरी विरक्ति है। इसी अनुराग और विराग के अद्भुत सम्बन्ध के साथ उनकी वाणी-बीणा से अविरत निस्सृत भाव-गीतों की धारा ने काव्य-कला का प्रशस्त आधार लेकर भावुक भक्त, कवि और कलाकारों के समक्ष साहित्य-सङ्गीत-कला के एक मनोरम कल्पना-रूप को प्राण-प्रतिष्ठा दी।

इस प्राणवान् त्रिवेणी-सङ्गम-साधना ने एक ऐसा पावन केन्द्र-विन्दु दिया है, जिसमें जन-जन की विखरी भाव-धाराएँ एकत्र परिनिष्ठित हुईं और उनके सामने एक दिव्य पुण्य आराध्य की साकार सजीव प्रतिमा खड़ी हो गयी—एक ओर नटवर-वेष नन्दनन्दन मुरली-मनोहर के रूप में और दूसरी ओर युगल प्रिया-प्रियतम, इयाम-इयामा रूप में। इस आराध्य के प्रति सख्य, वात्सख्य और शृङ्खार; इन त्रिविध रूपों में अष्टसखाओं की पुनीत भावना प्रस्फुटित हुई। इन महानुभावों ने इसी त्रिविध भावना से समय-समय पर निज-निज रुचि के अनुरूप मधुर गीत-धारा बहायी और सभी ने उसमें गति एवं जीवन देकर जन-जन का अशेष कल्याण सम्पादन किया।

परम भावुक कवि 'कुम्भनदास' का इन अष्टसखाओं में एक अन्यतम स्थान है। वे 'यशोदोत्सङ्गलालित', 'गोप-गोकुल-नन्दन' और 'गृहीतमानसा-ब्रजस्त्री-रमण—श्रीकृष्ण की इन त्रिविध स्वरूपों की विविध ब्रजलीलाओं के दर्शक, उपासक और अन्तरङ्ग सखा हैं। अतएव उनका काव्य भी बात्सल्य, सख्य, और शृङ्गार—इन तीनों भावनाओं से भीगा और पगा हुआ है। तथापि उनके काव्य के निकट अनुशीलन से यह सहज विदित होता है कि—उनका मन इयामा-इयाम की निकुञ्ज-लीला और युगल-भावना में अधिकांश रमा है। इसमें कवि की रूपासक्ति और गोपी-भाव-विभावित विरहासक्ति की तीखी अभिव्यञ्जना संवलित है देखिये—

जब वे पावस की सघन-घन-घटाओं के बीच इयामा-इयाम की युगल-लीला का भाव-तन्मयता में अनुचिन्तन करते हैं, तो मानों वे अपने को कालिन्दी के कल-कूलों पर एक अन्तरङ्ग सखी की भाँति खड़ा पाते हैं और उनके अन्तरतम को युगल-स्वरूप के मधुर-दर्शन की उत्कट लालसा विरहाकुल कर उठती है। उनके हृदय-वीणा के सोये तार मानों इन भावों को लेकर झड़कत हो उठते हैं—

भीजत कव देखोंगी नैना ।

दुलहिन जू की सुरंग चूनरी मोहन कौ उपरैना ॥

स्यामा-स्याम कदङ्क तर ठाढे जतन कियो कछू मैं ना ।

'कुम्भनदास' प्रभु गोवर्जनधर जुरि आई जल-सैना ॥

[पद सं. १०१]

कवि का चिर-वियोग-तप्त उन्मयित हृदय अन्तर्पीडाओं की उमड़ती घुमड़ती धुँआधार इयाम घटाओं से ढूँक जाता है। उसके अन्तर की अधित्यका में घुटती-सिमटती धारा-प्रवाहिनी रस-वर्षा उसके सन्तप्त लोचनों के मार्ग से प्रेमाश्रुओं के रूप में प्रस्त्रवित हो जाती है और तब उसे मानो 'सुरंग-चूनरी' और 'उपरैना' से विलसित कदम्ब तले खड़े इयामा-इयाम प्रत्यक्ष दर्शन दे देते हैं। प्रिया-प्रियतम के अनुराग-राग-सम्बलित सुरंग-सौन्दर्य की लालिमा कवि के सजल लोचनों को अनुरक्षित कर देती है। एक और तो वर्षा के सजल जलदों का गगनव्यापी समूह और दूसरी ओर कवि के हृदय-प्रदेश से उमड़ने वाली 'जल-सेनाएँ'-ऐसा न हो कि वह

इस प्रेमाश्रु-प्लावन में बह जाय ! इसीलिये वह अपने त्राण के लिये प्रभु 'गोवर्द्धनधर' की शरण में आकर आर्तभाव से कृपा-याचना करता है। इस युगल-दर्शन के लिये भी तो कवि मानता है कि 'जतन कियो कछु मैं ना'—अर्थात् उसके आराध्य की अहैतुकी कृपा की ही यह देन है, उसका अपना प्रयत्न कुछ नहीं। यही तो 'अनुग्रह-मार्ग' वा 'पुष्टिभक्ति' का सिद्धान्त है और कवि उसका साधक पथिक ।

इस प्रकार कुम्भनदास वेसुध और विह्वल दशा में अदर्निश श्यामसुन्दर की सौन्दर्य-सुधा का निर्निषेष दृष्टि से पान करते हुए छके रहते हैं। किसी रूप-ठगी, थकी-सी, चित्र की लिखी-सी व्रजाङ्गना के शब्दों में ही उनके रस-लोभी हृदय को परखिये—

लोचन मिलि गए जब चारबौं ।

है ही रही ठगी-सी ठाढ़ी उर अंचर न संभारबौ ॥  
अपनै सुभाइ नंदजू के आई सुंदर स्याम निहारबौ ।  
टगटगी लगी चरन गति थाकी जिउव ठरत नहिं टारबौ ।  
उपजी प्रीति मदनमोहन सों घर कौ काज विलारबौ ।  
'कुम्भनदास' गिरिधर रसलोभी भलौ तैं आरज पथ पारबौ ॥

[ पद सं. १९८ ]

ब्रजराजकुमार नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में मोहिनी और मादकता ही ऐसी है कि—एक पल भी जिसने उसका आस्वाद लिया—'आंखें चार' हुईं कि वह अपना आपा भूल जाता है—नेत्र और चरणों की गति तो ठीक, हृदय भी उसमें अटक कर, ठिठक कर रह जाता है। फिर कैसा गृह-काज, कैसा 'आरज-पथ' और कैसी लोक-लाज !!

कुम्भनदास में भी यही रूपासक्ति है। उनके प्रभु अपरिमित सौन्दर्य-निधि हैं—ऐसी निधि जो अनुपल नवीन, विलक्षण, और विकासमान हैं। अङ्ग-प्रत्यङ्ग की अनुक्षण नूतन कान्ति, उनके सौभाग्य-सीमा की परिमिति तथा इयत्ता बताने में उनकी दृष्टि और कल्पना असमर्थ है—उनकी ही थकित वाणी में—

छिनु-छिनु बानिक और हि और ।

जब देखों तब नौतन सखि री दृष्टि जु रहति न ढौर ॥

कहा करों परिमिति नहीं पावत बहुत करी चित दौर ।  
 'कुंभनदास' प्रभु सौभग सींवा गिरिधरधर सिरमौर ॥

[ पद सं. १५१ ]

अनन्त सृष्टि के अणु-अणु के सौन्दर्य-दृष्टा कवि की उन्मुक्त उड़ान भरी कान्त-कल्पना भी इस माधुर्य के आगे पड़ और पराभूत हो गयी !

ऐसे निस्सीम नित-नूतन लावण्य को भला कवि का तरल हृदय कैसे भूल सकता है ? मिलन और वियोग दोनों ही क्षणों में उस रूप-मंदिरा को पीकर उसकी आँखों में प्रेमोन्माद छलकता रहता है—हृदय से वह माधुरी मूर्ति किसी भी क्षण टाले नहीं टलती । वियोग के क्षणों का रूप तो और भी सजल और मञ्जुल हो जाता है । प्राणों के अन्तरतम से उठी हुईं सूख पीड़ा की कसक सम्पूर्ण अङ्गों में एक सिहरन और कम्पन पैदा कर देती है । किसी विरहिणी व्रजाङ्गना की गढ़गढ़ वाणी में ही कवि के विरहमयि—सन्तप्त उद्गार सुनिये—

कहा करों उह मूरति मेरे जिय तै न टरई ।

सुन्दर नंद कुँवर के विछुरें निसिदिन नींद न परई ॥

बहुविधि मिलनि प्रान प्यारे की सु एक निमिख न विसरई ।

वे गुन समुद्धि-समुद्धि चित नैननु नीर निरंतर ढरई ॥

कछु न सुहाइ तलावेली मन, विरह अनल तन जरई ।

'कुंभनदास' लाल गिरिधर-विनु समाधान को करई ॥

[ पद सं. २१४ ]

कितनी बेबसी है ? प्राणप्यारे की 'बहुविधि मिलनि' के बीते मधुर क्षणों की मादक सृष्टियाँ कवि—हृदय की अलसाई भावनाओं को कितनी गहरी बेदना के साथ अंगडाइयाँ लेने को विवश कर देती हैं । आँखों में समाई सौवली सलोनी मूर्ति भला नींद को अवकाश क्यों देगी ? फिर जहाँ निरवधि वियोगाश्रु—सलिल का स्रोत उमड़ा करता है और प्रियतम के विरह की धूँ-धूँ ज्वाल—मालाएँ रग—रग, प्राण और आत्मा को छुलसा रही हों, वहाँ 'तलावेली' का क्या कहना ? इस उन्मनता का शमन 'लाल गिरिधर' के ही हाथ है । 'सुन्दर नन्दकुँवर' में आकर्षण और उनके गुणों में मोहिनी ही ऐसी है । प्रेम की इसी तीखी पीर का अनुभव करके ही तो वे प्रेम—बटोडियों को सावधान कर रहे हैं—

प्रीति तौ काहू सौं न कीजै ।

बिघुरत कठिन परे मेरी माई कहु कैसैं कैं जीजै ॥  
रति-रति कै करि जोरि-जोरि कै हिलिमिलि सरबसु दीजै ।  
एक निमिष सम सुख के कारन जुग समान दुख लीजै ॥  
‘कुभनदास’ इह जानिबूझि कै काहे विखु जल पीजै ।  
गोवर्धनघर सब जानतु हैं उपजि खेद तन छीजै ॥

[ पद सं. २२२ ]

युग-युग की सञ्चित अनुराग-निधि को-हृदय की सरल और तरलतम भावनाओं को, जिन्हें कण-कण करके सहेजा गया है, मिलन के अल्पकालीन क्षणों में सर्वस्व-समर्पण के रूप में अपने प्रियतम को सौंप देना और दूसरे ही क्षण में उन्हें बिछोह के शून्य रिक पलों में हार देना-कितनी विडम्बना है । एक पल के सुख के बदले में युग-युगीन अनृत्सि और पीड़ाओं को समेटना है-अमिय तुल्य मिलन का अवश्यम्भावी परिणाम है, वियोग-विष की जलन-यह जानते हुए भी, सर्वाङ्ग में उस जलन और तड़पन की टीस देनेवाले विषाक्त विरहानल को अड़ीकार कर लेना कितना करुण और जीवन के अस्तित्व के लिये धातक हैं । कुभनदास-से भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकते हैं ।

किन्तु इन भोले प्रेमियों से कोई पूछे कि-फिर जान-बूझ कर इस ‘विखु-जल’ के लिये तुम्हारा हृदय क्यों लालायित है ? “ प्रीति तौं काहू सौं न कीजै ” के शब्दों में उन्मुक्त उद्घोष वा निषेधादेश करनेवाले भक्त के हृदय में फिर भी उस ‘सुन्दर स्याम मनोहर, के साथ केलि की एक अनृप्त लालसा होती है-कितनी विलक्षण और अनिवार्य स्वाभाविक स्थिति है-

कब हौं देखि=हौं भरि नैननु ।

सुन्दरस्याम मनोहर इह अँग-अँग सकल सुख दैननु ॥

बुन्दावन विहार दिन-दिन प्रति गोप बृन्द संग लैननु ।

हँसि-हँसि हरखि पतौशा पीतनु बांटि बांटि पथ फैननु ॥

‘कुभनदास’ किते दिन बीते किये रैनि सुख सैननु ।

अब गिरिघर बिनु निसि अब बासर मन न रहत क्यों हूँ चैननु ॥

[ पद सं. ३३४ ]

कितनी बेचैती, कितनी तन्मयता है ! वृन्दावन-विहारी की विविध लीला-माधुरी के दर्शन के लिये नेत्रों में कितनी उत्कट प्यास है—आकुल उत्कण्ठा है ! एक-एक निमिष कोटि—कोटि युग—कल्पों के समान बीत रहा है—उन गिरिधर सुन्दर=स्याम के बिना । कवि की उस वियोग—कथा की मार्मिक पीड़ा को कौन जान सकता है ? ये विष के बुझे विरह—वाण मर्मस्थल को सीधा ही बेघते हैं और विरही का रग—रग उनकी चोट से सिद्धर उठता है । यह वर्णनातीत है—वाणी से परे की अनुभूति है, तथापि एक क्षीण आभास तो इन शब्दों से प्रतिविम्बित होता ही है—

विरह-वाण की चोट जु जाहि लागै सोई जानै ।

भोगइये ते समुद्धि परै जिय कहैं कहा मानै ॥

जैसैं कांड सु बधिक चनकटि होत हैं विखु सानै ।

मरमत नख सिख अंग ततछिनु धोरेहू तानै ।

होत न चैनु निमिष निसि बासर बहुत जलद आनै ।

‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर विनु विथा कौन मानै ॥

[ पद सं. ३३६ ]

इस प्रकार उपरिनिर्दिष्ट कतिपय पदों के भाव-विश्लेषण से सहदय जन समझ सकेंगे कि ब्रजलीला के रसिक-भक्त, कवि-हृदय कुंभनदासजी काव्य और भक्ति के क्षेत्र सें, गीति-लालित्य के तरलित आधार पर अष्टछाप के कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । विप्रलम्भ शृंगार से उनका काव्य विलसित है, जिसमें तदाकार, तद्रूप होकर वे अपने प्रियतम इयाम-सुन्दर के सौन्दर्य-सुधा-सागर में सतत सर्वदा अवगाहन, निमज्जन करते रहते हैं !!



# विषय-सूची



| सं.                                   | नाम | पत्र                       | सं.                       | नाम | पत्र |
|---------------------------------------|-----|----------------------------|---------------------------|-----|------|
| —सम्पादकीय वक्तव्य—                   | १   | २०                         | फूलमण्डली                 | ३९  |      |
| —एक चरित्र-विश्लेषण—                  |     | २१                         | श्रीमहाप्रभुजी की बधाई    | ३९  |      |
| —एक भाव-विश्लेषण—                     |     | २२                         | अक्षयतृतीया               | ४०  |      |
| पद संग्रह ४ [ मूल ]                   |     | २३                         | रथयात्रा                  | ४१  |      |
| (क) वष्टीत्सव-पद-[ १ से ५३ ]          |     | २४                         | वर्षाक्रितुवर्णन          | ४२  |      |
| १ मंगलाचरण                            | १   | २५                         | हिंडोरा                   | ४६  |      |
| २ जन्मसमय- [ बधाई ]                   | २   | २६                         | पवित्रा                   | ५२  |      |
| ३ पलना                                | ३   | २७                         | राखी                      | ५३  |      |
| ४ छठी                                 | ४   | (ख) लीला-पद- [ ५४ से ११८ ] |                           |     |      |
| ५ राधाष्टमी ( बधाई )                  | ४   | १                          | कलेऊ                      | ५४  |      |
| ६ इयामसगाई                            | ४   | २                          | माखन चौरी                 | ५४  |      |
| ७ दानप्रसंग                           | ८   | ३                          | झीडा                      | ५५  |      |
| ८ दानलीला                             | १२  | ४                          | ब्रजभक्त-प्रार्थना        | ५६  |      |
| ९ दशहरा                               | १८  | ५                          | परस्पर हास-वाक्य          | ५७  |      |
| १० रास                                | १८  | ६                          | मुरली-हरण                 | ५८  |      |
| ११ धनतेरस                             | २७  | ७                          | प्रभु स्वरूप-वर्णन        | ५८  |      |
| १२ गोक्रीडा ( कान जगाई )              | २७  | ८                          | श्रीस्वामीनी स्वरूप-वर्णन | ६२  |      |
| १३ दीप-मालिका                         | २५  | ९                          | युगल स्वरूप-वर्णन         | ६७  |      |
| १४ गोवर्द्धन-पूजा                     | २८  | १०                         | छाक ( त्रनभोजन )          | ६८  |      |
| १५ गोवर्द्धनोद्धारण ( इन्द्रमान-भंग ) | ३०  | ११                         | भोजन                      | ७१  |      |
| १६ श्रीगुरुसांईजी की बधाई             | ३१  | १२                         | आवनी                      | ७१  |      |
| १७ वसन्त धमार                         | ३२  | १३                         | आसक्ति-वर्णन              | ७४  |      |
| १८ फाग                                | ३६  | १४                         | आसक्ति-वचन                | ७८  |      |
| १९ डोल                                | ३८  |                            |                           |     |      |

४ ग्रन्थ के उत्तरार्ध में पदसंख्या के अनुसार ही भावार्थ दिया गया है।

| सं. | नाम                     | पत्र | सं.                             | नाम                | पत्र |
|-----|-------------------------|------|---------------------------------|--------------------|------|
| १५  | मान [ सम्बन्धी ]        | ८८   | ५                               | युगलस्वरूप-वर्णन   | १२४  |
| १६  | परस्पर-सम्मिलन          | १००  | ६                               | हिंडोरा            | १२५  |
| १७  | शब्दन                   | १०२  | ७                               | आसक्ति             | १२५  |
| १८  | सुरतान्त                | १०३  | ८                               | दान                | १२६  |
| १९  | खण्डिता [ वञ्चिता ]     | १०८  | ९                               | विरह               | १२६  |
| २०  | विरह [ द्वितीय अवस्था ] | १११  | १०                              | श्रीयमुना-स्तुति   | १२६  |
| (ग) | प्रकीर्ण [ ११९ से १२८ ] |      | ११                              | सीकरी कौ पद        | १२७  |
| १   | आवनी                    | ११९  | १२                              | 'टोड कौ धना' कौ पद | १२७  |
| २   | छाक                     | १२०  | १३                              | विनय               | १२८  |
| ३   | भोजन                    | १२२  | सरल भावार्थ [उत्तराधि] १ से ११७ |                    |      |
| ४   | प्रभुस्वरूप-वर्णन       | १२२  | पद-प्रतीक-अनुक्रमणिका १ से ९    |                    |      |

[ मूल पदों की क्रमसंख्या और विषय के अनुसार भावार्थ देखा जा सकता है ]





कुंभनदास



सेठश्री साकरलाल चालाभाई (अहमदावाद) ना  
जय श्रीकृष्ण





અ. મૌ. ચંપાવેન સેઠશ્રી સાકુરલાલ બાલાભાઈનાં ધર્મપત્રી  
 ( અહમદાવાદ ) ના  
 જય શ્રીકૃષ્ણ

# ‘कुंभनदास’



## वषोत्सव



मंगलाचरण—

१

[ श्रीराग ]

जयति जयति श्रीहरिदासवर्य-धरने,  
वारि-वृष्टि निवारि, घोष-आरति दारि  
देव-पति-अभिमान-भंग करने ॥

जयति पट पीत दामिनि सुचिर, वर मृदुल अंग  
सांवल सजल जलद-वरने ॥  
कर अधर बेनु धरि, गान कलरव सुशब्द,  
सहज ब्रज-जुवतिजन-चित्त हरने ॥

जयति वृद्धाविपिन-भूमि डोलनि,  
अखिल लोक-वंदिनि अंबुरुह चरने ॥  
तरनि-तनया-विहार नंदगोप-कुमार,  
‘दास कुंभन’ नवय तवसि सरने ॥

## जन्मसमय (बधाई) —

२

[ कान्हरो

भयो सुत नन्द के चलो ब्रज-जन सबै  
 होत मंगल, सकल जगत को तिमिर मिटि गयो  
 तन को त्रिविध ताप सुन्यो काननि जवै ॥

उडत नवनीत, दूध, दधि, हरद, तेल  
 वहि चली आतुर मिंथु सहिता सबै ॥

‘दास कुमन’ प्रगट गिरिवर-धरन  
 यहै सुख कोउ दिन भयो नाहीं करै ॥

३

[ रायसो

सब ब्रज अति आनंद भयो प्रगटे गोकुलचन्द ।  
 भाग्य सोहागिनि जसुमती पुन्य-पुंज बाबा नंद ॥

भादों कृष्ण पक्ष आठें निशा रोहिणी नछत्र बुधवार ।  
 ब्रज-जन करत कुलाहल निरखत नंद-कुमार ॥

गृह-गृह तें गोपनि सबै आए राइ-दरवार ।  
 नाचत हेरी गावहीं, ग्वाल करत किलकार ॥

हरद, दूध, दधि माटनि बहुविधि लै जु उठाइ ।  
 सब मिलि पकरत नंदै हरपित नाच नचाइ ॥

सुन्दरी गान करति सबै सुदार मिल्यो है समाज ।  
 ताल, पखावज बाजहीं तूर, नगारे बाज ॥

कान परत सुनिये नहीं रहो घोष सब गाज ।  
 ब्रज-जन देत असीस हैं, ‘जियो ढोटा ब्रजराज’ ॥

जाचक जुरि सब आए जै-जै शब्द उचार ।  
 देत दान सनमान सों कीन्हे सब सत्कार ॥

फूले आनंदराइजू, फूलो जसुमति माइ ।  
 गोद लिए हुलसति बड़ी कमलनैन सुखदाइ ॥

फूली श्रीजमुना वहै, फूले श्रीगिरिशाइ ।  
 फूलयो श्रीबृंदा-विपिन ब्रज-मंडल हरषाइ ॥  
 फूले कीर्ति, बृषभानजू प्रगटी सुंदर जोर ।  
 'दास कुंभन' की जीवनि जियो राधा नंदकिशोर ॥

## पलना —

४

[ रामकली ]

पलना झूलत गिरिधरलाल ।  
 जननी जसोदा बैठी झूलावति, निरखति बदन रसाल ॥  
 बालक-लीला गावति, हरषित देति करनि सों ताल ।  
 'कुंभनदास' वड भागिनि रानी वारति मुक्ता-माल ॥

५

[ विलावल ]

रतन खचित कंचन को पलना, ता-मधि झूलत गिरिधरलाल ।  
 जसुमति हरपि झूलावति, गावति सुंदर-गुन दै-दै कर ताल ॥  
 करि गुलगुली हँसावति हरि कों, कबहुँक मुख सों चुंबति गाल ।  
 'कुंभनदास' किलकत नैद-नंदन अंगुरी गहिके सिखवति चाल ॥

## छठी —

६

[ धनासिरी ]

आजु छठी जसुमति के सुत की चलो बधावन जैए माई ! ।  
 भूजन वसन साजि, मंगल लै सकल सिंगार बनाई ॥  
 भलिय बात सब करी वेद-विधि सुत जायो नैद-रानी ।  
 पुन्य पूरन फल प्रगट भयो है, निरखति नैन अधानी ॥  
 सब ब्रज में सुख-रास भयो है गृह-गृह होत भलाई ।  
 'जुग-जुग राज करो गोकुल में नंद-सुवन सुखदाई ॥'  
 पूरन काम भए निज-जन के जीवेंगे जसु गाई ।  
 'कुंभनदास' प्रभू की जननी निरखि-निरखि सुख पाई ॥

## राधाष्टमी (वधाई) --

७

[ सारंग ]

राधेजू सोभा प्रगट भई ।

वृद्धावन गोकुल-गलियनि में सुख की लता छई ॥  
प्रति-प्रति<sup>२</sup> पद संकेत गोवर्धन, उपमा उपजति नई ।  
'कुंभनदास' गिरिधर आवहिंगे आगें पठै दई ॥

८

[ गंधार ]

प्रगटी नागरि रूप-निधान ।

निरखि-निरखि फूलति ब्रज-वनिता नाहिन उपमा कों आन ॥  
उपमा कों जे जे कहियतु हैं ते जु भए निखान ।  
'कुंभनदास' लाल<sup>३</sup>गिरिधर की जोरी सहज समान ॥

९

[ देवगंधार ]

यह सुख देखो री ! तुम माई !

बरस गांठि वृषभान-लली की बहुरि कुसल साँ आई ॥  
आगम के दिन नीकें लागत सबहिन मन सचु पाई ।  
धन बड़ भाग रानी कीरति के पुन्य-पुंज-निधि पाई ॥  
प्रगटी लीला सकल या ब्रज में आनंद-वेलि बढाई ।  
'कुंभनदास' की जीवनि राधे ! जसुमति-सुत-सुखदाई ॥

## श्याम-सगाई—

१०

[ धनाश्री ]

परम कुलाहल होइ श्रीवृषभान कें [ टेक ]

प्रगटी कुवैरि श्रीराधा जाकें आनंद-निधि सुखदाई ।  
सुनि गोपी मन मुदित भईं अति घर-घर बजति बधाई ॥ श्रीवृष० ।

<sup>१</sup> हो गवलि राधा प्रगट भई ( वं. ६/४ ) श्री राधा सोभा० ( वं. १४/२ )

<sup>२</sup> रति-पति. ( वं. २/२ ) <sup>३</sup> गिरिधर कारन यह जोरी ( वं. २/४ )

भवन-भवन प्रति कलम विराजित, बंदन-माल बंधाई ।  
 साजि सिंगार चलीं ब्रज-बनिता भान-भुवन में आईं ॥ श्रीबृष्ट०  
 कीरति-सुता-बदन विधु देख्यो, निरखि-निरखि सुख पाई ।  
 प्रेम मगन गावति बृज-सुंदरि प्रफुलित मन हरपाई ॥ श्रीबृष्ट०  
 नन्दीस्वरते नंद जसोदा गोपनि न्योंति बुलाए ।  
 लली-जन्म सुनि नँद अति आनंदे कीन मनोरथ मन भाए ॥ श्रीबृष्ट०  
 बल मोहन कों उवटि न्हवाए रुचि-रुचि कियो सिंगार ।  
 पट भूषन नौतन पहिराए शोभा बढ़ी अपार ॥ श्रीबृष्ट०  
 पीत चोलना श्याम-कटि सोभित पहिरेंपीत झंगुलिया सुदेस ।  
 पीत कुलह सिर ऊपर राजति मन हरलियो नरेस ॥ श्रीबृष्ट०  
 पग नूपुर रुनझुन करें, कटि छुद्र घंटिका सोहै ।  
 मुक्ता के आभूषन ऊपर कुंडल-झलक सब जग मोहै ॥ श्रीबृष्ट०  
 बाहनि बाजूबंद, कडा जटित कर, अंगुरिनि मुदरी राजै ।  
 जगमगात हीरा ज्यों चिंबुक छवि निरखत रवि लाजै ॥ श्रीबृष्ट०  
 मोतिन लर तुरा सिर सोहत, लटकि, करें मृदु हास ।  
 करथो सिंगार विविध विधि नित मन बढत हुलास ॥ श्रीबृष्ट०  
 चले कुवैर लै बरसाने कों प्रफुलित मन ब्रज-राज ।  
 ब्रज-जन ब्रज-रानी गोपिनि लै निरुसी मंगल साजि समाज ॥ श्रीबृष्ट०  
 प्रेम मुदित गावत गीतनि सब ब्रज बरसाने आए ।  
 श्रीबृष्टभान कीरति रानीजू अति आदर करि पधराए ॥ श्रीबृष्ट०  
 कुशल सबै पूँछत नँदजू की निरखि नैन भरि आए ।  
 देखो या बालक की लीला कोटिक विधन नसाए ॥ श्रीबृष्ट०  
 गिरि-प्रताप तें सब सुख लहियतु, जहै हरि प्रगट दिखावत रूप ।  
 हमरी लली, तुम्हारे लालन यह जग जाए परम अनूप ॥ श्रीबृष्ट०  
 तुम जो-हमारे भवन पधारे भाग्य बडो है आज ।  
 बरसानो रमणीक देखियतु निरखत सकल समाज ॥ श्रीबृष्ट०

भीतर भवन पधारिये नंदजू कनक-पटा बैठाए ।  
 कीरति कन्या महरि-गोद दै निरखि-निरखि सचु पाए ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 गोद लियो जसुमति के सुत कों निरखि नैन सिराई ।  
 अपनी कुवैरि जसुमती-गोद दै दोऊ उनकी लेत बलाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 सुनो महरि ! आपुन वडभागिनि, देखो— एसी निधि पाई ।  
 विधना ने आपुन दोऊ जन की तन की तयत बुझाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 करि भोजन की पांति सवनि कों कनक-पटा बैठाए ।  
 छिंग-छिंग धरीं सवनि कों ज्ञारी जमुनोदक भरि लाए ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 कंचन थार अरु स्फटिक कटोरा, प्रथक्-प्रथक् करि राखे ।  
 परोसनहारि पुरोहित रस-हित अमृत वचन मुख भाखे ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 बूँदी सेव मनोहर लडुआ, मगद और मोहनथार ।  
 खुरमा, खाजा, जलेशी, फेनी, घेवर धृत तरेजू अपार ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 गूँजा, मठी, सकरपारा, तवापुरी रमभीनी ।  
 उड्ड दार पूठन भरि हींग देकरि कचौरी कीनी ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 उपरेठा कों खांड पागिके चन्द्रकला रुचि लाई ।  
 सिद्ध करी रस धृत सों पूरित जैवत अति सचु पाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 खासापूरी, खरमंडा, खोवा बासोंदी और मलाई ।  
 बिविध भाँति पकवान बनाए साजी बहुत मिठाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 कनक वरन वेसन व्यंजन अति कहाँ लगि करों बडाई ।  
 बिविध भाँति मेवा जु परोसे आम, अमरस अधिकाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 खट्टरस केउ प्रकार अनगिनत, कहत न आवै पार ।  
 जैवत सकल समाज सहित सुन्दर व्रज-राजकुमार ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 जैइ रहे तब सखरी मंगाई अति रस धृत-भीने ।  
 दार, कट्टी अरु पिथोर पक्कौडी, पापर अति सरसीने ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 भेंडी, परवर और साक सब-भाजी हींग छोंकारी ।  
 सो जैवत रुचि उपजी सबकें, स्वाद बढ़ो अति भारी ॥ श्रीबृष्ट० ।

भोजन कियो सबन सुख मानी, सब मिलि अँचबन कीनो ।  
 हस्त अँगोछि बीडी कर लीनी पान खात सुख दीनो ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 इहि विधि छप्पन भोग कियो सब भयो जु मन-आनंद ।  
 कुवैर कुवैरि सुख चन्द निहारत कटत सकल दुख-दंद ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 श्रीबृष्टभान और नंद सब मिलि महामहोच्छव कीनो ॥  
 नाचत, गावत विवस भए सब प्रगटधो प्रेम प्रवीनो ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 भान कहत रानी कीरति सों-हरपि कुवैरि की करो सगाई ।  
 नन्द-गृह बालक अतिस्य सुन्दर जोरी परम सुहाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 इतनी सुनत कीरति कुवैरि कों जसुमति-गोद बैठाई ।  
 जसुमति लालन कीर्ति-गोद दै कुवैरि मुदित खिलाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 कीरति कही- महरि ! यह लली लला की सगाई कीजै ।  
 हिलि मिलि के नैननि कौ यह सुख सदा निरंतर लीजै ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 जसुमति कहथो नंद के आगे- कीरति श्रीबृष्टभाने ।  
 सुनत सगाई की बातनि सों आनंद उर न समाने ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 कीरति बोलि सबै ब्रज-नारी व्याह के गीत गवाए ।  
 सुनि सबहिन मन हरप भयो अति भए मनोरथ मन-भाए ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 आज्ञा लै जु चले नंद गृह कों कान्ह कुवैर बल-संग ।  
 खेलत ख्याल करत गैलनि में मन में बढ़ी उमंग ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 पहुंचे जाह नंदीस्वर कों बृष्टभान पठायो करन सगाई ॥  
 स्यामसुंदर की करी सगाई हरपित वधू वृद्ध बुलाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 देति असीस सबै मिलि जुवती- सुवस बसो ब्रज-राई ।  
 चिरजीवो बृष्टभान-सुता अरु स्यामसुंदर सुखदाई ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 को बरनै यह नंद-कुमार गुन लीला ललित अपार ।  
 रोम-रोम रसना करो, कोउ कवि कहत न पावै पार ॥ श्रीबृष्ट० ।  
 लाडिली लाल-पदरज उर राखि गावै ‘कुंभनदास’ ।  
 मागों निरंतर दोउ कर जोरि सदा रहों चरननि के पास ॥ श्रीबृष्ट० ।

## दान-प्रसंग—

११

[ देवगंधार ]

गोपीप्रति प्रभुवचन—

हमारो दान दै गुजरेटी !

नित तू चोरी बेचति गोरस आजु अचानक भेटी ॥  
 अति सतराति क्यों बछटेगी वडे गोप की बेटी ।  
 'कुंभनदास' गोवर्धन-धारी भुज ओढिनी लपेटी ॥

१२

[ देवगंधार ]

आजु उहै बन जाइवौ ।

उह मारग आवति दधि बेचन, छीनि सबै दधि खाइवौ ॥  
 उहै बन घास बहुत देख्यो है, तामें गांड चराइवौ ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर मोहिं कहयो राघा-रंग रंगाइवौ ॥

१३

[ धनाश्री ]

आजु दधि देखों तेरौ चाखि ।

कहे धों मोलु कितै बेचैगी, सत्य वचन मुख भाखि ॥  
 जोई तू कहै सोई हौं दहों, संग-सखा सब साखि ।  
 जो न पत्याइ ग्वालिनी हम कों कंठसरी लै राखि ॥  
 लै संग चले घर दाम देन कों, तब हि <sup>१</sup>जनायो कटाखि ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर सखसु दियो तताखि ॥

१४

[ सारंग ]

दान दै रसिकिनी ! चली क्यों जाति है ।

सुनो तुम ग्वालिनि ! आइ मेरी बात  
 पिए दधि दूध विधि दे ग्वालनि अधाति है ॥

<sup>१</sup> जनायो नेकु कटाखि (क)

नैन की सैन सों मीन लज्जित भए  
पहिरी तन कंचुकी लिपटी गाति है ॥  
पगनि नूपुर बजें, मांग मोतिनि सजें,  
भरे जोवन जोर, अंग न समाति है ॥

वैन मुख सों बोल, नेकु धूधट खोल.—  
यह सुनि खालिनी मन हिं मुसकाति है ॥  
कुचनि अंचल ढांकि, लगी मोतिनि पांति  
भरे रस कलस दोउ, मदन ललचाति है ॥

नेकु रस चाहिए अंचल के कलस कौ  
कृपा करि प्यारी ! अब कहा कछु बाति है ॥  
स्यामसुंदर लहचो ‘दास कुंभन’ कहचो  
सोंह व्रजराज की, दान-दधि खाति है ॥

१५

[ सारंग ]

गोपीप्रभुप्रति बचन :—

जान व देहु, छांडहु मेरो अंचलु लालन ! होति है अवार ।  
धर तें चलें आजु बड़ी वेर भई मोहि सुंदर नंद-कुमार ! ॥  
कालि दधि जमाइ भली भाँति सों तुम कों लाइहों बड़ी सवार<sup>१</sup> ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर ! तुम हवाईं बैठे रहियहु इहै विचार ॥

१६

[ सारंग ]

काहू तुम चलन न देत इहि बटियाँ ।

रोकत आइ स्याम घनसुंदर ! निकसत हीं गिरि-घटियाँ ॥  
तोरत हार, कंचुकी फारत, मांग निहारत पटियाँ ।  
पकरत बांह मरोरि नंद-सुत ! गहि फोरत दधि-चटियाँ ॥  
'कुंभनदास' प्रभु कब दानु लीनों ? नई वात सब ठटियाँ ।  
गिरिधर ! पांइ परिये<sup>२</sup> तुम्हारे, जानत हो सब गटियाँ ॥

१ पूजिये (क) २ बड़ी वार (ख)

१७

[ सारंग ]

इह तौ एक गांउ कौ वास ।

केतकु लै बचिये सखि ! दिन-प्रति निमिख न छांडत पास ॥  
 इह घाटी पैंडो सब ब्रज कौ, नांहिन और निकास ।  
 नँद-नंदन कौ सहज थान हथो, बालक-संग बिलास ॥  
 कबहुँक भाज्जन लेत छीनि हठि, कबहुँ करत दधि-नास ।  
 कबहुँक भुज गहि चलत कुंज लै, इह गति कहिये कास ॥  
 बोलि न सकां सकुच अति जिय में, लोक-लाज कौ त्रास ।  
 गिरिधर लाल ! जानि पाए हो, जानत ‘कुंभनदास’ ॥

१८

[ बिलावल ]

अरी ! इह<sup>१</sup> दान जु लैहैं रस गो-रस कौ, यही हमारौ भाज ।  
 हम दानी तिहुं लोक के, चारों जुग में राज ॥  
 बहुत दिननि की गई अछूती दान हमारै भाज ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धनधर वृन्दावन में गाज ॥

१९

[ बिलावल ]

गोपीप्रति गोपीबचन :—

यह कौन है री ! याहिं दान न देहैं गोवर्धन के ग्वैंडे ।  
 हाटनि, गामनि, खेत, मड़ैया कान्हर डोलत ऐंडे ॥  
 बाप देत कर कंस रजा कों, पूत संगाती डोलत मैंडे ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर चले जाउ किन पैंडे ॥

२०

[ देवगंधार ]

मदन गोपाल हठीलो री ! माई !

कौन वेर भई हम ठाढ़ी हैं, रोकै कुंवर कन्हाई ॥  
 दान दिये बिनु जान न दैहों तुम्हें वृषभान-दुहाई ।  
 काहे कों रारि बढ़ावति सुंदरि ! देहु हमारो दान चुकाई ॥  
 दान ही दान कहा कहो मोहन ! इह कैसी वरियाई ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवद्वन-धर मुसकि ठगौरी लाई ॥

२१

[ देवगंधार ]

मथनियां आनि उतारि धरी,  
 दान अटपट मांगत होटा दोउ कर जोरि खरी ॥  
 जब नँदलाल चीर गहि झटक्यो, तब मैं बहुत डरी ।  
 'कुंभनदास' प्रभु दधि-बेचन की विरियां जानि टरी ॥

२२

[ सारंग ]

दान ब्रजराज कौ लाडिलौ लेत है ॥

धरें सिर माट दधि चलो वाही डगर  
 व्है इक ठौर, करत सँकेत है ॥  
 गई ग्वालिनी प्यभरि सांकरी खोरि,  
 तहां देखे स्याम ठाढे बात कछु कहत हैं ॥  
 हँसी मुख मोरि जब एक अंचलु गहयो,  
 छांडु अंचल अबै दान तोहिं देत हैं ॥

आइ पूछत लाल कहां की ग्वालिनी जाति मिस ही  
 निकरि, कहति हम सबै वृषभानपुर ही बसत हैं ॥  
 'दासकुंभन' प्रभु स्यामसुंदर ! सकल पियो-  
 दूध, दधि, तहां ग्वाल संग बहुत लहत हैं ॥

# दानलीला —

२३

[ विलावल ]

गोकुल की<sup>१</sup> ब्रज-नारि दहयो नित बेचन आवै ॥  
 भूषन विविध सिंगार बनी अति परम सुहावै ॥ (टेक)  
 एक तें एक विराजहीं सोभा वरनि न जाइ ।  
 बन्यो कुंज फूलयो सखी ! हो रंग-रस धरयो है बनाइ ॥१॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

प्रात उठे नँदलाल सखा सब सैन बुलाए ।  
 सुनी (है) दान की बात, सकल आतुर उठि धाए ॥  
 पेंडो रोकयो जाइके कालिदी के तीर ।  
 नवल कुंज सुख-दाइका हो तहां बैठे बल-वीर ॥२॥

कहति<sup>२</sup> ब्रज-नागरी ॥

बन में देखे स्याम सकल मिलि भईं इक ठाईं ।  
 लागीं करन विचार अवै कहा करि हो माई ! ॥  
 या मारग तुम छांडिके और हि मारग जाहिं ।  
 इहि<sup>३</sup> ढोटा है नंद कौ, सो छीनि-छीनि सब खाहिं ॥३॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

सुनिके धाए ग्वाल शेकिके ठाडी कीन्ही ।  
 कहां जाहुगी भाजि, दुहाई नँद की दीन्ही ॥  
 दान कृपा करि दीजिये, छांडो अधिक सयान ।  
 लाग हमारौ लेहु अब, आली ! राखों तेरौ मान ॥४॥

कहत नंद-लाडिलौ ॥

कब तुम लीन्हो दान, कबै तुम भए जु दानी ?  
 सुनी न कब हूँ बात, जाइ वृद्धौ नँद-रानी ॥  
 उदर बसे तुम देवकी, आए गोकुल भाजि ।  
 जीए<sup>४</sup> जूठौ खाइके हो अब क्यों नहिं आवै लाजि ॥५॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

१ तें २ चली. ३ इहां तो ढोटा नंद. ४ अब ही जेहो खाइके. ( ३६/४ ).

जोवन कौ अति गर्व ग्वालि ! तू बोल सँभारी ।  
 दही, दूध के मद सु देति है हम कों गारी ?  
 नंद-दुहाई करत हों, लेउं सबनि कों लूटि ।  
 भूषन, वसन छिडाइके हो हार<sup>१</sup> सबनि के टूटि ॥६॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥

लेत लूट कौ नाउं, कहा कोउ तेरी चेरी ?  
 कब लीन्हो तुम दान ?, कबै जु दुहाई फेरी ?  
 सिर पर राजा कंस है, बोलो बचन विचारि ।  
 जो अब कें सुनि पाइ है तो दुख पावै नँद-नारि ॥७॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

तुम हो ग्वालि ! गँवारि कहा मोकों समुझावै<sup>२</sup> ?  
 सिव, विरंचि. सनकादि निगम मेरौ अंत न पावै ॥  
 भक्तनि की रच्छा करों दुष्टनि कौ संहार ।  
 कंस केस धरि मारि हों सो धरनी उतारों भार ॥८॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥

बंधन पाए मात, तबै क्यों न ऐसी कीन्ही ?  
 मथुरा छांडी राति, सरन गोकुल में लीन्ही ॥  
 बहुत बडाई करत हो सोचो मन हिं विचार ।  
 खाए आघे वेर के हो सो वन<sup>३</sup> में होत कुमार ॥९॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

तप करिके नँद-नारि मांगि मो ये बर लीन्हो ।  
 बचन वेद वपु धारि, आइ गोकुल सुख दीन्हो ॥  
 तुम कहा जानो बावरी ! हम त्रिभुवन-पति राइ ।  
 जो<sup>४</sup> व जलस्थल में वसै, सो घट-घट रहौ समाइ ॥१०॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥

१ ओर सबनि के टूटि ( ३६/४ ). २ डर पावै ( २२/१२ ) ३ सो वत होत ( बंध ३६/४ )  
 ४ जीवजल ( पाठ )

जो—तुम ऐसे कान्ह ! करत क्यों घर—घर चोरी ।  
 मैं झगरी जब जाइ लियो पीताम्बर छोरी<sup>१</sup> ॥  
 तनक दही के कारने वांधे जसुमति मात ।  
 हम निज बंध छुडावहीं, सो बोलत कहा इतरात ? ॥११॥  
 कहति व्रज—नागरी ॥

नल कूवर के हेत जानि हम आपु बंधाए ।  
 तोरे तरुवर जाइ, बचन मुनि सत्य कराए ॥  
 मन में सोचो राधिका ! चीर—हरन की खात ।  
 नगन जमुना तें निकसिके सो आईं हा हा खात ॥१२॥  
 कहत नंद—लाडिलौ ॥

ढीठ भये तुम कान्ह ! बचन बोलत जु कठोरे ।  
 बन हिं चरावो गाँइ, फिरो ग्वालनि—संग दोरे ॥  
 वा दिन विसरे सांवरे ! छाक हिं चुनि—चुनि खात ।  
 एँडे—एँडे जात हो सो—बोलत कहा इतरात ? ॥१३॥  
 कहति व्रज—नागरी ॥

अवनि—असुर अति प्रबल मुनीजन—कर्म छुडाए ।  
 गऊ संतनि के हेत, देह धरि व्रज में आए ॥  
 जेते संगी ग्वाल हैं, ते ते सब हैं देव ।  
 हमनि गर्व इन्द्र कौ हरयो सो करत तुम्हारी सेव ॥१४॥  
 कहत नंद—लाडिलौ ॥

बन में बोलत बोल कहा अब मोहि सुनावै ?  
 जानों तेरी रीति कहा बलवंत कहावै ॥  
 जो ऐसे हो सांवरे ! तो काटौ वसुदेव—फंस ।  
 सात बालक जब मारियो हो तो क्यों न मारयौ—कंस ॥१५॥  
 कहति व्रज—नागरी ॥

केसी कंस हिं मारि, बंध वसुदेव छुडाऊं ।  
 उग्रसेन कों राज देउं, कर चैवर दुराऊं ॥  
 शुभन चतुर्दस गावहीं अहनिमि अतुल प्रताप ।  
 मल्ल कुवलया मारि हों, सो तोरेंगो गहि चाप ॥१६॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥

कहा अधिकाई देत कान्ह हौं नीकें जानों ?  
 जाति-पांति-कुल-रीति कछू हम तें नहिं छानों ॥  
 लरकनि के संग खाइके नाँउ धरयो है ज्वाल ।  
 अब कैसें दधि खाउगे, सो- हम तो हैं ब्रज-बाल ॥१७॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

दधि-भाजन लेऊं छीनि कंठ-मुकावलि तोरें ।  
 धरों पानि पर पांइ भलें नव तनिया तोरें ॥  
 तुम खालिनि वृषभान की, हम हैं नंद-कुमार ।  
 जाके बल पर आई हो- सो तापे जाउ पुकार ॥१८॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥

हम हैं जाति अहीर दहयो नित बेचन आवें ।  
 सुन्यो न दधि कौं दान कहा अब नई चलावें ? ॥  
 तुम अनवीगे सांवरे ! रोकत हो बन मांहि ।  
 या मुख सों दधि खाउगे, सो- बैठिकदम की छांहि? ॥१९॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

खालि ! नचावति नैन-सैन सूधे नहिं बोलति ।  
 हम अनवीगे नांहि, तुम हि अनवेगी डोलति ॥  
 जब तें ब्रज में हौं भयो, तब तें लीन्हो दान ।  
 जाइ कहो ब्रजराज सों हो दूरि करो अभिमान ॥२०॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥

टेढ़ी बांधी पाग स्याम ! टेढे रहो ढाढे ।  
रोकत हो व्रज-नारि रावरे घर के बाढे ॥  
जाके आसरे पाइके भले बने हो ? नाथ !  
सखा भाजि सब जाइंगे तेरे कोउ न आवै साथ ॥२१॥  
कहति व्रज-नागरी ॥

एसो भूपति कौन ? जो- हम पे हाथ उठावै ।  
बंदीजन जुग वेद पढ़े, द्वारे नित गावै ॥  
ब्रह्म-रूप उतपति करों, रुद्र-रूप संहार ।  
विष्णु-रूप रक्षा करों, सौ मैं हों नंद-कुमार ॥२२॥  
कहत नंद-लाडिलौ ॥

जो- तुम एसे ब्रह्म हमारे छोंके ढूँढो ?  
घर-घर माखन खाइ कान्ह ! तिरियनि-संग सूँढो ॥  
तुम हिं दोस नहिं सांवरे ! जाए काली रात ।  
वन में ब्रह्म कहावहीं सो-भ्यों तजे पिता अरु मात ? ॥२३॥  
कहति व्रज-नागरी ॥

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सबै मेरी ठकुराई ।  
हैं बृंदावन-चंद रहो सब मांझ समाई ॥  
तू जो बदति है बावरी ! मेरो कहा है नांड ।  
गज<sup>१</sup> पिपीलिका आदि दै हो सब ही मेरी ठांउ ॥२४॥  
कहत नंद-लाडिलौ ॥

दधि-खैवे की बात मांगि सूर्येई लीजै ।  
काहे करत विवाद लाल ! ऐसी नहिं कीजै ॥  
जो-ऐसे बलवंत हो तो मथुरा लैन किन जाहु ?  
कंस मारि घर आहुगे हो तब मेरौ दधि खाहु ॥२५॥  
कहति व्रज-नागरी ॥

<sup>१</sup> गजद पछंद विपील ये हो सो है मेरौ ०। ( पाठ )

सुनु राधे ! नवनारि ! जबै हैं मथुरा जैहों ।  
 करनो है वहु काज, फेरि गोकुल नहिं आहों ॥  
 कौतकु देख्यौ चाहही, अबहिं दिखाऊं तोहिं ।  
 अबकौ गयो नहिं आइ हों फिरि देखौ नहिं मोहिं ॥२६॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥

काहेकों मथुरा जाहु, वैन ऐसे नहिं बोलो ।  
 हम तुम रहें समीप सदा गोकुल में खेलो ॥  
 दही, दूध की को गनै नित प्रति मांगो दान ।  
 तुम्हें लाज या बात की सो हमें होत अतिमान ॥२७॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

तुम अबला अज्ञान हमारे कृत्य न जानों ।  
 पठयो काली देस, कियो दावानल पानों ॥  
 सुरपति ब्रज पर कोपियो गिरिवर लियो उठाइ ।  
 वन हिं वकासुर मारियो हो बालक बच्छ छुडाइ ॥२८॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥

मुदित भईं ब्रज-नारि दद्यो लै आगें राख्यौ ।  
 ग्वालनि दीन्हों बांटि, रख्यौँ प्रभु आपहि चाख्यौ ॥  
 प्रीति पुरातन जानि मिली वृषभान-कुमारी ।  
 तन मन अरप्यौँ स्याम कों सो वस कीन्हें गिरिधारी ॥२९॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥ (?)

तुम त्रिभुवन-पति नाथ ! करो सोई जिय भावै ।  
 तुम्हरे गुन अरु कर्म कछु हम कहत न आवै ॥  
 सेस सहस्र मुख गावहीं ध्यान धरें त्रिपुरारि ।  
 हम अहीरि ब्रजवासिनी हो क्यों हूं करि पावें पारि ॥३०॥  
 कहति ब्रज-नागरी ॥

१ अभिमान ( ३६/४ ). २ कछु एक आपुन चाख्यौ ( ३६/४ ). ३ सोंप्यौ ( ३६/४ ).

राधाकृष्ण-विवाद परस्पर गाइ सुनावै ।  
 मन-वांछित फल होइ हिंदै के ताप समावै ॥  
 स्यामा स्याम विराजहीं अवलोकें सुख-रास ।  
 यह बानिक मो-हिय बसो हो बलि २ 'कुंभनदास' ॥३१॥  
 कहत नंद-लाडिलौ ॥ (?)

## दशहरा —

२४

[ सारंग ]

आजु दसहरा सुभ दिन नीकौ ।  
 गिरिधरलाल जबारे पहिरत, बन्धौ है भाल कुमकुम कौ टीकौ ॥  
 मात जसोदा करति आरती, वारति हार देति मोतिनि कौ ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर त्रिभुवन कौ सुख लागत फीकौ ॥

२५

धनि दिन आजु विजय-दसमी कौ ।  
 ग्वाल बाल सब बनि-बनि आए, नंद-नैदन तामें सोभित नीकौ ॥  
 लाल पाग झीनी रंग भीनी, ता-मधि लसत मृग-मद कौ टीकौ ।  
 'कुंभनदास' प्रभु श्रीविठ्ठलेस, पूजत वृच्छ समी कौ ॥

## रास —

२६

मोहन मधुर कूजत चैनु ।  
 सरस गति संगीत उघटत, धरत मन नहिं चैनु ॥  
 जाइ मिलिए प्रानपति सों अंग व्याप्तौ मैनु ।  
 'दास कुंभन' लाल गिरिधर, चलीं सब सुख दैनु ॥

२७

[ बिलावल ]

चलहि राधिके ! सुजान, तेरे हित सुख-निधान,  
 रास रच्यौ कान्ह तट-कलिंद-नंदिनी ॥  
 निर्तत जुवती-समूह, रागरंग अति कुतूह,  
 बाजति रस-मूल मुरलिका अनंदिनी ॥

बंसीवट निकट तहां, परम रमन भूमि जहां,  
 सकल सुखद बहत मलय वायु मंदिनी ॥  
 जाति ईषद विकास, कानन अतिसय सुवास ।  
 शका-निसि सरद-मास विमल चंदिनी ॥

‘कुंभनदास’ प्रभु निहारि, लोचन भरि घोष-नारि,  
 नख-सिख-सौन्दर्य काम-दुख निकंदिनी ॥  
 विलसहु भुज ग्रीवा मेलि, भामिनी सुख-सिंधु झेलि,  
 गोवर्द्धन-धरन-केलि जगत वंदिनी ॥

२८

[ गौडौ-इकताल ]

कमलनयन ए्यारे अवघर तान जानत ।  
 अलग सों लग, अरु राग सों रागिनि, बहुत अनागत आनत ॥  
 रसिक-राइ सिर-मौर, गुनिनि मँह गुनी तुम हिं जानत ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धनधर हरत लाल सब कौ मन, जब गानत ॥

२९

[ श्रीराग-चर्चरीताल ]

गोपाल<sup>१</sup>तरनि-तनया-तीर रास-मंडल रच्यौ,  
 अधर कल मधुर सुर<sup>२</sup> बैनु बाजै ॥  
 जुवति-जन जूथ-संग नृत्तत अनेक रंग,  
 निरखि अभिमानु तजि काम लाजै ॥

<sup>१</sup> तरनि तनया-तीर (क).   <sup>२</sup> धुनि (क).

स्याम तनु पीत कौसेय, सुभ पद नखनि—  
चंद्रिका सकल भुव-तिमिर भाजै ॥

ललित अवतंम, भ्रुव धनुष, लोचन चपल—  
चितवनि जनु मदन-वान साजै ॥

मुखर मंजीर, कटि किंनी कुनित ख  
बचन गंभीर जनु मेघ गाजै ॥

‘दास कुंभन’ नाथ हरिदासवर्य-धर  
नख-सिख सुरूप अद्भुत विराजै ॥

३०

[ केदारी ]

पूरत मधुरे वैनु रसाल ।

चारु धुनि वह सुनत स्वननि, विमोही ब्रज-बाल ॥  
राज रितु, गिरि गोवर्धन-तट रच्यौ रास गोपाल ।  
देखि कौतकु चंद भूल्यौ, तजी पश्चिम चाल ॥  
थकित सुर, मुनि, पवन, पसु, खग, सुधि न रही तिहि काल ।  
‘दास कुंभन’ प्रभु हरयौ मन गोवर्द्धन-धर लाल ॥

३१

[ केदारी ]

गोविंद<sup>३</sup> करत मुरली-गान ।

अधर कर धरि स्याम सुंदर सप्त सुर वंधान ॥

विमोही ब्रज-नारि<sup>४</sup>, पसु, पंखि सुनै दै धरि कान ।

चर स्थिर<sup>५</sup> हो फिरत चल, सब की भई गति आन ॥

तजि समाधि जु मुनि रहे, थके व्योम विमान ।

‘कुंभनदास’ सुजान गिरिधर रची अद्भुत ठान ॥

१ मधुर (ख) २ मोहन (बंध ९/२ ५५). ३ बाल (क). ४ स्थिर रह्यो फिरै अचल. (क)  
५ सब थके व्योम. (क)

३२

[ मालवगौरी ]

रास-मंडल बने गिरिवर-धरन लाल ।

सुभग यमुना-पुलिन अति प्रफुलित कदंब,  
सरद-निसि चंद निरखि थकित व्रजबाल ॥

भूषन, बसन अंग-अंग नौतन सखी !

चले दोऊ मदन करत अधर पान ।

बनी गौर स्याम-छबि कोटिक सोभा-  
कहा कवि कहै ? 'कुंभनदास' जिय जान ॥

३३

[ मालवगौरी ]

रास-विलास रंग भरि नाचत नवल किसोर, नवीन<sup>१</sup> किसोरी ।

एक हि बैस, रूप सम एक हि गिरिधर स्याम, राधिका गोरी ॥

नव पट पीत, अरुन नव भूषन, नव किंकिनि कटि-तट धुनि थोरी ।

सकल सिंगार विचित्र<sup>२</sup> विराजित मानहु सोभा-त्रिभुवन चोरी ॥

तान, बंधान, मान रव सों मिलि<sup>३</sup> विधिना रची सरस जोरी ।

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर सुरति-केलि कंचुकी छोरी ॥

३४

[ केदारी ]

रास-रंग चृत्य मान अद्भुत गति लेत तान,

जमुना-पुलिन परम खन गिरिवर-धरन राजै ॥

वनिता सत-जूथ मंडल गंडनि पे झलकें कुंडल,

गावत केदार राग, सप्त सुरनि सजै ॥

दोऊ स्यामा-मध्य मोहन रचित मरकत मनि कंचन खचित,

सिथिल बसन कटि-तट तें आपुने हाथ साजै ।

'कुंभनदास' प्रभु नव रंग सकल कला शुन-निधान,

स्वर-जाति हिं लेति स्यामा अंग हि अंग विराजै ॥

<sup>१</sup> नवल (क)    <sup>२</sup> सम एक, गिरिधरन स्याम. (ख)    <sup>३</sup> विराजित मानों सोभा त्रिभुवन की हैं  
चोरी (क)    <sup>४</sup> रव संमिलित (क)

३५

[ केदारौ ]

गावति गिरिधरन—संग परम मुदित रास—रंग,  
उरप, तिरप लेत तान नागर नागरी ॥  
सरि-गम-पथ-धनि, गम-पधनि, उधटित सप्त सुरनि,  
लेति लाग, दाट, काल अति उजागरी ॥

चर्वन ताम्बूल देत, ध्रव ताल हिं गति हिं लेत,  
गिडि-गिडि तत—थुंग—थुंग अलग लाग री ॥  
सुरति—केलि रास—विलास वलि—बलि ‘कुंभन दास’  
श्रीराधा नंद—नँदन वर सुहाग री ॥

३६

[ केदारौ ]

चलहु नव नागरी रूप गुन—आगरी,  
रास ठान्यौ स्याम सुभग जमुना—तीर ॥  
साजि भूषन सकल, मुदित कर मुख कमल,  
बिविध सौरभ मिलयो पहिरि दच्छिन—चीर ॥

अघर मुरली लसै, प्रान तोमें बर्सै,  
नाहिं भावै कलु, बढ़ी अति स्मर—पीर ॥  
जाइ मिलि विमल मति, छांडि सब आन गति,  
ज्यों—जिय सुख लेहु मीन पावै नीर ॥

कटि जटित पीत पट, सीस लटकत मुकट,  
कुनित भर कुसुम—मध्य मधुप, कोकिल, कीर ॥  
‘दास कुंभन’ प्रभु सप्त सुर सों मिले—  
गावत हैं केदारौ राग गिरिवर—धरन धीर ॥

३७

[ मालव ]

नाचति रास में गोपाल—संग मुदित घोष—नारी ।  
तरु तमाल स्यामलाल, कनक—बेलि प्यारी ॥

चल नितं व्र, किंकिनि कटि लोल, बंक ग्रीवा ।  
राग, तान, मान-सहित बेनु-नाद सींवा ॥

सम-जल-कन सुभग धरे रैनि-रंग सोहै,  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर व्रज-जुवतिनि मोहै ॥\*

३८

[ केदारौ ]

नव रंग दूलह रास रच्यौ ।

आसपास व्रज-जुवती राजति सुधर राग केदारौ सच्यौ ॥  
ललितादिक मृदंग बजावति तान-तरंग, सुरंग खच्यौ ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाग, दाट मिलि नीकें नच्यौ ॥

३९

[ विलावल ]

मंजुल कल कुंज-देस, राधा हरि विसद वेस,  
राका कुमद-बंधु सरद-जामिनी ॥

सांवल दुति कनक मग, बिहरत मिलि एक सँग  
मानों नील नीरद-मधि लसति दामिनी ॥

अरुन पीत पट दुकूल, अनुपम अनुराग मूल,  
सौरभ सीतल अनिल मंद-मंद गामिनी ॥  
किसलय-दल रचित सैन, बोलत पिक चारु बैन,  
मान-सहित प्रति पद प्रतिकूल कामिनी ॥

मोहन मन्मथन-मार, परसत कुचनि विहार,  
बेपथु जुत बदति नेति-नेति भामिनी ॥  
'कुंभनदास' प्रभु केलि, गिरिधर सुख-सिधु झेलि  
सौरभ त्रैलोकनि की जगत-पाविनी ॥

\* 'कृष्णदास' छाप से भी प्राप्त-मुद्रित [ वर्षोत्सव पद सं. जे. आ. ट्रूट बंबई ]

४०

[ श्रीराग ]

यह गति नांचि-नांचि लई ।

वृन्दावन में रास-विलास सुख बाढ़त सई ॥

भाँति-भाँति राग गावत सुर अलापत कई ।

उरप, तिरप, मान लेत ताता-तत-थई ॥

स्यामसुंदर करत क्रीड़ा प्रेम-घटा छई ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर छिनु-छिनु प्रीति नई ॥

४१

[ सारंग ]

या तें तू भावति मदन गोपालै ।

सारंग रागै सरस अलापति, सुधर मिलत इक तालै ॥

अतीत, अनागत, अवघर आनति, सप्तक कंठ भरी (इक) चालै ।

अलप, सुलप, संच बहु मिलति, किंकिनी कूजत जालै ॥

‘कुंभनदास’ प्रभु रसिक-सिरोमनि सोहति रतिपति-बालै ।

गावति हस्तक-भेद दिखावति गोवर्ढन-धर लालै ॥

४२

[ सारंग ]

रास में गोपाल लाल नाचत, मिलि भामिनी ।

अंस-अंस झुजनि मेलि, मंडल-मधि करत केलि,

कनक-बेलि मनु तमाल स्याम-संग स्वामिनी ॥

उरप, तिरप, लाग, दाट ग्रन्थ-ताता-थई-थई थाट,

सुधर सरस राग तैसी-ए सरद-जामिनी ॥

‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर नटवर-वपु-भेष धरे

निरखि-निरखि लज्जित कोटि काम-कामिनी ॥

४३

## रास रच्यौ नंदलाला

एहो लीन्हे सकल ब्रज-बाला ॥ [टेक]

एहो अद्भुत मंडल कीन्हे ।

अति कल गान सरस सुर लीन्हे ॥

लीन्हे सरस सुर राग-रंग वीच मिलि मुरली कढी ।

होन लाग्यौ नृत्य वहु विधि, नूपुरनि-धुनि नभ चढी ॥

झुलत कुंडल, झुलत बेनी, झुलति मोतिनि-माला ।

धरत पग डगमग विवस रस रास रच्यौ नंद-लाला ॥१॥

पगनि-गति कौतुक मचै, कटि मुरि मध्य लचै ।

सिथिल किंकिनी सोहै, ता-पर मुकुट लटक मन मोहै ॥

मोहै जु मन्मथ मुकुट लटकनि, मटक पग-गति धरन की ।

भैवर भरहर चहूं दिसि छवि, पीत पट फ़रहरन की ॥

गिरचौ लखि मन्मथ मुरछ लै, भजी रति मुख मधु अचै ।

नचत मनमोहन त्रिभंगी, पगनि-गति कौतुक मचै ॥२॥

चित्त हाव भावनि लुटै, अभिनव दग मोहन सर लुटै ।

ललित ग्रीव भुज मेलत, कबहुंक अंकमाल भरि झेलत ॥

झलत जु भरि-भरि अंक निसंकनि, मगन प्रेम आनंद में ।

चारु चुंबन अरु उगारै धरत तिय-मुख चंद में ॥

उडत अंचल, प्रगट कुच, वर-ग्रंथि कटि-तट पट लुटै ।

बढ़यौ रंग सु अंग स्यामा चित्त हाव भावनि लुटै ॥३॥

बृंदावन सोभा बढ़यौ, ता पर व्योम विमाननि सों मळयौ ।

दुंदुभि देव बजावैं फूलनि अंजुलि वहु वरखवावैं ॥

वरखैं जु फूलनि अंजुली वहु अंवर घन कौतुक पगे ।

विवस अंकनि निज-वधू लिए निरखि मन्मथ-सर लगे ॥

द्वै गए थिर चर, अचर चर, सरद-पूरन समि चढ़यौ ।

'दास कुंभन' रास-ओसर बृंदावन सोभा बढ़यौ ॥४॥

४४

[ विहागरो ]

### रास-रस गोविंद करत विहार ।

मूर-सुता के पुलिन-मधि मानों फूले कुमुद कलहार ॥  
 अद्भुत सतदल विकसित मानों, जाही जुही निवार ।  
 मलय पवन वहै सरद-पूरन चंद, मधुप-झंकार ॥  
 सुघरराइ संगीत कला-निधि मोहन नंद-कुमार ।  
 ब्रज-भामिनि-संग प्रमुदित नांचत, तन चरचित घनसार ॥  
 उभय सुरूप सुभगता-सीधां कोक-कला सुख-सार ।  
 'कुंभनदास' प्रभु स्वामी गिरिधर पहिरे रसमय हार ॥

४५

[ विहाग ]

### रसिक रास सुख-विलास, तरनि-तनया-तीर रच्यौ, नंदलाल-संग, कोटि कामिनी ॥

प्रफुलित नव-नव निकुंज, त्रिविध पवन लै झक्कोर,  
चंद-जोति छिटकि रही, सरद-जामिनी ॥

मंडल-मधि नाइक हरि, नांचत भुज अंसनि धरि,  
गौर स्याम अंगनि मानों, मेघ दामिनी ॥  
 उरप, तिरप तांडव करें, ता-थई रचि उघटि तान,  
सुधंग चाल लेत हैं, संगीत स्वामिनी ॥

अद्भुत रस-केलि निरखि, मदन-मान हारि रहयो,  
मुरली अधर गुजत रस-रंग धामिनी ॥  
 बलि-बलि 'कुंभनदास' तन, मन, धन देत वारि,  
गिरिखर-धर संग खेलें, राधा भामिनी ॥

४६

### स्याम-संग स्वामिनी विलास रास में बनी ।

निर्तत दोऊ सुधंग, रूप राखि अंग-अंग,  
नाइका-समाज मानों, राजति घन दामिनी ॥

मिलवत संगीत तान, वेनु कल मधुर गान,  
 थेर्ड-थेर्ड उच्चरति, रास-रंगिनी ॥  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर, रीङ्गि लिये  
 ललना उर, मानों मनि-माल बरसत रस की कनी ॥

४७

[ केदारी ]

सुंदर करत गान गोपाल ।

तरनि-तनया तट मनोहर रास-रंग रसाल ॥  
 जुवति कंचन-बेलि, मरकत मनि जु स्याम तमाल ।  
 उरप, तिरप संगीत उघटत तत-थेर्ड तत-थेर्ड ताल ॥  
 जुवती-मध्य गोविंद इंदु हिं बनी उडुगन-माल ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु सुभग-सीवां गोवर्धनधर लाल ॥

## धनतेरस —

४८

[ देवगंधार ]

आजु माई ! धन धोवति नंद-रानी ।  
 कातिक बदि तेरस दिन उत्तम गावति मंगल बानी ॥  
 नव सत साजि सिंगार अनूपम आपु करति मनमानी ।  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर प्रभु देखति हियो सिरानी ॥

## गो-कीडा (कान जगाई) —

४९

[ सारंग ]

खेलन कों धौरी अकुलानी ।

डाढ मेलि आतुर सनमुख व्है, नंद-नंदन की सुनि मृदु बानी ॥  
 बडडे गोप थकित भए ठाढे, यह अद्भुत देखी न कहानी ।  
 नाचत गाँड देखत नौतन ब्रज बरसों-बरस कुसल यह जानी ॥  
 नंदकुवर ज्ञारत मुख अंचल, जै-जै शद्र उचरत कल बानी ।  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर की सदा रहो ऐसी रजधानी ॥

५०

गांड खिलावत स्याम सुजान ।

क्रूरें ग्वाल टेरि दै 'ही-ही' बाजत बेनु विषान ॥  
 कियो है सिंगार धेनु सगरिनि कौ, करि सकै कौन वर्खान ।  
 विकरि फिरनि पूछ हिं उन्नत करि, करि-करि सुधे कान ॥  
 पांड पैंजनी, मेंहदी राजति, पीठि पुरट के पान ।  
 'कुंभनदास' खेली गिरिधर पें जिहिं विधि उठी उठान ॥

## दीपमालिका —

५१

[ सारंग ]

देखो इनि दीपनि की सुंदराई ।

मानो<sup>१</sup> उडुगन राजत नभ-मंडल, तम<sup>२</sup>-निसि परम सुहाई ॥  
 नंदगाई अगनित बाती रचि, अद्भुत जुगति बनाई ।  
 विविध<sup>३</sup> सुंगंध कपूर आदि भिलि घृत परिपूरनताई ॥  
 घर-घर घोप<sup>४</sup> परम कौतूहल, आनंद उर न समाई ।  
 'कुंभनदास' प्रभु धेनु खिलावत गिरिधर सब-सुखदाई ॥

## गोवर्द्धन-पूजा —

५२

[ सारंग ]

गोवर्द्धन पूजन चले गोपाल ।

मत गयंद देखि जिय लाजत निरखि मंद गति चाल ॥  
 ब्रजनारिनि पक्वान बहुत करि, भरि-भरि लीनें थाल ।  
 अंग सुदेस विविध पट भूषन, गावति जीत रसाल ॥  
 बाजे अनेक बेनु रव संमिलित चलत विविध सुर-ताल ।  
 ध्वजा, पताका, छत्र, चमर धरें करत कुलाहल ग्वाल ॥

<sup>१</sup> जनु (क)    <sup>२</sup> तामें निसि (क)    <sup>३</sup> मुगमद मलय कपूर आदि दै (क)    <sup>४</sup> मंगल होत सबहिं के.

बालक-बृन्द चहूं दिसि सोभित, मनहुं कमल अलि-माल ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु त्रिभुवन मोहत गोवर्द्धन-धर लाल ॥

५३

[ सारंग ]

### मदनगोपाल गोवर्द्धन पूजत ।

बाजत ताल, मृदंग, संख-धुनि मधुर-मधुर मुरली कल कूजत ॥  
 कुमकुम तिलक ललाट दियें नव बसन साजि आईं गोप-धनी<sup>१</sup> ।  
 आसपास सुंदरी कनक तन, मध्य गोविंद मानों मकरत मनी ॥  
 अःनंद मगन घ्वाल सब टेरत ‘ही-ही’ धौरी धुमरि<sup>२</sup> बुलावत ।  
 राते पीरे बने हैं टिपारे मोहन बानी धेनु खिलावत ॥  
 छिरकत हरद, दूध, दधि, अच्छित, देत असीस सकल लागत पग ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धनधर गोकुल करु पिय ! राज अखिल जुग ॥

५४

[ सारंग ]

### \*गोवर्द्धन पूजत परम उदार ।

गोप-बृंद गोहन मोहन के सोभा बड़ी अपार ॥  
 पट रस विजन भोग सकल लै धरत विविध उपहार ।  
 पूजा करि पांड लागि प्रदछिना देत, दिवावत घ्वार ॥  
 चहूं ओर गोपी कंचन-तन मानों गिरि पहिरथौ हार ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु की छवि निरखत रहथौ विथकि सुनि मार ॥

५५

[ सारंग ]

### गोवर्द्धन पूजत हैं ब्रजराइ ।

बल मोहन आगे दै लीन्हे गोप-बृंद सब लाइ ॥  
 दीप-मालिका महा महोच्छौ, घ्वालनि लेहु बुलाइ ।  
 विविध भाँति वस्त्र पहिरावहु, जो जाके मन भाइ ॥

<sup>१</sup> धनी (क). <sup>२</sup> धेनु (क). \* परमानन्दसागर ‘ग’ प्रति में [सं. ५९४] परमानंददास की छाप से है।

दूध दही भाजन भरि लीन्हे, पायसु बहुत बनाइ ।  
 बैठे है गोपाल सिखर पर भोजन करत दिखाइ ॥  
 फूले फिरत सकल व्रजवासी खस्कि खिलावत गाइ ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर गिरि पूज्यो-- भयो भक्तनि मन-भाइ ॥

## गोवर्द्धनोद्घारण (इन्द्र-मानभंग) --

५६

[ केदारौ ]

\*नंदलाल<sup>१</sup> गोवर्द्धन कर धारयौ ।

ब्रज कुल<sup>२</sup>-प्रलय करन कों सुरपति पठए कोपि मेघ वारयौ ॥  
 सात दिवस मूसलधार वरखत, एकौ छिनु न बीचु पारयौ ।  
 गोपी<sup>३</sup> गाइ गो-सुत ग्वाल सब अपबल राखि गरबु टारयौ ॥  
 छांडथौ सब अभिमान अपरपति अपनों विगारु जिय विचारयौ ।  
 'कुंभनदास' प्रभु सैल-धरन<sup>४</sup> के आइ परयो पांझु हारयौ ॥

५७

[ सारंग ]

गोकुल की जीवनि गोपाल लाल प्यारौ ।

सुंदर मुख निरखत सखि ! नैन सैन पाऊ  
 गोपी ग्वाल-आँखिनि कौ तारौ ॥

रूप की निधि काम को सिद्धि,  
 जानत सब प्रेम की बिधि  
 धेनु-सैन लैके घर आवै सकारौ ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर अपने कर  
 कोमल ऐचि लियो गोवर्द्धन भारौ ॥

१ मेरे लालिडे गोपाल गोव० [बंघ १८/१] २ पुर, (क) ३ गोप ग्वाल गो-सुत गाय (क)  
 \* 'नंदके लाल गोवर्द्धन धारयौ' इस प्रारंभ और पाठ भेद के साथ यह 'गोविन्दस्वामी' के पद संग्रह में है । साधारणतया समान रचना है । पर 'क' 'ख' प्रति में होने से कुंभनदास कृत ही है । [ देखो 'गोविन्दस्वामी-[पदसंग्रह]' पद सं. ७३. विद्याविभाग-कांकरोली प्रकाशन ].

६८

[ सारंग ]

ब्रज पर स्याम धटा झर लाई ।

नंदजू कौ लाल सलौनौ—सो होटा ता—पर इन्द्र चढि धाई ॥

तव मन इक बात उठाई (?) नख परवत ले उठाई ।

गोप ग्वाल संग लियें परस्पर, ‘कुंभनदास’ गुन गाई ॥

## श्रीगुसाँईजी की बधाई —

६९

[ देवगंधार ]

आजु बधाई श्रीवल्लभ—द्वार ।

प्रगट भए पूरन पुरुषोत्तम प्रगट करन लीला—अवतार ॥

भाग उदै सब दैवी जीवनि के निःसाधन जन किए उद्धार ।

‘कुंभनदास’ गिरिधरन जुगल—वपु निगम—अगम सब साधन सार ॥

६०

[ देवगंधार ]

गोकुल घर—घर होत बधाई ।

सुत श्रीवल्लभ के गृह प्रगटे, करुना की निधि आई ॥

देखि—देखि ब्रज—बनिता सब मिलि मोतिनि चौक पुराई ।

प्रगट भयो गोवर्द्धन—धारी पुहुपनि वृष्टि कराई ॥

देत आसीस सकल गोपीजन उर आनंद न समाई ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर गिरिधर सब सुख—दाई ॥

६१

प्रगटे श्रीविठ्ठल बाल गोपाल ।

कलि—जुग जीव—उद्धारन—कारन संतनि के प्रतिपाल ॥

तिलक तिलंगा द्विज—कुल—मंडन, वल्लभ—वंश रसाल ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर नई केलि ब्रज—बाल ॥

६२

[ सारंग ]

प्रगट भए फिरि वल्लभ आइ ।

सेवा-रस विस्तार करन कों गूढ़ ज्ञान सब प्रगट दिखाइ ॥  
निज-जन सकल किये हैं पावन घर-घर वंदनवार वधाइ ।  
'कुंभनदास' गिरिधर-गुन महिमा बंदी-गन चारन गुन गाइ ॥

६३

[ कानरो ]

श्रीविष्णु जू के चरनकमल भजि रे मन ! जो चाहत परमारथ ।  
मारग नाम काम-हित कारन सब पाखंड परम उदारथ ॥  
देवी देव देवता हरि-विनु सब कोउ जप्त आपने स्वारथ ।  
श्रीभागवत--भजन रस--महिमा श्रीमुख--बचन कहे सो जथारथ ॥  
तीन हूं लोक विदित यह मारग जीव अनेक हिं किए कृतारथ ।  
'कुंभनदास' सरन आए--विनु खोए दिन पाछिले अकारथ ॥

६४

श्रीविष्णु चरन-प्रताप तें नांहिन और मेरे जिय वाम बाधा ।  
हस्त कमल माथे जु धरत हैं गए सकल अपराधा ॥  
महापतित उद्धार करन कों प्रगटे पुहुमि अगाधा ।  
'कुंभनदास' फूलत आनंद में निडर भए रिपु सब साधा ॥

## वसन्त-धमार —

६५

सुभ दिन, सुभ घरी, सुभ मुहूरत, साधि राधिका  
श्रीपंचमी सदा ही वधाई ब्रज-राज-लाल  
बृंदावन कुंज-धाम, विरहत पिया--संग स्याम,  
उडत गुलाल, लाल गावत वेनु रसाल ॥१॥

कंचन बेलि बनी व्रज-बाल  
 ज्याँ लपटी घनस्याम तमाल, करत परस्पर रुयाल ॥  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर  
 रीझि परस्पर भरि लीने अंकमाल ॥२॥\*

६६

[ वसंत ]

स्याम सुभग तन सोभित छींटे नीकी लागी चंदन की ।  
 मंडित सुरंग, अबीर, कुमकुमा अरु सुदेस रज वंदन की ॥  
 'कुंभनदास' मदन तन-मन बलिहारि कियो नँदनंदन की ।  
 गिरिधरलाल रची विधि मानों जुवतीजन<sup>१</sup>-मन-फंदन की ॥

६७

[ वसंत ]

आई रितु चहुं दिसि फूले द्रुम कानन  
 कोकिला समूहनि गावति वसंत हिं ।  
 मधुप गुंजारत, मिलत सप्त सुर  
 भयो हुलास तन उमगित<sup>२</sup> सब जंत हिं ॥  
 मुदित रसिक जन उमग भरे हैं,  
 नांहिने<sup>३</sup> पावत मनमथ-सुख अंत हिं ॥  
 'कुंभनदास' स्वामिनी वेणि चलि,  
 इहि समै<sup>४</sup> मिलि गिरिधर नव कंत हिं ॥

६८

[ वसंत ]

चलि बन, बहत मंद सुगंध सीतल मलयज समीरे  
 तुब पथ निहारत<sup>५</sup> सखी ! हरि सूखा-तीरे ॥  
 चहुं दिसा फूले लता द्रुम हरखित सरीरे  
 तुब वरन सम स्यामसुंदर धरत पट पीरे ॥

\*साधारण एवं शिथिल रचना होनेसे कुंभनदास कृत होने में सन्देह है ।

१ जूथः(क). २ मन सब (क). ३ नहि पावत जुवतिनि सुख (क) ४ औसर (क)

५ निहारत हैं (क)

विविध सुर अलि गुंज, कूजित मत्त पिक कीरे  
तुव मिलन-हित नद-नंदन हैं अति अधीरे ॥  
'दास कुंभन' प्रभु करत तन वहु जतन सीरे  
तुव बिरह व्याकुल, गोवर्द्धन-उद्धरन-धीरे ॥

६९

[ वसंत ]

जुवतिनि-संग खेलत फागु हरी ।

बालक-बृंद करत कोलाहल सुनत न कान परी ॥  
कुमकुम वारि अरगजा विविध सुरंध मिलाइ करी  
पिचिकाइनि परस्पर छिरकत अति आमोद भरी ॥  
बाजत डफ, मृदंग, बांसुरी, किन्नरि सुर कोमल री  
तिनहिं मिलत सुधर नैद-नंदन मुखली अधर धरी ॥  
टूटत हार, चीर फाटत गिरि जहाँ-तहाँ धरनि धरी  
काहू नहीं संभार क्रीडा-वस सब तन-सुधि विसरी ॥  
अति आनंद मगन नहिं जानत, बीतत जाम धरी  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सब सुख<sup>१</sup>-दानवरी ॥

७०

[ वसंत ]

उडत वंदन, नव अबीर, वहु कुमकुमा,  
खेलत वसंत बन, लाल गिरिवर-धरन ॥  
मंडित सुअंग, सुभ स्याम सोभित ललित  
मनहुं मनमथ वान साजि आयो लरन ॥  
तरनि-तनया तीर ठौर समनीक अति,  
द्रुम, लता, कुसुम मधु कलित सु नाना बरन ॥  
मधुर सुर मधुप गुंजार मधुरस-लुब्ध,  
पिक-सबद लागे दुहुं दिसि कुलाहल करन ॥

<sup>१</sup> सुख दै निवरी (क)

आई बनि-बनि सकल धोष की सुदरी  
 पहिरे तन कनक नव चीर पट आभरन ॥  
 मधुर सुर गीत गावति सुधर नागरी,  
 चारु वृत्तत मुदित कुनित नूपुर चरन ॥  
 वदन पंकज, अधर-बिंब सोमित चारु  
 झलकत कपोल अति चपल कुँडल करन ॥  
 ‘दास कुंभन’ प्रभु धोष सौभग - सींव  
 नंद-नंदन कुंवर जुवति-जन मन - हरन ॥

७१

[ वसंत ]

देखि वसंत समै ब्रज-सुंदरि तजि अमिमान चली बृंदावन  
 सुंदरता की रासि किसोरी नवसत साजि सिंगार सुभग तन ॥  
 गई तिहिं ठोर देखि ऊचे द्रुम लता प्रकासित गुंजित अलिंगन ॥  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर कों मिली कुंवरि गथा हुलसत मन ॥

७२

[ वसंत ]

गिरिधर लाल रस भरे खेलत विमल वसंत राधिका-संग  
 उडत गुलाल, अवीर, अरगजा, छिरकत भरत परस्पर अंग ॥  
 बाजत ताल, मृदंग, अधौटी बीना, मुरली, तान तरंग  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु इहि विधि क्रीडत जमुना-पुलिन लजावत अनंग ॥

७३

[ वसंत ]

खेलत वन सरस वसंत लाल कोकिल कूजत अति रसाल  
 जमुना-तट फूले तमाल, केतकी, कुंद, नौतन प्रवाल ॥  
 तहां बाजत बेनु, मृदंग, ताल, चिच-चिच मुरली अति रसाल  
 नव वसंत साजि आई ब्रज की बाल साजें भूपन, वसन-अंग, तिलक भाल ॥  
 चौवा, चंदन, अवीर, गुलाल छिरकत हैं पिय मदनगोपाल  
 आलिंगन, चुंबन देत गाल, पहिरावत उर फूलनि की माल ॥

इहि विधि क्रीडत व्रजनृपति—कुमार सुमन—वृष्टि करत सुर अपार  
श्रीगिरिधर मन हरत लाल ‘कुंभनदास’ बलि—बलिहार ॥

## फाग—

७४

[ नटनारायण ]

जुवति—जूथ—संग फाग खेलत नंदलाल  
कुंघर होरि हो, होरि हो, होरि घोलनां ॥  
गावत नटनाराइन राग मुदित देत चैन  
फाग चहुं दिसा जुरि ग्वालबाल—वृद्ध टोलनां ॥

बाजत आवज उपंग, वांसुरि, सुर, वेनु, चंग,  
संख, बंस, झाँझि, उफ, मृदंग, ढोलनां ॥  
चलत सुर अनेक ताल सुधरराइ श्रीगोपाल  
वेनु—मध्य गान करत होरि होलनां ॥

पहिरें तन भाँति—भाँति, सोभा कछु कही न जाति  
भूषन आभरन विविध पट अमोलनां ॥  
कुमकुमा सुरंग छिरकत पिचकाई भरि—भरि  
परस्पर देत कीक व्रज की खोरि—खोरि डोलनां ॥

काहूके चिबुक चाहू परसि, काहू की वेसरि, काहू की—  
खुंभी, काहूके करत कंचुकी के बंद खोलनां ॥  
काहूके लेत हार तोरि, काहू की गहत भुज मरोरि,  
काहू कों पकरि छांडि देत करि झंझोलना ॥

गोकुल—विच कीच मची, सौरभ चहुं ओर बढ़यौ  
सब तनु अनुराग उमण्यौ रस अतोलनां ॥  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर प्रेम—सिंधु प्रगट करथौ  
सुर विमान विथके देखि व्रज—कलोलनां ॥

७५

होरी कौ है औसरु जिनि कोऊ रिस मोनै  
 काहू कौ हार तोरै, काहू की चूरी फोरै,  
 काहू की खुंभी लै भाजै अरु अचानक  
 काहू कों पिचकाई नेत्रनि तकि तानै ॥

काहू की नकवेसरि पकरि काहू की चोली,  
 काहू की बेनी गहे, अरु कंठसरी झटकि आनै ॥

‘कुंभनदास’ प्रभु इहि विधि खेलत,  
 गिरिधर पिय सब रंग जानै ॥

७६

[ श्रीराम ]

खेलत फाग गोवद्धून-धारी ‘हो होरी’ बोलत ब्रज-बालक संगे  
 आईवनि नवल-नवल ब्रज-सुंदरि, सुविधि सँवारि सुठि सिंदुर मंगे ॥  
 बाजत ताल, मृदंग, अधौटी, बाजत डफ, सुर, वीन, उपंगे  
 अधर बिंब कूजै बेनु मधुर धुनि, मिलत सप्त सुर तान तरंगे ॥  
 उडत अबीर, कुमकुमा चंदन विविध भाँति रंग मंडित अंगे  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु त्रिभुवन-मोहत नवल रूप छवि कोटि-अनंगे ॥

७७

[ कल्याण ]

माई ! हो हो होरी खिलाइए ॥

झांझ, वीन, परवावज, किन्नरी, डफ, मृदंग बजाइए  
 ताल, त्रिवट, ततकार, चांचर-खेल मचाइए ॥

चोवा, चंदन, मृगमद् छिरकिके अबीर गुलाल उडाइए  
 खेलत फाग ब्रजराज-लाडिलौ श्रीबहुव-जसु गाइए ॥

नवसत साज सज्यौ ब्रज-वनितनि चलो नद-गृह जाइए  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर पे अपुनों सरवसु वारिए ॥

‘हो हो होरी’ कहि खेलत होरी, अब तो रंग मच्यौ है  
कहा कहिए सब समिटि गई मन—मोहन रंग रच्यौ है॥  
खेलहि खेल खेल—सो कीन्हो अब कछु कहा बच्यौ है  
रस—गारी तारी दै गावै अब तो उधरि नच्यौ है॥  
चंद वदन मांडत गुलाल सों द्रगनि अति आनि खच्यौ है  
पिचकाई प्यारी की छूटति रंग भरि लाल चच्यौ है॥  
रस—निधान वज—लाडिलौ हो ! सोभा—सिंधु खच्यौ है  
‘कुंभनदास’ प्रभु की छवि निरखत मनमथ—मनहिं तच्यौ है॥

होरी खेलत कुंवर कन्हाई ।

चोवा चंदन, अगर कुमकुमा घरती कींच मचाई ॥  
अबीर, गुलाल उडाई ललिता सोभा वरनी न जाई  
अरस—परस छिरके जु श्याम कों केसरि भरि पिचकाई ॥  
नख—शिख अंग प्रतिरूप माधुरी भूषण, वसन बनाई  
गिरिधर—धर की इहै छवि निरखत ‘कुंभनदास’ बलि जाई ॥

## डोल —

मोहन (मन) झूलत बढ़यौ आनंद ।

एक ओर वृषभान—नंदिनी एक ओर वज—चंद ॥  
ललिता बिसाखा झूलवति ठाढ़ीं कर गहि कंचन—डोल  
निरखि—निरखि प्रीतम पिय प्यारी बिहसि कहति हंसि बोल ॥  
उडत गुलाल, कुमकुमा, चंदन परसत चारु कपोल  
छिरकत फूल मदनगोपालें आनंद हैं कलोल ॥

कहा कहों रस बढ़यौ परस्पर त्रिभुवन वरन्यौ न जाई ।  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर की बानिक पर बलि जाई ॥

## फूल-मण्डली —

८१

[ सारंग ]

बैठे लाल फूलनि के चौवारे ।  
 कुरवक, बकुल, मालती, चंपौ, केतकी, नवल निवारे ॥  
 जाई, जुही, केवरी, कूजो, राहवेलि, सहकारे  
 मंद समीर कीर पिक कूजत मधुप करत गुंजारे ॥  
 राधा-रवेन रंग भरि क्रीडत, नाचत मोर अखारे  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर पर कोटिक मनमथ वारे ॥

## श्रीमहाप्रभुजी की वधाई —

८२

श्रीलछमन-गृह आजु वधाई ।

प्रगट भए पूरन पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ सुखदाई ॥  
 देत दान सनमान बहोत करि, सुख की वेलि छाई  
 ‘कुंभनदास’ गिरिधर अति हरखे उर आनंद न समाई ॥

८३

[ कान्हरो ]

वरनों श्रीवल्लभ-अवतार ।

गोकुलपति प्रगटे श्रीगोकुल सकल विश्व-आधार ॥  
 सेवा भजन बताइ निज-जन कों मेट्यौ जम-व्यौहार  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर आए सब ही उतारे पार ॥

हौं श्रीवल्लभ की बलिहारी ।

सबहिनि कों वचनामृत सींचत कहि, अंतर दुख-हारी ॥  
नव निकुंज-मंदिर की लीला चिहरत नित्य विहारी  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धनधर ! वह हौं दासी तिहारी ॥

ना तरु लीला होती जूनी

जो प श्रीवल्लभ प्रगट न होते, वसुधा रहती सूनी ॥  
दिन-दिन प्रति छिन-छिन राजत हैं ज्यों कुंदन पर चुनी  
'कुंभनदास' कहि कहां लों वर्णे जसु गावै जाकौ मुनी ॥

## अक्षय तृतीया—

चंदन पहिरत गिरिधर लाल ।

कंचन बेलि प्यारी राधा के भुज वामभाग गोपाल ॥  
प्रथम ही चित्रित अछित तृतीया वदन, भ्रकुटी भाल ।  
स्वेत तहां बागा, पाग लपेटी, पीताम्बर, लोचन चिसाल ॥  
कुंकुम कुच-जुग हेम-कलस में कंठ दोई लर बनी मनिमाल ।  
'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि चिलसत व्रज की बाल ॥

टीक दुपहिरी में खस-खाने रचे तामधि बैठे लाल विहारी ।  
खासा कौं कटि बन्यौ पिछौरा चंदन-भींजी कुलह सॉवारी ॥  
चंदन स्याम — तन ठौर-ठौर लेपन करति वृषभान-दुलारी ।  
विविध सुगंध के छुटत फुहाँरे कुसमनि के बिजना ढोरत पियप्यारी ॥  
सघन लता द्रुम झरत मालती सरस गुलाब-माल गूंथति है प्यारी ।  
'कुंभनदास' लाल छवि-ऊपर रीझि, अँकोरि देत तन मन वारी ॥

## रथयात्रा —

८८

[ भैरव ]

रथ बैठे मदन गोपाल अंग-अंग सोभा वरनी न जाई ।  
 मोर-मुकुट बनमाल विराजित, पीतांबर अरु तिलक सुहाई ॥  
 गज-मुकता की माल कंठ सोहै<sup>१</sup> मानों नील गिरि सुरसरि धौसि आई ।  
 श्रीवृन्दावन-भूमि चारु सँग सोहै  
 राधा नागरि मानों घन दामिनी की छवि पाई ॥  
 बोलै पिक, मोर, कीर त्रिगुन वहै समीर,  
 पुहुप वरिखा करें अमरपति आई ।  
 'कुंभनदास' प्रभु लाल गिरिधर की या बानिक पर बलि-बलि जाई ॥

८९

[ मलार ]

रथ पर राजति सुंदर जोरी ।  
 श्रीघनस्याम लाडिलौ सुंदर, श्रीराधा जू गोरी ॥  
 व्योम विमान-भीर भई, सुर मुनि 'जै-जै' सब्द उचारी ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर की बानिक की बलिहारी ॥

९०

[ विलावल ]

रथ बैठे श्रीत्रिभुवन-नाथ ।  
 बहिन सुभद्रा अरु बल भईया और सखा सब लीन्हे साथ ॥  
 कनक कलस रथ-ऊपर राजत नील वरन मृदु गात  
 नीलाम्बर, पीताम्बर की छवि चक्र सुदर्शन हात ॥  
 ए दोउ नील-सिखर पर राजत इन्द्र हु देखि लजात ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ जसु गावत न अघात ॥

<sup>१</sup> सोहै नंदलाल मानों (क)

## वर्षा ऋतु—वर्णन —

९१

[ नटनारायण अठताल ]

रिमि-झिमि वरखत मेह श्रीतम संग री !  
 चलो सखी ! भींजत सुख लागैगो ॥  
 तैसेर्इ बोलत चातक, पिक, मोर  
 तैसेर्इ गरज मधुरी तैसोर्इ पवन सीतल लागैगो ॥  
 तैसीये घटा स्थाम रही है झूमि चहंघा  
 तैसीये पहिरी सुरंग चूनरी तैसेर्इ भेष लागैगो ॥  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु तैसोर्इ गोवर्द्धन—धर  
 लाल रसिक हृदय लागैगो ॥

९२

[ मलार ]

सारी भींजि है नई ।

अबहिं प्रथम पहरि आई हें पिता वृषभान दई ॥  
 अपनें पिताम्बर मोहिं उढावहु वरिखा उदित भई ।  
 सुंदर स्थाम ! जाइगौ इह रंगु वहुविध चित्र ढई ॥  
 कहि हें कहा जाइ धर मोहन डरपति हैं इतई ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर मुदित उछंग लई ॥

९३

[ मलार अठताल ]

गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर परम मुदित बोलत हैं मोर ।  
 अति आवेस भयो सब के चित ।  
 ठां ठां नांचत सुनि-सुनि मुरली की मंद कल<sup>१</sup> धोर ॥  
 श्रीअंग जलद—घटा सुहाइ वसन दामिनी,  
 इन्द्र—धनु वनमाल, मोतिनि हार बलाक डोर ।

‘कुंभनदास’ प्रभु प्रेम नीर वरखत गिरिवरधर<sup>२</sup>लाल नवल नंदकिशोर ॥

<sup>१</sup> मंद सुर कल धोर (ख) <sup>२</sup> धरन (ख)

९४

[ मलार ]

पहिरें सुभग अँग कस्बंभी सारी सुरंग  
 भूमि हरियारी में चंद्र वधू-सी सोहै ॥  
 हरि के निकट ठाढ़ी, कंचुकी उतंग गाढ़ी  
 बाल मृगलेचनी देखत मन मोहै ॥  
 पावस छितु तैसिये, मेघ उनए तैसिये,  
 तैसिये वानिक बनी उपमा कों को है ॥  
 'कुंभनदास' स्वामिनी, विचित्र राधा भामिनी  
 गिरिधार इकट्ठु मुख जोहै ॥

९५

[ मलार ]

देखो<sup>१</sup> सखी ! चहुं दिसि तें झर लायौ ।  
 स्याम घटा जु उठी चहुं दिसि तें, दामिनी अंबर छायौ ॥  
 रस की बुंद परति धरनी पर ब्रज-जन प्रेम बढ़ायौ ॥  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर राग<sup>२</sup> मलार जमायौ ॥

९६

[ मलार ]

देहु कान्ह ! कांधे कौ कंबर ।  
 रिम-झिमि रिमि-झिमि घन बरसत है भीजै कमूँभी अंबर ॥  
 घन गरजत डरपति हों भामिनी देखि मेघ कौ डंबर ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर साथ ग्वाल कौ संभर ॥

९७

[ मलार ]

ब्रज पर नीकी आजु घटा हो ।  
 नन्ही-नन्ही बुंद सुहावनी लागति, चमकति विज्जु-छटा हो ॥

१. आजु माई आगे नई झर लायौ ( बंध ५/१/९९ )

२. उछंग हि हिये लगायौ ( „ „ )

गरजत गगन मृदंग बजावत, नाचत मोर-नटा हो ।  
 तैसेर्हि सुर गावत चातक, पिक, प्रगटयो है मदन-भटा हो ॥  
 सब मिलि भेट देत नँदलाल हि बैठे ऊचे अटा हो ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर सिर कम्बमी पीत घटा हो ॥

९८

[ मलार ]

बोले माई ! गोवर्धन पर मोर ।  
 कारी-कारी घटा सुहावनी लागति, पवन चलत अति जोर ॥  
 स्याम घन तन दामिनी दमकति बूंद परति थोर-थोर ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर करत चातक, पिक सोर ॥

९९

[ मलार ]

\* दोऊ जन भींजत अटके घातनि ।  
 सघन कुंज के द्वारे ठाढे बुंद बचावत पातनि ॥  
 स्यामा स्याम उमगि रस भरियां अंवर लपटे गातनि ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर नेह बढावत घातनि ॥

१००

[ सोरठ ]

+ भींजत कुंजनि में दोउ आवत ।

स्याम सुंदर वृषभान-कुंवरि कों कांवरि तन लिपटावत ॥  
 हिलि-मिलि ग्रीति परस्पर बाढी, दोऊ मिलि अंग प्रेम उपजावत ।  
 'कुंभनदास' प्रभु स्याम राधिकै दगा देत कहि भाजत ॥

१०१

[ मलार ]

भींजत कब देखोंगी नैना ।

दुलहिनजू की सुरंग चूनरी मोहन कौ उपरैना ॥

\* इसी तुक, कुछ पाठ-भेद और परिवर्तन से यह पद 'सूरसागर' (ना. प्र. सभा) परिशिष्ट सं. ११३ पर छपा है । सम्पादक को इस पद के सूरकृत होने में अद्व संदेह है । वास्तव में यह पद कुंभनदास कृत है (सर० भं बं. ५/१ पत्र ९३)

† 'सूरसागर' सं. २६१० पर इसी तुक से पद छपा है पर दोनों विभिन्न है ।

स्यामा स्याम कदेव—तर ठाडे जतन कियो कछु मैं ना ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर जुरि आई जल—सैना ॥

१०२

[ मलार ]

सखी री ! ये बडभागी मोर ।

याके पंख कौ मुकुट बनत हैं सिर धरै नंदकिसोर ॥  
 ये बडभागी सकल ब्रज—वासी चितवत हरि—मुत्त ओर ।  
 निसिदिन स्याम—संग मिलि विहरत आनंद बढ़ौ न थोर ॥  
 ये बडभागिनि ब्रज की ललना गान करति धन—घोर ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर विहरत गोपिनि के चित—चोर ॥

१०३

[ मलार ]

लाल ! देखौ घरसन लाग्यौ मेहौ ।

भींजति है मेरी सुरंग चूनरी मोहिं जान धर देहौ ॥  
 तुम मन—मोहन चिंतव अटपटो मोहि जिय उपजत तेहौ ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर राज करो यह नेहौ ॥

१०४

[ मलार ]

स्याम ! सुनु नियरे आयौ मेहु ।

भींजेगी मेरो सुरंग चूनरी ओउ पीतांवर देहु ॥  
 दामिनि तें डरपति हों मोहन निकट आपुनी लेहु ।  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर सों बाढ़ौ अधिक सनेहु ॥

१०५

[ मलार ]

\* सखी री ! बुंद अचानक लागी ।

सोवत हुती मदन—रसमाती धन गरज्यौ तब जागी ॥  
 दादुर, मोर, पर्या बोलत गुंजत मधु—अनुरागी ।  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर सों जाइ मिली बडभागी ॥

\* सूरसागर परिशिष्ट (१) सं. १४२ पर इसी तुक से पद छपा है। प्रथम अंश समान है,  
 शेष भिन्न है सर. भं. बंध १३/३ पत्र २५१ में कुंभनदास कृत है )

# हिंडोरा —

१०६

[ केदारो ]

सुरंग हिंडोरे झूले नागरि नागर,  
दंपति अंग-अंग सब सुखदाई ॥  
सुंदर स्याम के संग सोभित गोरी  
भामिनि मानों घन में दामिनि,  
तैसीये पावस रितु परम सुहाई ॥

पीत पट, लाल सारी सुरंग सु छवि भरी,  
तैसई मनि खचित खंभ, मरुए विधि बनाई ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ सुजसु गावति  
ललितादिक, निरखत<sup>१</sup> रतिपति रह्यौ लजाई ॥

१०७

[ मलार ]

झूले माई ! जुगल किशोर हिंडोरे ।  
ललिता, चंपकलता, विसाखा देति हैं प्रेम-झकोरे ॥  
तैसिये रितु पावस सुखदाइक मंद-मंद घन घोरे ।  
तैसोई गान करति ब्रजसुंदरि निरखि-निरखि चडुं ओरे ॥  
केटि-कोटि मदन-छवि निरखत होत सखी मन भोरे ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर प्रीति निवाहत जोरे<sup>२</sup> ॥

१०८

[ मलार ]

हिंडोरे हरि झूलत ब्रजनारी ।  
सांखन मास पुही थोरी-थोरी तैसीये भूमि हरियारी ॥  
नव वन, नव घन, नव चातक फिक, नवल कस्हंभी सारी ।  
नवल किसोर-वाम अँग सोभित नव वृषभान-दुलारी ॥

<sup>१</sup> निरखति, (क)    <sup>२</sup> डोरे, (क)

कंचन खंभ, मनि जटित पेटला, डांडी सुभग संवारी ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु मधुर झोटका देत लाल गिरिधारी ॥

१०९

[ गौरो ]

आईं सकल ब्रजनारि झूलन हरि के हिंडोलनां ।  
 नवसत साजि कुरंग-नैनी आभूषन चाहुँ सुरंग वसन अपोलनां ॥  
 कंचन रतन आछे जटित, मानिक मनि पटिला,  
 सुगंध चंदन-बाही सुमन अहु सुस्वर सुनि सुबोलनां ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल मधुर-मधुर दै झोलनां ॥

११०

[ पूर्वी ]

झूलें माई ! गिरिधर सुरंग हिंडोरें ।

रतन खचित पदुली पा बठे नागर नंदकिसोरैं ॥  
 पीत वसन घनश्याम सुंदर तन, सारी सुरंग हि बोरैं ।  
 अंसनि बाहु परस्पर जोरें मंद हसनि पिय ओरैं ॥  
 घोषनारि जुरि आईं चहूँ दिसि झुलवति थोरें-थोरैं ।  
 ‘कुंभनदास’ गिरिधरन लालछवि ब्रज-जुवतिनि चित चोरैं ॥

१११

[ मलार ]

झूलें माई ! स्यामा स्याम हिंडोरें ।

मनि कंचन कौ रच्यौ सच्यौ सखि ! राजत जोवन जोरैं ॥  
 आसपास सुंदरि मिलि गावति श्रीमंडल कल घोरैं ।  
 बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, रुचि और बांसुरी थोरैं ॥  
 पुलकित पुलकि प्रीतम-उर लागति देति बहुत अंकोरैं ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर रसिक प्रीति निरवाहत औरैं ॥

११२

( विहाग )

पिय-संग<sup>१</sup> झूली री ! सरस हिंडोरैं ।

ब्रज-जुवती<sup>२</sup> चहुं दिसि तें सजि सजनी ! झुलवति थोरे-थोरे ॥

नीलांवर पीताम्बर राजत घन-दामिनि चित चोरैं ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर देखत<sup>३</sup> छवि की उठत झकौरैं ॥

११३

[ मलार ]

\* नटवर झूलत सुरंग हिंडोरैं ।

धरत चरन पटुली पर मोहन अरस परस्पर जोरैं ॥

पीत वसन वनमाल विराजित सारी सुरंग हिं बोरैं ।

सजल स्याम घन, कनक<sup>४</sup> वरन तनु मानिनी-मानोह तोरैं ॥

जोरी अविचल तेज विराजित कुंडल वर हिलोरैं ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधरराधा प्रीति निवाहत औरैं ॥

११४

नवल लाल के संग झूलन आई हो हिंडोरैं ।

लपटनि पाग की चुनरी सुरंग बंदसि परी सखी ओरैं ॥

सगसगाति गिरिधर पिय के सग बतियां कहति प्रीतम चित चोरैं ।

‘कुंभनदास’ प्रभु रमकि-झमकि झूलति कछुक हँसति मुख मोरैं ॥

११५

[ मलार ]

मोहिं घरी इक झूलन देहु हिंडोरना

हो पिय ! रमकि झुलावों ।

तैसेई स्याम तन हो हो प्रानपति !

हमें न डर आवै एसेई अति रस-रंग बढावाँ ॥

१ हों तो झूलीरी रमकि २ सुरंग० ( वं. ४/२/४० ) ३. आसपास ब्रज-जुवती राजति

( वं. ४-२-४० ) ४. नील पीत पट की दुति राजति ( वं. ४-२-४९ )

५. तुहि देखत ( वं. ४-२-४० )

\* इसी तुक से संक्षिप्त पद ‘गोविंदस्वामी’ में पद सं. २०१ पर छपा है — देखा कांकरोली प्रकाशन । आदि अन्त में साम्य होने पर भी दोनों प्रथक है ।

कथुंक पटुली बैठिय ग्रानपति !  
 और सखिनि सब निकट बुलावों ॥  
 तिनसों मिलत मंद मुरली-सुर  
 प्रमुदित राग मलार हिं गावों ॥  
 जब हौं उतरों तुम तब झूलो प्रीतम !  
 झौंटा दैहों एसें-जैसें तुम्हें दिखावों ॥  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर !  
 सोई करों जैसे तुव सुख पावों ॥

११६

[ नट ]

मुदित शुलावति आपु अपने औसरे  
 माई ! नवल हिंडोरो सज्यौ नवल किसोर ॥  
 नवल कसूंभी सारी ओढें नव वधु प्यारी  
 नव भूमि हरियारी सोभित चहुं ओर ॥  
 नवल गीत झुंडनि गावति, कंचन खंभ की ढिंग  
 तैसेई बन में नव बोलत चातक मोर ॥  
 नवल घटा सुहाई, परत थोरी-थोरी बुंद  
 चिच-चिच ए नव घन की घोर ॥  
 राधे-तन नव चूनरी नव पीत सुंदर स्याम के  
 अरु मनिगन खचित पटेला बैठे इक जोर ॥  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धारी लाल  
 नव रस भींजे देत मधुरे रोर ॥

११७

[ नट ]

× हिंडोरे झूलत स्यामा स्याम ।  
 गौर स्याम तन, पीत कसूंभी पहिरे, आनंद मूरति काम ॥  
 मरकत मनि के खंभ मनोहर, डांडी सरल सुरंग  
 पांच पिरोजनि की पटुली बनी झूमक अति बहु रंग ॥

× सूरस गर पद सं. ३४५२ पर भी इस तुक से एक पद है पर दोनों प्रथक हैं ।  
 कुं. ६

ललिता, विसाखा देति झोंटा गावति राग रसाल  
 हंस, मोर, कौकिला, चकेर हि चातक शब्द रसाल ॥  
 अदभुत केलि कौतूहल देखत चढि विमान सुर आए  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर बहुविध पुहुप बरसाए ॥

११८

[ पृष्ठी ]

**× हिंडोरे व शूलवन आई ।**

नवसत साज सज व्रज-वनिता लागति परम सुहाई ॥  
 बनि-ठनि बैठे स्याम मनोहर स्यामा संग विराजें  
 नख-सिख की सुंदरता निरखत केटिक रति-पति लाजें ॥  
 प्रमुदित वहै सहचरी शूलावति मुख मधुरे स्वर गावें  
 तान, मान, बंधान, भेद, गति, ताल, मृदंग बजावें ॥  
 नव निर्कुंज जमुना-तट सुंदर मान्यौ रसिक-विलास  
 गुन-निधान राधा गिरिधारी गावत 'कुंभनदास' ॥

११९

[ नट ]

पावस-रितु कुंज-सदन, जमुना-तट, वृन्दावन,  
 शूलत व्रजराज - कुंवर नव हिंडोरनां ॥  
 कनक खेम सरल माँहि, चारि डांडी अति सुहाँहि,  
 झूमका नवरंग पदुली अति अमोलनां ॥  
 बैठे बनि गोपाल लाल, संग व्रज की नवल बाल,  
 चहुं दिसि राजें रसाल गोपी - टोलनां ॥  
 गावत नटनाराइन राग, नाचत मुदित नारि,  
 झोंटा देति वैसि - वैसि वृंद - टोलनां ॥  
 बाजत बांसुरी, पखाज, ठाठ बन्यौ मधुर साज,  
 छायो गान गगन. मगन जुवती - टोलनां ॥

× इसी तुक से स. ३४५५ पर सूरदास कृत पद सूरसागर में है-पर दोनों प्रथक हैं ।

माच्यौ नवरंग विलास, निरखि हरखि 'कुंभनदास'  
लै बलाइ कहत हैं, गुन गिरिधर लोलना ॥

१२०

[मलार]

नवल हिंडेरना हो ? साज्यौ नवल किसोर ।

जहाँ भूमि हस्ति सुरंग देखियत कल्पद्रुम के पुज  
पारिजात, मंदार प्रफुल्लित धूर्नित अलि-कुल गुंज ॥ (टेक)

हंस चातक मोर कूजत केकिला कल कीर  
चक्रवाक चक्रार बोलत तरनि - तनया - तीर ॥

मल्लिका मालती विकसति विविध खंड कदंब  
प्रबाल चंपक बकुल जम्बू अंब ॥

उनई घटा घन घोर मानों इंद्र-धनु अवकास  
फूली भार सुडार सेमित विविध सौरभ-वास ॥

झै खभ मरकत मनि विराजित रतन पटिला चारु  
बठि जुगल किसोर सुन्दर परम रसिक उदारु ॥

सुभग सरस जराउ डांडी मियार मरुवा-सारि  
उछंग गिरिधर लाल के सँग बैठी सुन्दरी नारि ॥

बेनु, बीना, ताल उषटित मुरज, मृदंग खाव  
महुबरी, किन्नरि, झांझ बांजत शंख, ढृप पिनाक ? ॥

सरस सरोवर माँझ देखियतु फूले कुमुद कलहार  
तान, मान, सुगान गावें जम्यौ राग मलहार ॥

कुंज-कुंज झुलाइ झुलवति सब सखी सोहे संग  
चंद्रावली, ललिता, विसाखा उपजे कोटि अनंग ॥

लेत झोंटा जुगल सुंदर करत केलि-विलास  
देवगन मिलि कुसुम वरस बलि-बलि 'कुंभनदास' ॥

# पवित्रा —

१२१

सारंग ]

पवित्रा पहिरत गिरिधर लाल ।

रुचिर पाट के फोंदना करि-करि पहिरावत सब ग्वाल ॥

आसपास सब सखा—मंडली मनों कमलअलि—माल ।

‘कुंभनदास’ प्रभु त्रिभुवन मोहत गोवर्द्धन-धर लाल ॥

१२२

( सारंग )

\* पवित्रा पहिरें श्रीगिरिधरलाल ।

वाम भाग वृषभान—नंदिनी बोलत वचन रसाल ॥

आसपास सब ग्वाल—मंडली मानहुं कमल अलि—माल ।

‘कुंभनदास’ प्रभु त्रिभुवन-मोहन नंदनँदन वृजपाल ॥

१२३

[ सारंग ]

पवित्रा पहिरें श्रीगोकुलराइ ।

श्याम अंग पर अमित माधुरी सोभा कहिय न जाइ ॥

वाम भाग वृषभान—नंदिनी अंग—अंग रस माइ ।

गोपी सनमुख ठाढ़ीं चितवति दुति दामिनि-दमकाइ ॥

भक्त—हेत मनमोहन लीला गूढ रहसि उपजाइ ।

‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर कौ रूप न वरन्यौ जाइ ॥

१२४

[ सारंग ]

पवित्रा पहिरें राज—कुमार ।

तीनों लोक पवित्र किये हैं श्रीगिरिधर सुकुमार ॥

सावन सुदी बिदित एकादसी होत है मंगलचार ।

करि सिगार सिंधासन बैठे सब बालक परिवार ॥

व्रज—सुंदरि मिलि गावति, आवति मोतिनि भरि—भरि थार ।

‘कुंभनदास’ प्रभु ‘तुम चिर जीवो’ देत पवित्रा उदार ॥

\* इसी तुक से गोविन्द स्वामी का एक पद है जो प्रथक है। ( देखो—‘गोविन्द स्वामी’ पद सं. २ ६ ) कांकरोली प्रकाशन। सं. १२१ और १२२ एक ही पद हैं।

# राखी —

१२५

[ सारंग ]

मात जसोदा राखी बांधे बल के श्रीगोपाल क ।  
 कनक—थार अच्छित, कुँकुम लै तिलकु कियो नंदलाल के ॥  
 वक्षन विविध आभूषण साजें पीताम्बर वनमाल के ।  
 मृगमद, अगर, घनसार, अरगजा लावति महन गोपाल के ॥  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर उर राजत मनिमाल के ।  
 देत असीस सकल गोपीजन, नव घनस्याम तमाल के ॥

१२६

[ सारंग ]

राखी बांधति है नँदरानी ।  
 रत्नजटित की सुभग बनी अति मोहन के मन मानी ॥  
 विप्र बुलाइ दई बहु दच्छिना जसुधा हिय हरणानी ।  
 ‘कुंभनदास’ गिरिधिर के ऊपर रसबस बारति पानी ॥

१२७

[ सारंग ]

\* रच्छा बांधति जसुधा मईया ।  
 विविध सिंगार किए पट भूषण पुनि—पुनि लेति बलईया ॥  
 तिलक करति, आरती उतारति हरषि—हरषि मन—मईया ॥  
 नाना भांति भोग आगें धरि कहति— जेउ बल—भईया ! ॥  
 नरनारी सब आए तहाँ मिलि निरखन नंद—ललईया ।  
 ‘कुंभनदास’ गिरिधिर चिर जीवो सकल धोष सुख—दईया ॥



## इति वर्षोत्सव—पद

\* इसी तुक से गोविंदस्वामी का पद है, जो प्रथक हैं। देखो:—‘गोविंदस्वामी’  
 पद सं. २२० कांकरोली प्रकाशन,

# लीला



## कलेउ —

१२८

नंद के लाल ! मन-हरन सुंदर स्याम !  
 जाऊं बलि-बलि अब कीजिए कलेवा ॥  
 विविध पकवान, दधि, दूध, मांखन, मिश्री,  
 पहरि लेउ बसन, कटि बांधि लेहु मेवा ॥

बलराम—संग मिलि जाउ खेलन लाल !  
 सकल ब्रज—जनआनंद—देवा ।  
 ‘दास कुंभन’प्रभु नंद—नंदन, कुवर—  
 जसोदा के प्रान, मेरे देवाधिदेवा ॥

## माखन—चोरी —

१२९

[ सारंग ]

आनि पाए हो हरि ! नीकें ।

चोरि—चोरि माखन सबु खायो गींधि रहे दिन-प्रति इहि छीकें ॥  
 रोक्यौ भवन द्वार ब्रज—सुंदरि नूपुर मूंदि अचानक हीकें ।  
 ‘अब कैसें जईयतु बल अपने, भाजन फोरि, दूध-दधि पीकें ?’ ॥  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु भले परे फग देहुं १२ जान भांवते जीकें !  
 भरि गंडूष छींटि नैननि में गिरिधर धाइ<sup>२</sup> चले दै कीकें ॥

१ जा-न न देहु ( क )

२ भाजि ( क )

१३०

[आसावरी]

बालक—ही तें चोरिये हो ! जानत ?

मांखन दूध धरयौं उन छांडयौं बहुरि अचानक भाजन भानत ॥  
अवहिं लाल मेरयौं सर्वसु मूस्यौ अह उलटे तुम केसी बानत ?  
गोवर्द्धन—धर ! संग लागि डोलत ‘कुंभनदास’ प्रभु अजहुँ न मानत ॥

१३१

[ विमास ]

बिलगु जिनि मानो री ! कोउ हरि कौ ।

भेर हिं आवत, नांच नचावत, खात दहथी घर—घर कौ ॥  
प्यारौ प्रान—दिए जो— पैए नागर नंद—महर कौ ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर रसिक राधिका वर कौ ॥

## क्रीडा —

१३२

[ गौरी ]

क्रीडत कान्ह कनक—आंगन मांही ।

निज—प्रतिबिम्ब बिलोकि, किलक करि, धावत पकरन कों परछांही ॥  
पकरि न पावत खमित होत जब, आवत उलटि लाल तिहिं ठांही ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु की यह लीला निरखि जसोमति हँसि मुसिक्याहीं ॥

१३३

( सारंग )

गोपाल हिं लावो हो ! मोरें टेरि ।

कुंज—सदन में जाइ सखी री ! खेलत भई अवेरि ॥

बिनु लाएं जिनि आओ सजनी ! उतहीं रही हौं हेरि ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर हिं लै आवौ बहुरि न पठै हों केरि ॥

१३४

लला रे ! आजु अवेरो आयो ?

बड़ीय बार की मारग जोवति, तें कित गहरु लगायो ॥

अब कहु वाहरि जान न दैहों मेरौ हियो जुडायो ।  
घर ही बोहोत खिलौना तेरें काहेकों वाहरि धायो ॥  
एक ठोंई दैन उराहनो आई, ‘मैं काहू कौ दधि नहीं खायो’ ।  
'कुंभनदास' गिरिधर यों कहें तव करत आपुनो भायो ॥

१३५

[ गौरी ]

अरी माई ! देखत कौ कान्ह बारौ ।

निर्मल जल जमुना कौ कीन्हो, धीसि आन्यौ नाग कारौ ॥  
अति सुकुमार कमल हूँ तें कोमल, गिरि गोवर्द्धन धारयौ ॥  
बूढत तें व्रज राखि लियो है-मेटि इन्द्र कौ गारयौ ॥  
है कोउ देव, बडौ देवनि में जसुमति ! पूत तिहारौ ॥  
'कुंभनदास' भक्त की जीवनि सर्वसु प्रान हमारौ ॥

## ब्रजभक्त-प्रार्थना —

१३६

[ देवगंधार ]

तुम नीके दुहि जानत गईयां ।

चलिये कुँवर रसिक नंदनंदन ! लागों तुम्हारे पईयां ॥  
तुम हिं जानिके कनक-दोहिनी घर तें पठई मईयां ।  
निकटि हिं है इह खरिक हमारौ नागर ! लेऊं बर्लईयां ॥  
देखी परम सुदेस सुंदरी चितु चिहुटयौ सुंदरईयां ।  
'कुंभनदास' प्रभु मानि लई मन<sup>१</sup>, गिरिगोवर्द्धन-रईयां ॥

१३७

[ ]

\* कान्ह ! तिहारी सौं हौं आउंगी ।

सांझ सजोखन खरिक वछरुवा, स्याम ! समौ जो- पाउंगी ॥

<sup>१</sup> रति (क)

\* इसी तुक से पाठ-भेद के साथ यह पद परिशिष्ट २ सं. २३४ प। सूरसागर में छ्या है। संपादक को इस के सूरकृत होने पूर्ण सन्देह है। इस में छाप की तुक इस प्रकार है—“सूरदाम प्रभु तुमसौं छल करि कब लौं आपु छुडाऊंगी। यह कुंभनदास कृत ही है।”

जो—मेरे भवन भीर नहिं वहै है, तौ हौं तुम्हें बुलाउंगी ।  
 बाल गोपाल—बुलावन के मिस ऊँचौ सुर लै गाउंगी ॥  
 होत अवार दूरि घर जैवो ऊतर कहा बनाउंगी ? ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर ! अधसुधा—रस पाउंगी ॥

१३८

[ गोरी ]

कान्ह ! दुहि दीजै हमारी रईयां ।

तुम्हें जानि सतभाइ लड़ते नित उठि पठवति मईयां ॥  
 सब कोउ कहत—‘परम उपकारी संकरण कौ मईयां’ ।  
 लेहु कुंवर ! कर कनक—दोहिनी नंद—नंदन ! हौं लेउं बलईयां ॥  
 हम तें बहुत तिहारें गोधन, बहुत दूध—दधि, रईयां ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु करो कृपा नेंकु गिरि गोवर्द्धन—रईयां ॥

## परस्पर हास—वाक्य —

१३९

[ नटनारायण ]

गोपाल ! तोसों खेलै कौन बहोरि ?

रहु मोहन ! इह कौन चतुराई मोतिनि—लर लई तोरि ॥  
 इह बिनोद नीकौ तुम पहियां पकरत बांह मरोरि ।  
 हौं अपनें घर कहा कहोंगी ? चुरियां डारि सब फोरि ॥  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु कहत—‘खिझति कत ? ल्याउ देऊ’गौ जोरि ।  
 लाल गोवर्द्धन—धारी सों मुसकाइ चली मुख मोरि ॥

१४०

[ आसावरी ]

ग्वालिनि ! तै मेरी गेंद चुराई ।

अब ही आइ परी पलका पे अँगिया—बीच दुराई ॥  
 एहो गोपाल ! छूठ जिनि बोलो, एते पर कहा सीखे चतुराई ?  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर ! छतियां छुओ न पराई ॥

## मुरली-हरण —

१४१

[ विलावल ]

नंद-नंदन के अंक तें मुरली सुंदरि चतुर हरति ।  
 नूपुर मुखर मूंदि, अछन-अछन पांइ धरति ॥  
 कनक-वलय, कंकन जुग भुजानि उछिप्त करति ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर के मुदित नैन देखति  
 चक्रत मंद हास कौतुक-रस तें जागनि तें डरति ॥

१४२

[ विलावल-जतिताल ]

नागर नंद-कुमार मुरली हस्त न जानी ।  
 गिरिवर-धर के अंक तें अचानक लई राधिका सयानी ॥  
 व्रजसुंदरि जतननु मूंदन की नूपुर कंकन-वानी ।  
 'कुंभनदास' मुसकात मंद गति अछन-हिं अछन पयानी ॥

१४३

आवत ही जु करी चतुराई ।

नव नागरी निकुंज-ओट वहै लै मुरली कहुं अनत दुराई ॥  
 मृदु मुसकाई, कही इक बतियां सो व तियनि वरनी नहिं जाई ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर नौतन श्रीति आजु ही पाई ॥

## प्रभु-स्वरूप वर्णन —

१४४

[ धनासिरि ]

सुंदरता की सींवा नैन ।

अति हि स्वच्छ, चपल, अनियारे, सहज लजावत मैन ॥  
 कैवल, मीन, मृग, खंजन आदिनि तजि अपने सुख चैन ।  
 निरखि सबनु सखि ! एक अंस पर सरवसु कीयो दैन ॥  
 जब अपने रस गूढ भाव करि कछुक जनावत सन  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर जुवतिनि मन हरि लैन ॥

१४५

[ धनासरी ]

वदन की भाँति सबै सखि ! चारु ।

कर कपोल की मदन कोटि-छवि लोचन भरि व निहारु ॥  
 सुंदरता-सिंधु तजि है मरजादा बाढ्यौ अति विस्तारु ।  
 जुवतिनि-नैन रहे थकि तामें तरत न पावत पारु ॥  
 सरद-कमल, ससि की उपमा कौ आवै न जिय हिं चिचारु  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ अद्भुत रूप सुढारु ॥

१४६

( धनासरी )

देखो<sup>१</sup>री सोभा श्याम-तन<sup>२</sup> की ।

मानहुं लई कुंवर नँद-नंदन गति सब नव धन की ॥  
 तडिदिव पीत बसन जु पुरंदर-धनु जनु माला घन की ।  
 मुक्ताहार कंठ उर पर सखि ! पंगति वक-गन की ॥  
 रूप-वारि वरखत निसि वासर सींचत वृत मन की ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर जीवनि व्रज-जन की ॥

१४७

[ सारंग ]

नँद-नंदन नवल कुँवर व्रज वर सौभाग्य-सींव  
 वदन-ओप देखि सखी ! नैननि मन हरत री ! ।  
 स्याम सेत अति हि स्वच्छ, बंक चपल चितवनी  
 मानहुं सरद-कमल ऊपर खंजन द्वै लरत री ? ॥

अलकाघलि मधुप-पांति अंगर छवि कहि न जाति ।

निरखत सौन्दर्य मदन-कोटि पाँझनु परत री !

'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर स्यामरूप-मोहिनी,

दिवि-भुवि-पाताल जुवति सहज ही बस करत री ! ॥

<sup>१</sup> तुम देखो री ( प्रचलित पाठ )

<sup>२</sup> नागर नट की ( वं. १५५-२-९३ )

१४८

[ सारंग ]

कहत न बनि आवै हरि के मुख की सुंदरता ।  
 नख—सिख अंग विचारत ही नित यहै पचत हारथौ करता ॥  
 सरद—चंद जे जलजात सबनि की ओप कांति—हस्ता ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु सौभग—सींवा ललनु गोवर्द्धन—धरता ॥

१४९

[ गौरो ]

हरि के नैननि की उपमा न बनै ।  
 खंजन, मीन, चपल कहियतु ए एसेनि कोन गनै ॥  
 राजीव, कोकनद, इंदीवर और जाति सब रही विचारि जिय अपनै ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिवर—धर ए परम निचोल रचे सुठनै ॥

१५०

[ धनाश्री ]

रंगीले री ! छवीले नैना रस भरे, नाचत मुदित अनेरे रे ।  
 खंजरीट मानों महामत्त दोउ कैसे हूँ घिरत न धेरे रे ॥  
 स्याम, सेत, राते, रँग—रंजित मानों चित्र चितेरे रे ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर स्याम—सुभग तन हेरे रे ॥

१५१

[ केदारो ]

छिनु—छिनु बानिक और हि और ।  
 जब देखों तब नौतन सखि री ! दृष्टि जु रहति न ठौर ॥  
 कहा करों परमिति<sup>१</sup> नहों पावत बहुत करी चित दौर ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु सौभग<sup>२</sup>—सींवा गिरिवर—धर सिरमौर ॥

१५२

[ केदारो ]

सरद—सरोवर सुभग अंग में वदन कमल चारु फूलयौ री माई ! ।  
 ता—ऊपर बैठे लोचन दोउ खंजन मत्त भए मानों करत लराई ॥  
 कुंचित केस सुदेस सखी री ! मधुपनि की माला फिरि आई ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिवर धरन लाल हैं भए जुवतिनि सुखदाई ॥

१५३

[ विभास ]

तरनि- तनया तीर आबत प्रभात समै  
 गेंदुका खेलत देख्यौ आनंद कौ कंदवा ।  
 नूपुर कुनित पग, पीतांवर कटि बांधे,  
 लाल उपरेना, सिर मोरनि कौ चंदवा ॥  
 पंकज नैन सलोल, बोलत मधुरे बोल,  
 गोकुल नारी - संग बनी दस छंदवा ।  
 ' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्धन-धारी लाल,  
 चारु चित्तवनि, खोलै कंचुकी के बंदवा ॥

१५४

[ पूर्वी ]

जमुना के तट ठाढ़ो मुरली बजावत  
 मोहन मदन-गोपाल ।  
 सींस टिपारो, कटि लाल काछिनी,  
 पीत उपरेना, उर राजति बनमाल ॥  
 कमल फिरावत, गति उपजावत,  
 गावत अति रस-गीत रसाल ।  
 ' कुंभनदास ' प्रभु त्रिभुवन मोहत  
 गोवर्धन-धर लाल ॥

१५५

[ आसावरी ]

जमुना-तट ठाढ़ो देख्यौ आली ! मोहन मदनगोपाल री ।  
 कस्तुंभी पाग, पीत उपरेना, उर गज-मोतिनि माल री ॥  
 देखत ही मन मोहि रहत सखि ! अँग-अँग रूप रसाल री ।  
 ' कुंभनदास ' प्रभु त्रिभुवन-मोहन गोवर्धन-धर लाल री ॥

१५६

( सारंग )

\* सोभित लाल परधनी झीनी ।

ता-पर एक अधिक छवि देखियतु जलसुत-पांति वनी कटि छीनी ॥  
उज्वल पाग स्याम-सिर राजति अलकाबलि मधु-पीनी ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर चपल नयन जुवतिनि वस कीनी ॥

१५७

[किदरो]

सखी ! तू देखि मदनगोपाल ठाढे, आजु नव निकुंज ।  
रसिक, रूप-निधान, सुंदर स्याम आनंद-पुंज ॥  
कमल नैन विसाल, चंचल, सरस चितवनि-दैन ।  
मंद मुसकनि, बदन-छवि पर वारों कोटिक मैन ॥  
हिंदै माल, मराल गजगति परम मधुरे हास ।  
श्रीगिरिधरन-छवि सुजस चित धरि गाइ 'कुंभनदास' ॥

१५८

[ विभास ]

### श्रीस्वामिनी-स्वरूप वर्णन —

सखि ! तेरे चपल नयन, अरु बडे-बडे तारे ।  
हरि-मुख निरखि न मात पटनि में खनु,  
निसि-दिनु रहत उघारे ॥  
जो आगे तें पंथु रोकते नाहिं सबनु तौ  
नां जानों कहां चलेजात<sup>१</sup> अपढारे ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन रसिक ए  
कृष्ण-संसार सींचि<sup>२</sup> अति सुख बाढे भारे ॥

\* इसी प्रकार "ओढे लाल उपेनी झीनी" इस तुक से परमानंददास कृत पद भी है ।

१ जाते (क)      २ सींचे (क)

१५९

[ देवगंधार ]

कुवरि राधिका ! तू<sup>१</sup> सकल—सौभाग्य सींव  
या बदन पर कोटि—सत चंद्र वारों ।  
खंजन कुरंग—सत कोटि नैननि—ऊपर  
वारने करत जिय में न विचारों ॥

कदलि सत—कोटि जंघनि—ऊपर,  
सिंह सत—कोटि कटि पर न्योङ्लावरि उतारों ।  
मत्त गज कोटि—सत चाल पर  
कुंभ सत—कोटि इनि कुचनि पर वारि ढारों ॥

कीर सत—कोटि नासा—ऊपर,  
कुंद सत—कोटि दसननि—ऊपर कहि न पारों ।  
पक्व किंदूर बंधूक सत—कोटि  
अधरनि—ऊपर बारि रुचि गर्व टारों ॥

नाग सत—कोटि बेनी ऊपर  
कपोत सत—कोटि ग्रीव—पर वारि दूरि सारों ।  
ऋमल सत—कोटि कर—जुगल पर वारने  
नांहिन कोउ लोक उपमा जु धारों ॥

‘दास कुंभन’स्वामिनी—सुनख सिख  
अंग अद्भुत सुठान कहां लगि संभारों ? ॥  
लाल गिरिधर—धरन कहत मोहि तौलों सुख  
जौलों — उह रूप छिनु—छिनु निहारों ॥

१६०

(कल्पान)

सखि ! कहा कहों तुव रूप की निकाई ।  
नख—सिख अंग—अंग लाल गिरिधरन—हित  
रुचि—पर्चि विरंचि अद्भुत बनाई ॥

चाल मत्त मराल, जंघ कदली—खंभ  
कटि सिंघ, गौर तन सुभग — सींवा ।

उरज श्रीफल पक, अलक केकी—छटा  
बचन पिक मोहत, कपोत ग्रीवा ॥

तरल जुग लोचने नलिन—श्रो—मोचने  
चिखुक सॉवल चिंदु चारु वेसं ।

स्वन ताटंक हाटक रत्न खचित  
सुमधिक छवि सोभित कपोल वेसं ॥

अधर वंधूक — दुति कुंद दसनावली,  
ललित वर नासिका तिल—प्रसूने ।

निरखि मुख चंद्रमा रथनि संभ्रम चित्त  
चलत ततच्छिन बिलुरि कोक दूने ॥

सकल श्री-सिंधु इहि कहां लगु वरनिये ?  
कोटि मुख जीभ परमिति न पावै ।

‘दास कुंभन’ स्वामिनी कौ सुजसु  
अंतरंगिनी सहचरी मुदित गावै ॥

सखि ! तेरे तन की सुंदरता ।

नख—सिख अंग—अंग अवलोकन करि चक्रत भयो करता ॥  
गति अनूप, कटि कुस अनूप, अति उर अनुपम सुभरता ।

छवि अनूप उपजति छिनु—छिनु सखि ! अनुपम उज्ज्वलता ॥  
परमिति करत विचार विविध चित नांहिन रहत सुमिरता ।

‘कुंभनदास’ स्वामिनि ! तोहि—वस गोवर्द्धन—धरता ॥

१६२

[ नट नारायण ]

विधाता एकौ विधि न बच्यौ ।

लै सब सबु<sup>१</sup> कौ सार राधिका ! तेरे तन आनि सच्यौ ॥  
 कर पद कमल, जंध कदली, गति मत्त गयंद मराल  
 ग्रीवा कपोत, उरज श्रीफल, कटि केहरि, भुजा मृनाल ॥  
 मुख चंद्रमा, अधर विंवा, विद्रुम वंधुक सुरंग ।  
 तिल प्रसून शुक नाक, नयन-जुग खंजन, भीन कुरंग ॥  
 दसनावली वज्र, विज्ञुलता दारधो कुंद-कली ।  
 छवि-रुचि कनक, बचन पिक के सम मयूर मधुप-अवली ॥  
 अद्भुत रचना रची प्रजापति नख-सिख अंग सुख दै ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर-हित पच्यौ परम चित दै ॥

१६३

[ नट नारायण ]

गिरिधर पिय के हृद वसी तेरे वदन की परम सुदेस छवि ।  
 एक अंग के रूप के आग जात<sup>२</sup> सखि ! कोटिसूत चंद्रमा दवि<sup>३</sup> ॥  
 नैन अंस की सोभा वरनि सकै एसौ कौन कवि ?  
 'कुंभनदास' स्वामिनि राधिका ! इहै गति तोहि कों यों आइ फवि ॥

१६४

[ नट नारायण ]

विधि कै रचे विधाता माई री !

तेरे नैन परम रंजन ।

सहज सुतिक्ष, सौभाग्य-सींव, गिरिधरलाल<sup>४</sup> के  
 हृदै में वसत, निसि-दिनु उपमा कौंज न ॥

जब तू ब्रज-कुमारि ! मुदित अपने रस,  
 सकल सुहथ धरि हरि-हेत अजन ।

'कुंभनदास' निरखत हीं गरबु ढांडत,  
 अपनी रुचि कौं खंजन ॥

<sup>१</sup> सचु (क) <sup>२</sup> भाजत (क) <sup>३</sup> रवि (क) <sup>४</sup> गिरिधरनलाल (क)  
 कुं. ९

१६५

[ कानरो ]

री राधे ! वदन तेरौ विधि कै रच्यौ ।

त्रिभुवन की कृति छांडि विधाता चितु दै पच्यौ ॥  
कमल, इंदु, बंधूक, शुक, पिक, अलि सबु कौ रूप लै ह्याँई सच्यौ ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधारी कों दै भेट नच्यौ ॥

१६६

[ केदारो ]

सखि ! तेरी मोहिनी टेढी भोंहैं ।

मोहिनी सुगति टेढी दुँहुं नैननि की  
अरु<sup>१</sup> चितबनि टेढी अधिक सोहैं ॥

मोहिनी अलक टेढी - बेढी बहु भाँतिनि  
अरु टेढिये चलनि, पग धरनि धरति सुठोहैं ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर इहि छवि  
मोहे री ! तैं इकट्ठु जोहैं ॥

१६७

[ बिलावल ]

सखी री ! जिनि व सरोवर जाहि-

अपनें रस कों तजि चक्रवाकी बिछुरि चलति मुख चाहि ॥  
सकुचत कमल अकाल पाइकें, अलि व्याकुल दुख दाहि ।  
तेरौ सहज आन सब की गति, इह अपराधु कहि काहि ॥  
इक अद्भुत ससि रच्यौ विधाता सरस रूप अतिसाहि ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर नागर देखे फूले<sup>२</sup> ताहि<sup>३</sup> ॥

१६८

[ बिलावल ]

तेरे तन की उपमा को<sup>३</sup> देख्यौ

मैं विचारि के कोउ नांहिन भामिनि !

कहा वापुरो कंचन, कदली, कहा केहरि, गज,

कपोत, कुंभ, पिक कहा चंद्रमा कहा वापुरी दामिनि ? ॥

<sup>१</sup> अति (क) <sup>२</sup> चाहि (क) <sup>३</sup> क्यों रच्यौ (क)

कहा कुरंग, सुक, बंधूक, केकी, कमल या आगे  
 श्री देखिये सब की निःकामिनि ॥  
 मोहन रसिक गिरि—धरन कहत ‘राधे !  
 परम भावती तू है’ ‘कुंभनदास’ स्वामिनि ॥

१६९

तेरे नैन चंचल बदन कमल पर जनु जुग खंजन करत कलोल ।  
 कुंचित अलक मनों रस-लंपट चलि आए मधुपनि के टोल ॥  
 कहा कहों अँग-अँग की सोमा खुंभीनि परसत चारु कपोल ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर देखत वाढ़ै मदन अमोल ॥

१७०

सींवा नैननि तेरे की ?

अब नहिं दृष्टि दुरांउ री प्यारी सखि ! सुनु जिय मेरे की ॥  
 कमल, मीन, मृग-जूथ भुलाने वर कटच्छ फेरे की ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर रिंगति श्रुत-विलास घेरे की ॥

## युगलस्वरूप—वर्णन—

१७१

( सारंग )

बनी राधा गिरिधर की जोरी ।  
 मनहुं परस्पर कोटि मदन रति की सुंदरता चोरी ॥  
 नौतन स्याम नंद-नंदन वृषभान-सुता नव गोरी ।  
 मनहुं परस्पर बदन चंद्र कों पीवत तृष्णित चकोरी ॥  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु रसिक लाल बहुविधि व रसिकिनी निहोरी ।  
 मनहिं परस्पर बढ़ौरंग अति उपजी ग्रीति नहिं थोरी ॥

१७२

( विहारी )

रसिकनी रस में रहति गडी  
 कनक-बेलि वृषभान-नंदिनी स्याम तमाल चढ़ी ॥

विहरत लाल संग राधा के कौने भाँति गढ़ी ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर-संग रति-रस केलि पढ़ी ॥

## छाक (वनभोजन) —

१७३

[ सारंग ]

सुबल गिरि-ऊपर चढि टेरत ।  
 आवहु वेगि चतुर छक्कहारी ! गिरिधर पैदां हेरत ॥  
 भई अवेर भूख जब लागी तब उपरेना फेरत ।  
 'कुंभनदास' औसर पर पहुँची रस में दान निवेरत ॥

१७४

[ सारंग ]

चिहारीलाल ! आई छाक सलौंनी ।  
 अति अदृश्यत पठई चंद्रावलि एक गांठि है दोंनी ॥  
 टेरत स्याम भुजा ऊंची करि गई सुवास आग्योंनी ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों विधना रसिक रिंझोंनी ॥

१७५

[ सारंग ]

घर-घर तें आई छाक ।  
 खाटे-मीठे और सलौंने विविध भाँति के पाक ॥  
 मंडल-रचना करि जमुना-तट सघन लता की छांही ।  
 गोपी ज्वाल सबै मिलि जैवत मुख हिं सराहत जांही ॥  
 बांटत बल मोहन दोउ भईया कर दोना अति सोहैं ।  
 चाखत आप सरवनि-मुख देखें गोपीजन, मन मोहैं ॥  
 टेंटी, शाक, संधानो, रोटी, गोरस, सरस महेरी ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर रस-लंपट नाचत दैदै फेरी ॥

१७६

[ मलार ]

गहरी सघन स्याम ढाक की छांहि बैठे ।  
 आई सब छाक मिलि काहे कों करत अबारि ॥

उमडि-घुमडि लूमि-झूमि चहुं दिसि ते घटा आई  
 निधरक भए डोलत देखो निहारि ॥  
 हाहा ! कहि भली भाँति टेरि ग्वाल कीन्ही पांति  
 अर्जुन ! तुम लेहु भईया पनवारे देहु डारि ।  
 'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धरन लाल छाक बांटि-  
 जैमन लागे, आग्यां दीनी तिहीं वारि ॥

१७७

[ मलार ]

गरजि-गरजि रिमि-झिमि रिमि-झिमि बरसन लाग्यौ  
 बन में लै आई छाक औचक गई हौं अटकि ॥  
 दूजें गई भूलि बाट, निकसी औघट बाट  
 कठिन पाई गैल ताते फ़िरी हौं भटकि ॥  
 भींजें उर व्यंजन ढिंग जोबन की संक मानि,  
 देखि छाक सधन छांहि धरथौ डला भूमि लटकि ॥  
 'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धरन-कूक स्वन सुनत  
 छाक ढांपि पातनि सों, चली सटकि ॥

१७८

[ मलार ]

मोहनलाल, बाल हरखि निरखि रीझि रहे,  
 भींजे सब बसन देखि कहत 'लै री ! पलटि ।  
 पीतांबर पहरि लीजै छाक बांटि सबनि दीजै  
 वरखा रितु आई घर कों सिदोसी जाओ उलटि ॥  
 भूख ते अकुलाइ रहे, खीजत कहत रटत भए,  
 सकल दुख गए भटू ! तोकों तो भए सुलटि ।  
 'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धर लाल ! अनत जात रहे  
 तेरे भागि तोहिं पाए अति हि निकटि ॥

१७९

[ मलार ]

बरजि-बरजि हारे बरजत न ढारे  
 जूठनि मांझ बिजन, भयो भोजन हरि ।  
 नीकें सब लिये अधांइ कौर न मुख दियो जाइ  
 जमुनोदक पान करत अचबन करि ॥  
 सुबल, तोष, मधुमंगल-परिवृत अर्जुन, भोज, बाहु-सहित  
 हरि — समीप श्रीदामा कोरि भरि ।  
 बाँटत है बीरा ग्वाल गोवर्द्धन-धरन लाल  
 'कुंभनदास' बरखा — रितु बरसत झरि ॥

१८०

[ मलार ]

आजु हरि जैंघत अति सुख दीनों ।

बरसत मेह नेह उपजावत रुचि-रुचि भोजन कीनों ॥  
 बिडरी धेनु करै इकठौरी भेजि सुबल कों दीनों ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर भक्ति दृपा-रस भीनों ॥

१८१

[ मलार ]

लाल ! बन भयो सकल हस्तियारौ ।  
 चहूं और करि निहारौ लागत है अति प्यारौ ॥  
 यही ठौर भौजन करिवे की बिजन कहा संभारौ ।  
 सधन कुंज बरसौ किन बादर झूलन और बिचारौ ॥  
 आग्यां दई गोपाल ग्वालनि कों भलौ मतौ जिनि टारौ ।  
 'कुंभनदास' मंडल-मधि सोभित गिरिधर नंद-दुलारौ ॥

१८२

[ मलार ]

आरोगत मोहन मंडल-जोर ।

बिजन स्वाद भेल, अति लागत ज्यों गरजै घन-धोरि ॥  
 नन्हीं-नन्हीं बूंद सुहावनी लागत तैसीय पवन-झकोरि ।  
 बौछारनि की फुंही परत, कर मेलत मुख में कोरि ॥

देखी लाल गांड सब इत-उत बछरनि घेरत दोरि ।  
गिरिधर पिय कों देखि महासुख 'कुंभनदास' तृन तोरि ॥

## भोजन —

१८३

[ टोडी ]

जैवत हैं री ! मोहन अब जिनि जाओ तिवारी ।  
सिंहपोरि तें किरि-किरि आवति बर्जी हैं सौ बारी ॥  
रोहिनि आइ निकसि ठाढ़ी भई दैदै आडि मुख सारी ।  
तुम तरुनी जोबन-मदमाती एसी जु देखन-हारी ॥  
कोउ गरजत कोउ लरजत आवति कोउ बजावति तारी ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर अब हीं बैठे थारी ॥

१८४

[ टोडी ]

आजु हमारें मोहन जैवं सोई कीजै ब्रजरानी !  
कहा भवन मोहरि जु रहे अब दधि-ओदन भरि धरि हों पानी ॥  
बड़ी बार की उठी बह विटिया, कोउ है भोरी कोउ है सयानी ।  
रचि-रचि बिजन खाटे-मीठे करि-करि लांउ जोई मनमानी ॥  
कहति रोहिनी सुनु हो जसोमति ! प्रेम लपेटी बानी ।  
सैननि-सैननि समझि-समझि करि मन-ही मन सुसकानी ॥  
बलदाऊ कों टेरि लिये हैं, दिये सखा पठै, विधि जानी ।  
'कुंभनदास' गिरिधर लै आए महलनि - सुरति-निसानी

## आवनी —

१८५

[ धनासिरि ]

देखि री ! आवनि मदनगोपाल की ।  
सक-वाहन मत्त निरखि लाजत जिय, गति अनूप लटक-चाल की ॥  
स्याम-तन कटि-चसन मन हरत, सुन्दर्यता उरसि माल की ।  
भैंह धनु साजि मानों, मदन-सर चितवनि लोचन विसाल की ॥

रेनु-मंडित कुटिल अलक सोभा कस्तूरिका तिलक भाल की ।  
‘दास कुंभन’ चारु हास मोहै जगतु गोवर्द्धन-धर कुंवर लाल की ॥

१८६

[ गोरी इकताल ]

देखो<sup>१</sup> वे आवें हरि धेनु लियें ।

जनु प्राची दिसि पूरन ससि रजनी-मुख उदौ कियें ॥  
मंडल विमल सुभग वृन्दावन राजत व्योम वियें ।  
बालक-वृंद नछत्र, सोभा मन चोरत दरस दियें ॥  
गोपिनि नैन-चकोर सीतल भए रूप-सुधा हि पियें ।  
‘कुंभनदास’ स्वामी गिरिधर व्रज-जन आनंद हियें ॥

१८७

[ श्रीराग ]

आवत मोहन<sup>२</sup> चिन्ह हरयो ।

हैं अपने एह सचु सों बैठी निरखि वदन अचरा विसरयौ ॥  
रूप-निधान<sup>३</sup> रसिक नंद-नंदन देखि नयन धीरजु न धरयौ ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धनधर अँग-अँग प्रेम चीयूष भरयौ ॥

१८८

एरी ! यह फेटा ऐंठवा सीस धारें ।

चारु चन्द्रिका राजति तापै राजतार हिं सुधारें ॥  
तादिंग लटकि रही अलकावलि वहु मोतिनि के भारें ।  
सुंदर मुख पर रज राजति है [ सखनि सहित ] गज चारें ॥  
वन तें बने री ! आवत बनवारि जुवती-जूथ निहारें ।  
‘कुंभनदास’ गिरिधर की छवि पर तन-मन-धन सब वारें ॥

<sup>१</sup> देखो हरि आवत धेनु (क) <sup>२</sup> आवत गिरिधर मन जु हरयो हो । (वार्ता)

<sup>३</sup> रूप अनूप स्याम सुंदर की देखत मन, (ध. १-९/१०१)

१८९

[ मलार ]

गांड सब गोवर्द्धन तें आईं ।

बछरा चरावत श्रीनैद-नंदन बेनु बजाइ बुलाईं ॥  
 घेरी न धिरति गोप-बालनि पें अति आतुर वहै धाईं ।  
 बाढ़ी प्रीति मदन-मोहन सों दूध की नदी बहाईं ॥  
 निरखि सरूप व्रजराज-कुंवर कौ नैननि हरखि सिराईं ।  
 'कुंभनदास' प्रभु के चहुं दिसि ते मानों चित्र लिखाईं ॥

१९०

[ गौरो ]

फुटिफट किन लै हैं घेरि ।

बहुतक फैलि रहीं खादर में मुरली सुनावो टेरि ॥  
 चारि अंजुली न पानी पीजै जमुना कौ, वहुरि अधानी फेरि ।  
 हुलकत हुँकत करति बछरनि-सुधि धावति खरिकनि हेरि ॥  
 जो कोउ रहीं और लहेडे में ताहिव लैहों निवेरि ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर भई दुहन की बेरि ॥

१९१

[ किदरो ]

गोंपाल<sup>१</sup> के बदन पर आरती वारों  
 एकचित्त मन करों साजि नीकी जुगति  
 वाती अगनित धृत कपूर सों वारों ॥

संख<sup>२</sup>-धुनि, भेरि, मृदंग, झालरि,  
 झांझ, ताल, घंटा जे वहु विस्तारों ।  
 गाऊं सांवल-सुजसु-रस नेकु सुस्वाद रस  
 परम हरषित नित चंवर कर टारों ॥

<sup>१</sup> लाल के (अष्ट छाप-वार्ता कांकरोली)

<sup>२</sup> ताल डफ मृदंग संख झांझ झालरी घंटा बाजै आनग विश्वारों [वं. २७।४ १४०]

कोटि रवि उदित मानों कांति अँग-अँग<sup>१</sup> प्रति  
करि सकल लोक केतिक वारि डारों ।  
'दास कुंभन' कहै लाल गिरिधरन कौ-  
रूप, नयन भरि-भरि निहारों ॥

## आसक्ति वर्णन —

१९२

[ धनसिरी ]

तू तो<sup>२</sup> नंद-भवन आवन के कारन कौन कौन मति<sup>३</sup> ठानति ।  
नागरि ! वृथा<sup>४</sup> काज की बातें कैसें कैसें वानति ॥  
भोर हि तें संब्या लों<sup>५</sup> चितवति बारंबार पयानति ।  
परम चतुर विद्या-संपूर्न ठांचे<sup>६</sup> हि ऊतर आनति ॥  
होत<sup>७</sup> न चैन भवन एकौ छिनु वरज्यो कहयौ न मानति ।  
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों मन अटक्यौ हैं जानति ॥

१९३

[ धनसिरी-जतिताल ]

कहति तू तो नैननि ही मो घतियां  
मानहु कोटिक रसना इनि मँह रचि धाली बहु भतियां ॥  
हमसों कौन चाड व्रज-सुंदरि ! छांडि बिकाज बिनतियां ।  
ए भए चपल वसीठ चतुर अति जानत<sup>८</sup> सकल जुगतियां ॥  
जो तरंग उपजति चित-अंतर सोई मिलवति बिधि-भतियां  
सुंदरश्याम मदनमोहन की तर्के रहति है घतियां ॥  
आपुन करति मनोरथ पूरन सदा परम सुख छतियां ।  
'कुंभनदास' गिरिधरन लाल के वसति जीऊ दिन-रतियां ॥

(१) अंग अंग की कांति मानों प्रगट करि सकल लोक तिभिर हारों [ ब'. २७।४/१४५ ]

(२) नंदभवन आवन (क) (३) मिस (क) (४) मृषा (क) तें आगम की (बा २७।२/३४)

(५) लगु देखति [ ब' २७।४ ] (६) ठाएं (क) (७) रहयौ न परत भवन.

(८) आनत (क)

१९४

[ धनासिरी-अठताल ]

कहा नंद के तू आवति-जाति ?  
 यो भेदै हौं जानति नांहिन ?  
 कहु री ? कचन खालि ! तोहि नाति ॥  
 सांझ सवारे हौं एहि देखति हौं  
 ना जानों क्यों तोहि रैनि बिहाति ।  
 अब तो काज सकल विसराए  
 गृह-पति तें नांहिन सकुचाति ॥  
 मदनमोहन सों तेरौ मन अख्जानों  
 गृह नहिं चैन होत किहिं भांति ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरधर कौ-  
 रूप, नयन पीवत न अघाति ॥

१९५

[ सारंग ]

देखत स्याम-सरूप सखी री ! तेरे नैनां रहि गए एक हिं टक ।  
 नागरि ! मनहुं चितेरे चितेरी थकित चरन भूली अक-बक ॥  
 परी सिरसि अति कठिन ठगौरी सुधि-बिनु को मानें काकी सक ?  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवद्धन-धर तनु-मनु चोरि लियो जु अचक ॥

१९६

( सारंग )

तू भाई गोपाल हिं चितै जु हँसी ।

नंद-कुमार<sup>१</sup> देखि अति रीझे मृगनैनी जिय मांझ बसी ॥  
 गज-गति, चपल सुदेस, किसोरी कुच कठोर चोली सुविधि कसी ।  
 कचन वरन नवल ब्रज<sup>२</sup>-सुंदरि वदन चारु मानों सरद-ससी ॥  
 बोलत चले सुंदर ब्रज-नाइक जहाँ नव निकुंज द्रुम-बेलि गसी ।  
 'कुंभनदास' प्रभु<sup>३</sup> गिरधर देखत आरज-पथ तें को न खसी ? ॥

१९७

[ सारंग ]

मोहन हरि मोहनी तोहिं मेली ।

रह्यौ न जाइ बढ़ी चौंप मिलिवे की कठिन जु प्रीति नवेली ॥  
जा दिन तें सुभाइ मृगनैनी ! तू स्यामसुंदर<sup>१</sup>—सँग खेली ।  
ता दिन तें न सुहाइ भवन सुनि सब बन भँवति अकेली ॥  
वा पें प्रान रहत निसि—वासर जहां बनि<sup>२</sup> कुंज द्रुम—बेली ।  
‘कुंभनदास’ गिरिधर—रस अटकी श्रुति<sup>३</sup>—मरजादा पेली ॥

१९८

[ सारंग ]

लोचन मिलि गए जब चारथौ ।

है ही रही ठगी—सी ठाढ़ी ऊ—अंचर न संभारथौ ॥  
अपने<sup>१</sup> सुभाइ नंदजू के आई सुंदर स्याम निहाथौ ।  
ठग—ठगी लगी, चरन—गति थाकी, जिउ व टरत नहिं टारथौ ॥  
उपजी प्रीति मदनमोहन सों घर कौ काज विसारथौ ॥  
‘कुंभनदास’ गिरिधर रस—लोभी भलौ तें आरज-पथ पारथौ ?॥

१९९

[ केदारो ]

देखे—बिनु नैननि चटपटी लागति  
नंद—नंदन की ठगौरी तोहिं है परी ॥  
सकल काज विसारे री ! अब तोकों-  
रह्यौ न परै घर एकौ घरी ॥

आवत—जात संक न मानति काहू की,  
हिलग जु कठिन लोक की लाज बिसरी ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर मन चोरथौ,  
गोवर्द्धन—धर तू अपने बस करी ॥

२००

[ केदारौ ]

नैननि चटपटि लागिये रहति है ।

हौं देखति हों निसि-दिनु माई ! निमि-निमेख न सहति है ॥  
स्यामसुंदर कौं रूप, मायुरी, देखि-देखिके अंग-अंग<sup>१</sup> लहति है ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय सों तू वितया सैननि हीं<sup>२</sup> कहा कहति है ? ॥

२०१

[ बिलावल ]

देखो माई ! देखहु उलटी रई ग्वालिनि रीती मथनियां (दही) विलौवै ।  
विनु हि नेत कर चंचल, फुनि तजि नवनीत हिं टकटोवै ॥  
देखत रूप चिहुँटि चित लाग्यौ इकट्ठु गिरिधर-मुख जोवै ।  
'कुंभनदास' विसर्यौ दधि अकबक, औरै भाजन धोवै ॥

२०२

[ बिलावल ]

रूप मनोहर सांवरो नंदजू कौ छोरा  
पांछे-पांछे डोलत फिरै तुम करो झकझोरा ॥  
लालच विराने अंग की नहीं मानै निहोरा ।  
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धर प्रीतम मोरा ॥

२०३

[ देवगंधार ]

प्रेम सों झुकि-झुकि मिलवत सोवत मुख गोपी कौ ।  
झंका करत भोंह नैननि हँसि लागत है अरु नीकौ ॥  
कहा री ? करों अँचरा गहि ऐंचत गोपी गहति कर पी कौ ।  
झुकि-झोरनि अँचरा कपोल गहि चाहत-चाहत जी कौ ॥  
या रस कों अनरस नहिं जानत-जानत, हैं हित ही कौ ।  
'कुंभनदास' गिरिधर कौ ध्यान उर और सुचिर वरस कीकौ ॥

२०४

[ देवगंधार ]

बहुरि निहोरत<sup>३</sup> स्याम धनी ।  
नंद-नैन, वृषभान-नंदिनी रति रस-रंग सनी ॥

१ अंग लहति है (क)

२ सैननि कहा (क) ३ निवेरत (३/१)

स्याम सरूप सुन्यौ पिय—तन में ज्यों धन—तडित बनी ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर बस भए गुन गावति सजनी ॥

२०५

( सारंग )

विसरि गयो माई ! लाल हिं करत गो—दोहनु ।  
निरखि अनूप चंद्र मुख इकट्ठु रहयौ सांवरी मोहनु ॥  
नवल नागरि विचित्र चतुर अति रूप अँग—अँग सुठोहनु ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर कौ मन हरयौ कटीली मोहनु ॥

## आसक्ति—वचन

[ प्रसुप्रति ]

२०६

[ सारंग ]

परम भाँवते जिय के हो मोहन ! नैननि आगें तें मति<sup>१</sup> ठहु ।  
तौलों जिउं जौलों देखों वारंवार पा लागों चित अनत न धरहु ॥  
तन सुख चैन तोही लों प्यारे ! जौ लों लै-लै आँकौ भरहु ।  
रसिकनु मांझ रसिक नँद—नंदन तुम पिय ! मेरे सकल दुःख हरहु ॥  
आवहु, जाहु, रहहु गृह<sup>२</sup> मेरे स्याम मनोहर ! संक न करहु ?  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर ! तुम अरि-गजन कातें व डरहु ॥

२०७

[ ईमन ]

लाल ! तेरी चितवनि चित हिं चुरावै ।

नंद—गांउ बृषभान—पुरी विच मारगु चलन न पावै ॥  
हौं हरी भरि होत ही काहूं ललिता द्वगनि दिखाइ द्वगनि दिखावै ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन—धर, धरयौ है तो क्यों न बतावै ॥+

[ सखीप्रति ]

२०८

[ सारंग ]

छबीलौ लाल दुहत हे धेनु धौरी ।

बारक फिरि चितयो मो—महियां निरखि बदन भई धौरी ॥

१ जिनि (क) २ धर (क)

+ यह पद स्पष्ट रूप में नहीं मिला ।

कंकन कुनित, चारू चल कुंडल, तन चंदन की खौरी ।  
माथें कनक वरन कौ टिपारो, ओढें पीत पिछौरी ॥  
कहा करों मोये रहौ न परतु सखि ! मेली है कठिन ठगौरी ॥  
'कुंभनदास' तब सुख, गिरिधर कों जब भेटों भरि कौरी ॥

२०९

[ सारंग ]

दरसन देखन देहु मेरे आतुर है नैन ।  
वदन चंद-कर पान करें ए चकोर तब हिं माई ! चैन ॥  
केते धौस भए बीच पारें रोम-रोम रहथो पूरि मैन ।  
'कुंभनदास' जब भेटों अंको भरि गिरिधर-धरन सब सुख-दैन ॥

२१०

[ धनासिरी

तौ हैं कहा करों री माई !

सुंदरस्याम कमल-दल लोचन मेरी मन लियो है चुराई ॥  
लोक-कुदंव सबनि मिलिके हैं बहुत बार समुझाई ।  
तऊ मोहिं जसोधा-गृह-बिनु नांहिन परत रहाई ॥  
अब तौ कठिन हिलग के कारन लाज सबै विसराई ।  
'कुंभनदास' प्रभु सैल-धरन मोहिं मुसकि ठगौरी लाई ॥

२११

[ धनासिरी-इकताल ]

मोरे जिय तौ ही तें परति कल नां जौ तें देख्यौ स्यामु ।  
अंग-अंग की सोभा वरनी न जाइ मो - पहिं  
मानों प्रगटित अलि ! कोटि - अंस कामु ॥

'कुंभनदास' प्रभु बन गत्रनत हे कमल नयन धरे भेदु अभिरामु ।  
गिरिधर नव वर-तनु मन हरिलियो रहि न सकों कलप-समजात जामु ॥

२१२

[ धनासिरी ]

जोरी रति नैननि नैन मिलाइ ।  
दूरि हि भए स्याम धनसुंदर चले दै सैन बुलाइ ॥

जब तें दृष्टि परे नँद-नंदन घर आँगन न सुहाइ ॥  
 अति आतुर मन भयो मिलन कों छिनु-छिनु कल्प विहाइ ॥  
 सजि सिंगार चली मृगनैनी सब की दृष्टि चुराइ ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर कों मिली कुंज-वन जाइ ॥

२१३

[ सारंग-इकताल ]

हिलगानि कठिन है या मन की ।

जाके लयें देखि मेरी सजनी ! लाज जात सब तन की ॥  
 धर्म जाउ अरु हँसो लोक सब अरु, आवौ कुल-गारी ।  
 सो<sup>१</sup> क्यों रहै ताहि बिनु देखें, जो जाकौ हितकारी ॥  
 रस-लुबधक एक निमिख न छांडत ज्यों अधीन मृग गानै ।  
 'कुंभनदास' सनेह-मरमु इहिं गोवर्द्धन-धर जानै ॥

२१४

[ सारंग-जतिताल ]

कहा करों उह मूरति मेरे जिय तें न रई ।  
 सुंदर नंद-कुंवर के बिछुरें निसि-दिन नींद न परई ॥  
 बहुबिधि मिलनि प्रान-प्यारे की सु एक निमिख न बिसरई ।  
 वे गुन समझि-समझि चित्त नैनतु नीर निरंतर ढरई ॥  
 कछु न सुहाइ तलावेली मन, विरह-अनल तन जरई ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु समाधान को करई ॥

२१५

[ सारंग-जतिताल ]

सुंदर साँवरे कछु कियो

नयन द्वार व्हैं अंतर गवने मन मानिकु हरि लियो ॥  
 मारग चले जात मो पहितें छीनि कुंवर दधि पियो ।  
 बदन चूंचि मुसकाइ छबीले कर परस्यो मेरो हियो ॥  
 इहै पछिताति सखी ! अब जिय में संग हिं क्यों न गियों ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु नाहिन परत जियो ॥

२१६

( धनासिरी )

मेरी अंखियनि यही टेव परी ।

कहा री ! करों सखी ! वारिज मुख पर लागति ज्यों भैंवरी ॥  
 सरकि-सरकि श्रीतम-मुख निरखति रहति न एक घरी ।  
 ज्यों-ज्यों जतन करि-करि राखति हों त्यों-त्यों होति खरी ॥  
 खुच रही सखी ! रूप-जलनिधि में प्रेम-पीयूष भरी ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर-मुख निरखत लुटत निधी सगरी ॥

२१७

[ सारंग ]

माई ! री नागर नंद-कुमार मो-तन चितैकें हसै ।  
 नवधन श्री बदन, दसन दामिनी लसै ॥  
 तबहि और भवन नैन-द्वार वहै धैसै ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर प्रान में बरै ॥

२१८

[ सारंग ]

लोचन करमरात हैं मेरे ।

देखन कों गिरिधरन छवीलौ करत रहत बहु फेरे ॥  
 स्यामधन तन, बदन चंद के तृपावंत ताप सहत घनेरे ।  
 सादर ज्यों चातक चकोर 'कुंभनदास' ए न रहत घेरे ॥

२१९

[ सारंग ]

मोहिनी मेली हो ! मधु बैननु ।

'मारग छोड़ि' कद्दौ जब मोसों तब बेधी सर-मैननु ॥  
 चंचलता की सींव सखी री ! सरद-कमल दुहुं नैननु ।  
 परम सुजान जनाई सब विधि गूढ भाव गति सैननु ॥  
 अब तब तें मोहिं कछु न सुहाई, जिय न रहत क्यों ही चैननु ।  
 'कुंभनदास' प्रभु ठगी अचानक गिरिधर मन हरिलैननु ॥

२२०

( सारंग )

मान तौ करि हू न आवै ।

वह चितवनि, वह हास मनोहर कोटिक दुख विसरावै ॥  
निमिख के ओझल होत तलमली तब हिं चटपटी नैननि लावै ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय सों रुसे ही बोल्यौ भावै ॥

२२१

[ सारंग ]

जो पें चोंप मिलन की होइ ।

तौ कत रहौ परै सुनि सजनी ! लाख करै जो कोइ ॥  
जो पें विह परस्पर व्यापै तौ इह बात बनै ।  
डरु अरु लोक-लाज अपकीरति एकौ चित न गनै ॥  
'कुंभनदास' जो मन मानै तौ कत जिय औरु सुहाइ ?  
गिरिधर लाल रसिक विनु-देखें छिनु-भर कल्प विहाइ ॥

२२२

[ सारंग ]

ग्रोति तौ काह सों न कीजै ।

विशुरत कठिन परै मेरी माई ! कहु कैमें कें जीजै ॥  
रति-रति कं करि जोरि-जोरि कै हिलि-मिलि सखसु दीजै ।  
एक निमिख-सम सुख के कारन जुग-समान दुख लीजै ॥  
'कुंभनदास' इह जानि बूझिके काहे कों विखु-जल पीजै ।  
गोवर्द्धन-धर सब जानतु हैं उपजि खेद तन छीजै ॥

२२३

[ गौरी ]

गोपाल सखी ! लियो मेरौ मन चोरि ।

मदनगोपाल<sup>१</sup> चतुर अति नागर नैननि सों नैन जोरि ॥  
कमल नयन बैठे हे झरोखां हैं आवति ही खोरि ।  
देखत स्थाप मनोहर मूरति मारी मदन-सर तोरि ॥  
किहिं विधि<sup>२</sup> मिलों सुजान कों<sup>३</sup> सखि ? किहिं मिस जाउं बहोरि ।  
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धारी लाल लई हैं अचानक भोरि ॥

२२४

[ गौरी ]

इनि नैननि तुम देखो री माई ! सर्वसु हरिके हरि कों दियो ।  
 घर में के चोर कैसे रुकत हैं तिन कौ कछु नांहिन जात कियो ॥  
 कहा करों मेरो<sup>१</sup> वसु नाहीं परवसु भयो तनु-मनु, बुधि-हियो ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर-विनु मो पे वयों हू न परतु जियो ॥

२२५

(नट नारायण)

जो कछु बात कहि गए हो ललनां,  
 सो कत कीजै स्याम मनोहर ! बन गवनत जब हिं गहे मेरे अँचलनां ॥  
 तब हि तें मोहिं कछु न सुहाइ शन-रति-जोयें<sup>२</sup> परै कल नां ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, पंथ जोवत, इत हिं नैननु लागै पल नां ॥

२२६

[ केदारौ ]

मन मोहथौ री ! मोहन नैननु ।  
 भौंह विसाल, चपल अवलोकनि मनहुं नचावत मैननु ॥  
 'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि समुझि न कछुक<sup>३</sup>, जनायो सैननु ।  
 गौवर्द्धन-धर ठगी हैं अचानक रहि न सकति हों चैननु ॥

२२७

[ धनासिरी ]

इनि ढोटा हैं डहकी री<sup>४</sup> मेरी माई !  
 चितवनि में कछु टोनों-कीनों मोहन-मंत्र पढ़ाई ॥  
 विकल भई मन लीनें<sup>५</sup>-डोलति बिनु-देखें न रहाई ।  
 बाट-धाट पुर-बन-वीथिनि में लोक कहै- बौराई ॥  
 मगन भयौ मन स्याम सिंधु में खोजत ही गैहराई<sup>६</sup> ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर बात कही समुझाई ॥

१. मेरे (क) २. जंबें (क) ३. परी जो जनाई (क) ४. री माई (क)  
 ५. लीनो (क) ६. गै हराई (क)

२२८

[धनासिरी]

नयन भरि देखे नंद-कुमार ।

ता दिन तें सब भूलि गयो है<sup>१</sup> विसरे पति, परिवार ॥  
 विनु-देखे हौं विकल भई हौं अंग-अंग सब हारे ।  
 तामें सुद्धि है साँवरी मूरति लोचन भरि ब निहारे ॥  
 रूप-रासि परमिति नहिं मानति<sup>२</sup> कैसे मिलों कन्हाई ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर<sup>३</sup> कों मिलबहु री मेरी माई ! ॥

२२९

[रामग्री]

माई ! गिरिधर के गुन गाऊँ ।

मेरें तो व्रत एई है निसिदिन और न रुचि उपजाऊँ ॥  
 खेलन आंगन आउ लाडिले ! नेंकहु दरसन पाऊँ ।  
 'कुंभनदास' हिलग के कारन लालचि लागि रहाऊँ ॥

२३०

[सामेरी]

नैननि टगटगी लागि रही ।

नखसिख-अंग लाल गिरिधर के देखत रूप सब ही ॥  
 प्रात कालि घर तें उठि सुंदरि ! जात ही बेचन मही ।  
 वहै गई भेट स्याम सुंदर सों अध-भर विच-पथ ही ॥  
 घर-व्यौहार सकल सुधि भूली, ज्वालिनि ! मनसिज दही ।  
 'कुंभनदास' प्रभु प्रीति चिचारी रसिक कंचुकी गही ॥

२३१

[गौरी]

हरथौ मन चपल चितवनी चारु ।

तक्षित तामरस लोहित लोचन, निरखत नंद-कुमारु ॥  
 बुद्धि विथकी, बल विकल सकल अंग, विसरथौ गृह-व्यौहारु  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर-विनु और नहीं उपचारु ॥

२३२

[ नट ]

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं ।  
 गोवर्द्धन-धर अंग-अंग प्रति जहाँ<sup>१</sup> ही परति दृष्टि रहति तहीं-तहीं ॥  
 कहा कहों कछु कहत न आयो चोरथौ<sup>२</sup> मन मांगि वे दही ।  
 'कुंभनदास' प्रभु के मिलिवे की सुंदर बात सकल<sup>३</sup> सखीनु सों कही ॥

२३३

[ नट ]

मेरो मन तौ हरि के संग गयो ।  
 नांहिन काहू कों दोस री माई ! नैननि के धालें पर-बस भयो ॥  
 नंद-कुमार जब हाँ दृष्टि परे स्यामरूप अपने द्वार वहै अंतर लयो ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन कों कहा हाँ<sup>४</sup> कहोंरी ! इननु अपबल मूसि दयो ॥

२३४

[ केदारौ ]

नंद-नंदन की बलि-बलि जैये ।

स्याम मुदुल कलेवर की छवि देखि-देखि सुख पैये ॥  
 सकल लोक-पति, श्री-पति, ठाकुर रसना रसिक-बिमल जसु गैये ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर कों तनु-मनु सख्तसु दये ॥

२३५

[ केदारौ ]

मोहन-मूरति जिय में वसी ।

स्याम-अंग नभ प्रगटित मानों माई ! वदन चारु सोभा सरद-ससी ॥  
 गोप-बृंद-संग खेलत हे सखी री ! देखत ही हाँ मदन-भुअंगम डसी ।  
 'कुंभनदास' प्रभु अब देखों तब सुख गिरिधरलाल रसिक-रस में रसी ॥

२३६

( सारंग )

एक गाँउ कौ वास सखी री ! कैसे कें धीर धरों ।

लोचन मधुप अटक नहीं मानत जद्यपि जतन करों ॥

<sup>१</sup> निरखि नैन, मन रहत तहीं—(ब.ध. १८१२) <sup>२</sup> चित चोरथौ वे गांगि दही (ब. ११११७९)  
<sup>३</sup> सखियनु सों (ब. ११११७९) <sup>४</sup> कहोंरी ! (क)

इहि पथ गँवनत हैं गोचारन हैं दधि लै निकरों ।  
निरखत रोम-रोम गदगद सुर आनंद उमणि भरों ॥  
विनु देखें पलु जात कलप भरि विरहाअनल जरों ।  
'कुंभनदास' कहां लों अनुदिन आरज-पथ हि डरों ॥

२३७

( सांग )

\*अब हौं कहा करों ? मेरी माई !

जब तें दृष्टि परे नंद-नंदन घर अंगना न सुहाई ॥  
घर में मात-पिता मोहिं ब्रासत 'तें कुल-लाज गवाई '।  
बाहिर सब मुख जोरि कहत हैं- कान्ह-सनेहिनि आई ॥  
रैनि दिवस मोहिं कल न परति है घर अंगना न सुहाई (?)  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-घर हँसि चित लियो है चुराई ॥

२३८

( जैतश्री )

अरुद्धि रह्यौ मोहन सों मन मेरौ ।

लूट नें कु न लुडायौ सजनी ! चहुं दिसि प्रेम रह्यौ करि धेरौ ॥  
नख-सिख अंग रँगीली बानिक मुसकनि मंद महारस झेरौ ।  
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-विनु भावत नांहिन कोउ अनेरौ ॥

२३९

[ नट ]

को रोकै री ? आवत इहिं मग पूतरी पोरिया उनके भए ।  
अंजन छडनि दई कर सॉकरि पलकनि पल(क) कपाट दए ॥  
ठाढे रहे अति प्रेम के बाढे निसि-वासर हरि-रूप छए ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-घर मन के भाजन सब ढांढि लए ॥

२४०

[ विहाग ]

निरखत रहिये गोवर्धन-रानों ।

मनसा वाचा सुनु री सखी ! मन याहीके हाथ विकानों ॥

\* यह पद सं. ३८१८ पर सूरसागर में इसी तुक से छपा है, शब्द-सम्य होते भी दोनों अलग से हैं ।

सुंदर स्याम कमल-दल लोचन मो-तन मुरि मुसिकानों ।  
‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर मेरे नैननि-मांझ समानों ॥

२४१

[ सारंग ]

माई री ! स्याम लग्यौ संग डोलै  
जित हीं जाउं तित हीं आवतु है अन-बुलाए बोलै ।  
कहा री ! करों इन नैना लोभी बस कीने बिनु-मोलै ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर हँसि कर धूघट खोलै ॥

२४२

[ सारंग ]

मदनमोहन सों प्रीति करी मैं कहा भयो ? जो-कोउ मुख मोरथौ ।  
इह व्रत तें हैं कवहुं न टरि हों जानि सबनि सों नातो तोरथौ ॥  
सास रिसाउ, मात गृह त्रासौ, हैं पति सों मानहुं घट फोरथौ ।  
‘कुंभनदास’ गिरिधर सों मिलि हों आरज-पंथ हैं सबनि सों छोरथौ ॥

२४३

[ विलावल ]

लाल-मिलन कौ आगम हैं जान्यों फरकन लागे कुच भुज वाँई ।  
सुनि री सखी ! इक बात, आवेगे आजु प्रात,  
इनि आनंद अखियौं पहिले ही मिलि आंई ॥  
कर कौं कंकन दैहों, हिय कौं मोतीहार  
जिनि मेरे प्रीतम की बात चलाई ।  
‘कुंभनदास’ गिरिधर आवहिंगे तब हैं करोंगी आनंद बधाई ॥

२४४

[ सारंग ]

सखि ! हैं कहा जानों संकेत ?  
‘स्याम सुंदर’ नाम लै-लै दोस सब मिलि देत ॥  
काननि सुन्यौ न नैननि हीं देख्यौ किधौं कारौ के सेत ?  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर जाकौ जासों हेत ॥

२४६

( सारंग )

सखी री ! जीवति हों सुख हेरें ।  
 कोउ मेरी सगौ न हों काहू की, कहति सबनि सों टेरें ॥  
 जो मन हतो सोई भलें करि हों कहा भयो कहे तेरें ?  
 'कुंभनदास' हिलग की बातें निवरति नांहि निवेरें ॥

२४७

( अडानो )

मोह्याँ री ! ब्रज-मोहन काहे न ऐंडी डोलै ।  
 भूलि गयो बन धेनु-चरावन बूझति हों वाहै मोहिं बतावो कब वह बोलै ॥  
 कहुं लकुट, कहुं मुखली, पीतांवर कहुं भूषण खोले डोलै ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर मोह्यो खोज परी यह डोलै ॥

## मान—

२४८

( धनासिरी )

वतियॉ तेरी ये जिय भावति ।  
 तबहिं लों सुख गिरिधरन छवीले, जौलों रहों सुनावति ॥  
 तब ही उत चटपटी लागति जब हि हों छिनु घर आवति ।  
 एक तें एक पठावत बोलनु चैनु न क्यों ही पावति ॥  
 वारं-वार इहै चरचा सखि ! और न जिय हिं सुहावति ।  
 'कुंभनदास' प्रभु अति आतुर चित प्रेम-प्रबोध रहावति ॥

२४९

( धनासिरी )

बोलत स्यान मनोहर बैठे कदंब-खंड की छहियाँ ।  
 कुसुमित द्रुम अलि-कुल गुंजत सखि ! कोकिल कल कूजत तहिया ॥  
 सुनत दूतिका की बचन माधुरी भयो उल्लास वाके मन महियाँ ।  
 'कुंभनदास' ब्रज-कुंवरि मिलन चली रसिक कुंवर गिरिधर-पहिया ॥

२५०

( धनासिरी )

अब ए नैनाई तेरे करत वसीठी ।  
 इह नागरि ! जानति हों तातें अब मेरी बात लागति है सीठी ॥

‘कुंभनदास’ प्रभु तुव रस-व्रस भए कहि न सकति कर्द्दे अरु मीठी ।  
गिरिधर लाल हिं नचांवति त्यों नांचत इतनी कहति हों दिएं ढीठी ॥

२६०

[ धनासिरी ]

हरि कौ वदनु देखत पलु न लागै ।  
नटवर-बेखु धरें निकुंज मंडप<sup>१</sup> बैठे मनहुं प्रगट ससि श्री लांछनु न लागै ॥  
इह औसरु टरि जैहै, गहरु न करि मेरी ब कही री! जो<sup>२</sup> इह तेरे मन लागै ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर के मिलनु कों,  
वेगि चलहु सखि ! ज्यों छिनु न लागै ॥

२६१

[ धनासिरी ]

पठ्ठे गोपाल हाँ तोकों लैन आई ॥  
ऊतरु न देति मोसों बचन कहत रिसाति अति,  
जीत्यो योँही चाहति इह प्रकृति है तेरी मैं जानि पाई ॥  
भलौ री ! सुभाव जनावति अपनों आवत हीं जु लै ठानी लराई ।  
कहति है सु कहि तूं प्यारी नंदकुमार की,  
तातें न हाँ बोलति इह जिय जानिके राखों तेरी बडाई ॥  
बाहिर के फेर करति है दूती सों अंतर फूल भई जिय बात भाई ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर-धरनसबघोष-पति,  
अरु गांव के ठाकुर ! चलु कहा करों नांहिं कीनी न जाई ॥

२६२

[ सारंग ]

तू नंदलाल हि बहुत भावति है जु मिलति सुभाई हँसि करि ।  
मदनगोपाल निमिख विसरत हूदै मँह रही सुजान वसि करि ॥

अंग-अंग प्रति तूं मृगनैनी ? साजि सिंगार कंचुकी के वंद कसि करि ।  
मांग सुधारि, पहिरि नव भूषन, चंदन अंग चढाइ घसि करि ॥  
कनकलता-सी तूं व्रजभामिनि ! स्यामतपाल कान्ह सों ग्रसि करि ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कों मिलि मदन-ताप जैसे जाइ निफसि करि ॥

२५३

[ गौरी ]

मनायो न मानें मेरौ हैं हारी ।

सिखवत-सिखवत जाम गए पें एकौ न विचारी ॥  
तूं गुनरूप गत्व कत भूलति ? समुझति नाहिं न घोष-नारी ।  
'कुंभनदास' प्रभु बहु-नाइक (लाल) गोवर्द्धन-धारी ॥

२५४

[ गौरी ]

कब की वचन तोसों कहति री माई ! हैं  
चलति नाहिं न हरि पिय - पहियाँ ॥  
रजनी बीतन लागी है एक हि जक,  
करत - करत सखि ! नांहि<sup>१</sup> - नहियाँ ॥

तोहि मिलन-हित गोवर्द्धन-धर<sup>२</sup> कबके बैठे अकेले बन महियाँ ।  
'कुंभनदास' प्रभु के बोलत तोहिं इह ज्ञान रहति जु वार-वार छुडाइ बहियाँ ॥

२५५

[ गौरी ]

बोलत कान्ह निकुंजं ।

रितु वसंत मुकुलित द्रुम कानन, विविध कुसुम मधुकर गुंजं ॥  
नील निचोल पहरि, तजि नूपुर समै जोग्य सजु सुंजं ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कों मिलि ससि-विनु निसा तिमिर पुंजं ॥

२५६

[ नटनारायण ]

हरि जु आवन कशौ ।

काहे कों अब अकुलाति सखी ! तूं है दिनु अलप रहौ ॥

नवसत साजि मुदित चित भामिनी ! काहे कों मानु गह्यौ ।  
‘कुंभनदास’ गिरिधरन मिले-विनु निमिख न परत सह्यौ ॥

२५७

[ नटनारायण ]

हरि के बोलत तू चलि री ! काहे कों हठु करति ।  
वात कहेते रोख होतु है अरुन बरन मुख, नयन भरति ॥  
मेरे मनाये मानि री समुज्जि सखी ! हौं तेरे कब की पांड परति ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर कों मिलें ही सचु  
छांडि व्रथा रब और जिय धरति ॥

२५८

( कानरौं )

तू तौ चलि वेगि रजनी जाइ घटति ।  
न करु विलंबु मिलि नंद - सुवन कों,  
समुज्जि चतुर सुंदरि ! काहे कों सौ वात ठटति ॥  
मदनमोहन बैठे बड़ी वारके तू है नटति ।  
‘कुंभनदास’ गिरिधरलाल स्यामतमाल सों,  
कनकलता - सी क्यों न लपटति ॥

२५९

[ कानरौं ]

कह्यौ न मानति जोवन - माती !

ऊतरु न देति मनावत तोहिं गई अधराती ॥

तुं गुनरूप गरव कत भूलति ? जब हौं जाउंगी तब हि रहिहै पछिताती ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर पिय कों आंकौ भरि भेटि जुडाइ छाती ॥

२६०

[ केदारौं ]

तब<sup>१</sup> की तू मान कियें रही ।  
चंद्रमा फुनि प्रगट वहै है इहौ तैं न लही ॥  
तिमिर-पुंज निसा जबहिं ही तब न चलि निवही ।

अबहिं चहुं दिसि किरनि प्रगटित भई सेत मही ॥  
 'वेगि चलि सखि ! वेगि चलि' मैं बार—बार कही ।  
 'दास कुंभन' गिरिधरन — बिनु मिले, पींर मही ॥

२६१

[केदारो]

तोहिं मिलन—हित बहुत करत हैं मोहनलाल गोवर्द्धन—धारी ।  
 ऊरु मोहिं देहि किनि भामिनि ! कहहु कहा है वात तिहारी ॥  
 देखि री ! तु ज्ञरेखां बैठी तन सोहति झुमक की सारी ।  
 तन—मन बसी प्रान—प्यारे कें निमिख न जिय तें होति निन्यारी ॥  
 कहि धों सखी ! कहा हैं आऊं तूँधर जाहि बताउं सुचारी ।  
 'कुंभनदास' प्रभु ए सोवत हैं वह जु देखि॒ ऊंचो चित्रसारी ॥

२६२

[ मलार ]

रिमि-ज्ञिमि रिमि-ज्ञिम घन बरसैरी ! ।

बोलत मोर. कोकिला कूँजति तैसीये दामिनी अति दरसैरी ! ॥  
 धाइ रहे बदरा जित—तित तें ज्ञमि अपने पर परसैरी ! ॥  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय कौ तोहिं मिलनकों जिय तरसैरी ! ॥

२६३

[ केदारो ]

तू व देखि॑ निसापति गयो है खसि ।

काहे॑ कों गहरु करति री ! चलहि नैननि दै मसि ॥  
 चहुं दिसि कानन॑ तिमिर—पुंज तेरौ भांवतौ भयो री ! कुंकुची कसि ।  
 'कुंभनदास प्रभु' गिरिधर श्रीअंग घन मैं दामिनि—सी लसि ॥

१. सेन बताइ जु ठोर हि सुचारी (क)      (२) देखियत (क)

३ देखिरी (क)      ४. अब ही काहेकों (क)

५. तिमिर कानन भयो तेरौ भांवतो उठि कंचुकी (क)

२६४

[ केदारौ-रूपकताल ]

प्रान-नाथ सों सुनि हौ<sup>१</sup> भामिनि ! इतौ मान ना कीजै ।  
 जा विनु रह्यौ न परै छिनु<sup>२</sup> विछुरा ही तनु छीजै ॥  
 ए नैनिनिके भाँवते लाल दिन च्यारि कयों न देखि सुख लीजै ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर-पिय कँह<sup>३</sup> सखसु दीजै ॥

२६५

[ केदारौ-चर्ची ताल ]

चारु नट-भेखु धरि बैठें<sup>४</sup> गोविद तहां जहां सघन गहवर निकुंज भवने ।  
 नागरी! जबहि नैननि सों नैना मिले तवहिं नागर मुदित विषिन गवने ॥  
 रसिकवर नंद-सुत सुहथ सेज्या रची विविध पट फूल ठवने ।  
 हंसजा-तटनिकट विमल जल बहत तहां, त्रिगुन चल श्रीखंड-सैल पवने ॥

‘दास कुंभन’ प्रभु सुजान तोहिं मिलन कों  
 बहुत आतुर निमिल जुग वितवने ।  
 जोवत पंथ इकट्ठु लाल सकुमार सखि !  
 गोवर्द्धन-धर अखिल जुवति-रवने ॥

२६६

[ केदारौ-आठताल ]

मेरी बात तू मानि री चलु ।

नंद-नंदनु तेरौ पंथ चितवत बैठे अति आतुर बीतत कलप-पलु ॥  
 जुवति-जाति संताप-हरन सखि ! लोचन भरि देखहु वदन कमलु ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु औंकौ भरि भेटि कुंवर<sup>५</sup> सुजान रसिक गिरिधर लाल नबलु ॥

२६७

[ केदारौ जातिताल ]

मोहन हरि मानि लई तेरी वतियां ।

गिरिधर पिउ एकांति बैठे हैं मैं धरी सुहथ जाइ<sup>६</sup> पतियां

१ सुनि (क)      २ छिनु इक (प्रचलित)      ३ कों (क)

४ भेटे (ख)      ५ भामिनि कुंवर रसिक गिरिधर नबलु (क)

६ तेरी (क)

अब तौही लों धीरजु वांधि सखि ! दिनु गत जाम होइ जौलों रतियां ।  
 'कुंभनदास' दूती के बचन सुनत<sup>१</sup> ही परम सीतल भई छतियां ॥

२६८

[ मलार ]

तैं सूधैं वातौ<sup>२</sup> न कही ।

हरि आए तोहिं भवन निहोरन मुख धरि मौन रही ॥  
 अति अभिमान भलौ नांहि न कछु मरजादा न गही ।  
 चारि जामु लघु सकल जामिनी एक हि रस निवही ॥  
 कहा होतु अबकें पछितायें ? जानि जु पीर सही ।  
 'कुंभनदास' गिरिधरन मिले-बिनु तन-मन काम दही ॥

२६९

[ बिलावल ]

तोसों जु रस में कछु हसिकें कश्चौ सखि री ! तौ करति मानु ।  
 इतनें हि तौ काहे कों रूसति गोवर्द्धन-धारी प्यारौ सुख-निधानु ॥  
 मेरी कश्चौ करि, छांडि अटपटी सुनि री ! तजहि तू अपनों सयानु ।  
 'कुंभनदास' स्वामी सों प्यारी न करिहि निदानु ॥

२७०

[ बिलावल ]

जो तोसों बान कही पिय तेरे तू काहे कों रिसानी ?  
 प्रान-नाथ सों बीचु पारै सोई अयानी ॥  
 जा-बिनु रहौ न परै छिनु तासों क्यों रूसिये सयानी ? ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन कों सोई कीजै रहिये हूदै लपटानी ॥

२७१

( कानरौं )

न्यांझी ! तू अलकलडी ।

निसि वासर गिरिधरन लाल कें हूदै में रहति गडी ॥  
 तौही लों सुख जौलों समीपु रहै एक निमिख भावत नांहिन छडी ।  
 'कुंभनदास' स्वामिनि राधा है ब्रज-जुवतिनि मांझ बडी ॥

२७२

[ कल्याण ]

तेरे मन को बातें कौन जानें री !

जो पें डहु होइ तो नंद-सुव्रत के बोलें  
एसी कौन जुवति जो न मानें री ?॥

तेरी अरु हरि की मिलि चलति है याहि तें  
निधक बोलति है माई ! इहै वृक्षि परति है जियै आनें री ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरनै मनोहर हिं व्रज-जुवति३ औह न गर्नें री ॥

२७३

[ केदारौ-अठताल ]

कहेते बात न भवै तोहिं ।

नंदनँदन विनु रहयौ न परैगो संभरैगी४ मोहिं ॥  
समुझावत हारी तैसी५ तौ न समुझी,  
कहा करों जो चतुर अजानै होहि ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर बैठे निकुंज  
नट-भेखु धरें चलहि व तौ सुख जोहि ॥

२७४

[ केदारौ-अठताल ]

हैं वरजति हों माई री ! तूं पिय सों कत बीचु पारति ।  
नंद-नंदन तौ नैननि कौ भाँवतौ सुख-निधान, किन रहहि निहारति  
मृषा कोप कतहिं करति है सखी री ! छांडि हठ उ अंतहुं जु हारति ?  
कमलनयन-विनु रहयौ उ न परि है मिलि, अकाथ जोवन कत गारति ?॥  
'कुंभनदास' प्रभु अखिल सुंदरि-पिय इह न बात जीय हुं विचारति ।  
रस-मंहि कुरसु करति गिरिधर सों तूं सखि ! अपनों भरथौ कत दारति ?॥

२७५

[ केदारौ-इकताल ]

अनमनी-सी तूं काहे बैठी है री ! कर कपोळु दियें ।

हालति, चालति, बोलति नांहिने मानों मौन लियें ॥

३ हिय (क) ६/३ वंध

४ तब संभरैगी (क)

२ गिरिधर मनोहर (क)

५ पै तुं समझति नांहिन (क)

३ सुन्दरि (क) ६/३ वंध.

६ अयानी (क)

जोई तूं कहि है सोई री ! स्याम मानिहैं  
 सो बात कहा जाको इतौ कियें ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरलाल हिं तेरौ ध्यान रहतु  
 हैं देखत निसि - दिनु मृगनैनी बसति हियें ॥

२७६

[केदारी-अठताल]

गुंजामनि की माल हारि मोहन रखे रहतु हैं हियें ।  
 भूषन औरु अनेक अमोलिकु सखी ! ते सबु त्याग कियें ॥  
 तूथ नासिका मुक्ताफल री ! अधर अंजन<sup>१</sup> रुचि सों उनमान लियें<sup>२</sup> ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल तोहिं जपत रहत हैं  
 निसि-दिन मन, क्रम, वचन हौं कहति सपथ कियें ॥

२७७

[केदारी]

भामिनि ! छांडि दै किन फेर ।  
 खसत उदुपति चलत पश्चिम, होति है अवेर ॥  
 अबहिं बिपिन परि है सखि ! तमचुर की टेर ।  
 पाछें हूँ पछिताइगी जब वहै है विरह को घेर ॥  
 मिलहु सुंदरि ! स्यामसुंदर सुनहि वचन मेर ।  
 'दास कुंभन' लाल गिरिधर जीवन-यन हैं तेर ॥

२७८

(आसाधरी)

बोलत कान्ह कुमुद-वन मांहि ।  
 बनी हैं मनोहर ठौर कदंब की छांहि ॥  
 उठि मृगनैनी छांडि दै अभिमानु लागों तुम्हारे पांहि ।  
 बड़ी वार भई मोहिं आए चली बेगि जांहिं ॥  
 'कुंभनदास' जबहीं चली दूती गहि देखि बांहि ।  
 गिरिधर लाल कौ त्रास फिरि सकों नांहि ॥

२७९

( सारंग )

मानिनी मान तज्यौ तवही कौ देखत रूप मदनगोपाल कौ ।  
 सपथ करति कबहुं नहिं रूपों चितवी जिय वस्यौ लोचन विसाल कौ ॥  
 साजि सिंगारु चली ब्रजसुंदरी भलौ मनाइवे गिरिधरलाल कौ ।  
 'कुंभनदास' कनकवल्ली-सी जनु लपटानी द्रुमतमाल कौ ॥

२८०

[ कल्याण ]

पिय कौ रुख लिये रहों ॥

जो कछु आग्या प्यारौ दैहै सोई ए करों इतनिकु वचन उलटि न कहों ॥  
 इहै सोचु निसिवासर मेरें जो छिनु एक बीच पारै तो कैसे कें सहों ।

'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर सों भूलि न कबहुं,  
 करि सकों मान यह व जानि चरननि गहों ॥

२८१

उठि चलि काहे न मोहन-मुख जोवै ।

विनु देखे गिरिधरन रंगीलौ, एसैई वृथा घरी कत खोवै ? ॥  
 यह जोबनु अंजुली के जल ज्यौं विनु ब्रजनाथ छिनहिं-छिन छीजै ।  
 विद्यमान अपने इनि नैननि उहि मुखकमल देखि किनि जीजै ?  
 मेरे कहे तें मानि लेउती काहे कों करति सखी ! अनभायौ ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर श्रीनागर तजि वैकुंठ खेलन ब्रज आयौ ॥

२८२

( सारंग )

गिरिराज-धरन तोहिं देत मान,  
 हठ छांडिदै मूरख अग्यान !  
 सुनु ब्रज-भामिनि ! जातु है जामिनी,  
 होत है भोर, पिया विचारि हरि सों राखु ध्यान ॥  
 जो छिनु जात सो बहरधौ न आवत  
 हरि सों मिलन-विनु होत हान ।

‘कुंभनदास’ प्रभु लाल गोवर्द्धन विनती करत हैं  
मन-वच करि, घूंघट जिनि ? तान ॥

२८३

[ ६ ]

चलि अंग दुराएँ सँग मेरें ।

लै मुख मौन, कर अधर ओट दै, दसन-दामिनी चमकति तेरें ॥  
तजि नूपुर, कटि झुद्धवंटिका, श्रवन सुनत खग-मृग हेरें ।  
‘कुंभनदास’ स्वामिनी वेगि भिलि, निरट निरट गिरिधर तेरें ॥

२८४

चलि-चलि री ! वन बोली स्यामा ।

जमुना-तीर सधन कुंजनि में तेरौई नाम रटत घनस्यामा ॥  
करि सिंगारु चंचल मृगनैनी पहिरिलै कंठ मोल-श्री की दामा ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु भुज भर भेटें गिरिधरलाल सकल सुख-धामा ॥

२८५

( नंद )

जो तू अछत-अछत पगु धरनी धरै ।

निसि अंधियारी कोउ न जानें नूपुर-धुनि जिनि प्रगट करै ॥  
किसलय, दल कुसुमनि की सिज्जा रची निहारि नव कुंज दरै ।  
‘कुंभनदास’ स्वामिनी ! वेगि मिलि रसिक-राइ गिरिधरन वरै ॥

२८६

[ मलार ]

तू चलि नंद-नंदन वन बोली ।

करि सिंगार चंचल मृगनैनी पहिरि कसूंभी चोली ॥  
कुच कठोर, नैन अनियारे लै मिलि भेट अमोली ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर मिलि हैं अंतर-पट खोली ॥

२८७

[ मलार ]

तेरौ मन मोहन<sup>१</sup>-विनु न रहैगौ ।

उमडी घटा सावन भाँदौ की पंछी सब्द कहैगौ ॥

तब तू मोहि सँभारेगी तब-जब तोहि मदन<sup>२</sup> दहैगौ ।

‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर-विनु प्रेम प्रवाह वहैगौ ॥

२८८

बंदे जो जबहि मान धरि आवै ।

सुंदर स्याम बहुरि सन्मुख वहै अंबुज-बदन दिखावै ॥

तबलगि मान करहु कोउ कैसें, जबलगु वह दरसन नहिं पावै ।

दृष्टि परें मन मधुकर तिहिं छिनु सहज सरोज हिं धावै ॥

त्रिभुवन मांझ होउ बंदे जुवती आरज-पँथ हि द्वावै ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्धन-धर बुल-मरजादा ढावै ॥

२८९

मोहनराइ बोली री ! अथरतियां,

उठि चलि वेगि लाल गिरिधर पें, यह लै पिउ की पतियां ॥

सुनि मृदु वचन भई अति आतुर धर-धर करै री छतियां ।

‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर की मानि लई सब बतियॉ ॥

२९०

मन वच थकित, करों केसी री !

छिनु-छिनु पांइ लागति नांहिन मानति तूं अति, मानां पाट बैसी री

मुख उ नहिं देखिहि किनि सुंदरि ! चंद्रकला नभ में पैसी री ।

कुंज-भवन के द्वारें उलकति भीतरि जाति नहिं भाँति तैसी री ! ॥

मोहन नागर तुव पथ चितवत कितनी जानि आरति ऐसी री ।

‘कुंभनदास’ गिरिधरन भेंटि प्यारी, भाँवति मोहि वात ऐसी री ॥

२९१

[ नट ]

राधे ! तै मान मदन—गढ कियो ।

वाकौ कोट ओट घूंघट की ताहिनै जात लियो ॥

पठए बसीठ दूत दूतनि—मिलि तिनि कछु ऊतर न दिगो ।  
'कुंभनदास' प्रभु छूवत मिलवत अधर—सुधा—रस पियो ॥

२९२

[ कान्तरी ]

लै राधे ! गिरिधर दै पठई अपने सुंदर मुख की वीरी ।  
सुनहु संदेसौ प्रान—प्यारे कौ किंत सकुचति आवै किनि नियरी ?॥  
घूंघट खोलि नैन—भरि देखहु बांचि लेहु प्रीतम की चियरी ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन—धर मिलि आखें छतियां करि सियरी ॥

२९३

( रामकली )

सखी री ! सौने सीतल लाग्यौ ।

मिलि रस रुचिर प्रेम आतुर व्है, चारि जाम पिय जाग्यौ ॥  
करि मनुहारि वहरि हाँ पठई अधर—सुधारस लाग्यौ ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन—धर तेरे प्रेम—रस पाग्यौ ॥

## परस्पर—सम्मिलन—

२९४

[ आसावरी ]

मदनगोपाल—मिलन कों राधे ! धौस कुंज—बन बनि चली कामिनि  
सकल सिंगार विचित्र विराजित नवसिख—अंग अनूप अभिरामिनि ॥  
जोबन नवल ठौनि, कटि केहरि, कदलि जंघ जुगल गज—गामिनि ।  
चकई बिछुरि, कमल पुट दीनों कियो है उयोत ससी भई जामिनि ॥  
ठाढी जाइ निकट पिय कें भई, लई कर पकरि सेज पर भामिनि ।  
'कुंभनदास' लाल गिरिधर के 'लागि सोहै जैसे—घन—मँह दामिनि ॥

२९५

मोहनराइ लीनी लाइ छतियां ।

चंचल चंचल मृगनैनी राधे बोली मधुर सब बतियां ॥  
नवसिख-रूप अनूप विराजित ए सब रस की गतियां ।  
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर वस कीन्हे जमुना-पुलिन सरद की रतियां ॥

२९६

( नट-नारायण )

जान न देहों प्यारे ! काहू के भवन ।

गिरिधर पिय ! अब पर-पनु देखों  
राजीउ कहावत हो ? बहुरूपनी-रमन !

जोहो हैं बची, डोली तुम तोहीं  
अपवल भए अब हिं जानों जो— करहु गवन ।  
'कुंभनदास' प्रभु इतनी कही जो मोसों—  
अकसि करि सके सो है ऐसी कवन ? ॥

२९७

( ईमन )

ऐसी को मन भाई ?

बनि-ठनि कहाँ कों चले सांवरे ! ऐसे कुंवर कन्हाई ॥  
मुख देखत जैसे दूज कौं चंदा छिपि-छिपि देत दिखाई ॥  
चले जाउ नेकु ठाड़ेइ रहोगे किनि ? ऐसी सीख सिखाई ।  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर निकसि जाइ ठकुराई ॥

२९८

आजु आँजी आछी अँखियां सारंगनैनी मान सों ।  
लगति मनों गज-बेलि की गांसी सानि धरी खरसान सों ॥  
ओर कोर चलि जाति स्यामता तकति तरुणि नैन-बान सों ॥  
स्यामसुभग तन धात जनावति प्रगटत अधिक उनमान सों ॥  
घूंघट में मनमथ कौं पारधी तिलकु भाल, भूकुठी कमान सों ।  
'कुंभनदास' सजि सुरतिलरन चली गिरिधर रसिक सुजान सों ॥

## शयन—

२९९

[ केदरों ]

वे देखि वरत झरोखें दीपकु हरि पौढे ऊंची चित्रसारी।  
 सुंदर बदन निहारन—कारन राख्यौ है बहुत जतन करि प्यारी ॥  
 कंठ लगाइ, भुज दै सिरहानें, अधर—अमृत पीवति सकुमारी।  
 तन<sup>१</sup>—मन मिली प्रान-प्यारे सों नव<sup>२</sup> रंग-रस बाढ़यौ अतिभारी ॥  
 कुंभनदास दंपति<sup>३</sup> सौभग—सीधां जोरी अद्भुत बनी इकसारी।  
 नवनागरी मनोहर राधे, नव नागर गोवर्द्धन-धारी ॥

३००

पौढे हैं दोऊ पिय प्यारी।

मंद सुरंध पवन जहां परसत तैसिये राजति निसि उजयारी ॥  
 विविध भाँति फूलनि की सिज्जा सुख-विलास बाढ़यौ अतिभारी।  
 तैसिये मिलि रही नव कुंजे तन पहिरे नव तनसुख—सारी ॥  
 कंठ मेलि भुज, केलि करत हैं ज्यों दामिनि घन होत न न्यारी।  
 ‘कुंभनदास’ गोवर्द्धन-धारी सुख-सागर उपज्यौ रंग भारी ॥

३०१

[ केदरों ]

राधा के सँग पौढे कुंज—सदन में सहचरी सबै मिलि द्वारें ठाढ़ी।  
 नदनंदन कुंवर दृष्टभान—तनया सों करत केलि में जु रुचि बाढ़ी॥

पिया—अंग—अंग सों लपटाई स्यामघन,

पिय—अंग—अंग सों लपटाई स्यामा ॥

दोउ कर सों कर परसि उरोज अति—  
 प्रेम सों कियो चुंबन अभिरामा ॥लाल गिरिधरन कों कंठ लागि पुनि,  
 बहुत भाँति करि केलि, निसि सुख दीनों ॥‘दास कुंभन’ प्रभु प्रात घन—कुंज ते,  
 प्यारी—कंठ भुज मेलि गवन कीनों ॥

१ हिलि मिलि रही प्रान (ब. ११११८९) २ नौतन छवि बाढ़ी (ब. ११११८९)

३ कुंभनदास प्रभु (११११८९)

४ नवल लाल

३०२

पौंडे राधिका के संग ।

रंगमहल की ललित तिवारी परदा परे सुरंग ॥  
जगमगातं नव भूषन, रतन जटित वहु अंग ।  
'कुंभनदास' प्रधु गोवर्द्धन-धर मोहत कोटि अनंग ॥

३०३

रिमि-शिमि रिमि-शिमि बरसत मेह ।  
अहो लाल ! कैसे आऊं ऊंची चित्रसारी ॥  
उमडि-घुमडि आए बादर चहुं दिसि तें,  
लै चलि हो इहां भींजे मेरी सारी ॥  
उठिके लाल पीतांबर ढाँप्यो लैगए तहां, जहां गोख--तिवारी ।  
'कुंभनदास' पौंडे रंगमहल में दोउ मिलि रति-सुख विलसत भारी ॥

## सुरतान्त —

३०४

( बिलाबल-इकताल )

काहे बांधति नाहिन छूटे केस ?

ससिशुख पर धन-धार वाढी कछुक जु चली मानों उर-देस ॥  
अंग-अंग और इहै सोभा कहा कहों ? निसा जागी, आई औरहि वेस ।  
'कुंभनदास' अतिचौंपै तें चौंप भई गोवर्द्धनधर मिले ब्रज<sup>१</sup>-जुवति-नरेस ॥

३०५

[ बिलाबल-जातीताल ]

मोतिनि मांग विथुरी ससिशुख पर,  
मानहुँ नछित्र आए करन पुजा  
अंचल फरहरात उर पर बांधी काम-धुजा ॥

विरह राहु तें छूटें सकल कला  
विमल भई देखत सुखुजा ।

१ ओप (क)

२ ब्रज-जुवनरेस (ख)

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर  
अधर-सुधा रस कियो पानु कंठ मेलि उदार सुजा ॥

३०६

[ विलावल-जतिताल ]

रसमसे नैना तेरे निसि के उमीदे ।

काहे कों दुरति<sup>१</sup> उलटि बात प्रातहीं जु धुनीदे ॥  
बदन आलस में आलस की ज़माई बोलति अलसांइ बचन छीदे<sup>२</sup> ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर मिले तोहिं सकल अंग में बीदे ॥

३०७

(विलावल-जतिताल)

तूं तो आलस-भरी देखियति सखी री !

रजनी चोरतातें आंखि न लागी अरु अकेली, भामिनि ! कुंज वसी ॥  
घर-विरुद्ध तैं रुसी काहू जानी नव वन कों दिन गतहिं नसी ।

‘कुंभनदास’ गिरिधर के कंठ की इह जानति हाँ  
तो तौ निरि पांइ मोतिनि-माल खसी ॥

३०८

( विलावल )

आजु व देखियत बदन डहड़हो प्यारी ! रगमगे नैनां तेरे रंग-भरे ।  
मानहुं सरद-कमल-ऊपर उन्मद जुगल खंजन लरे ॥  
रसिक-सिरोमनि लाल सु सीतल सुखद कमल कर उर धरे ।  
‘कुंभनदास’ काहे न फूलै ? गिरिधर पिय सब दुःख हरे ॥

३०९

[ विलावल ]

काहे तैं आजु विथुरी प्यारी ! क्यों री<sup>३</sup> न बांधहि अलक ।  
भौंह कपान, नैन रतनारे मानु<sup>४</sup> न लागी पलक ॥  
रति-रस-सुख की फूल जनावति मद<sup>५</sup> गयंद की चाल मलक ।  
‘कुंभनदास’ मिली गिरिधर का मानों कोटि चंद झलक<sup>६</sup> ॥

<sup>१</sup> दुरति जु (क)    <sup>२</sup> छाव दे (क)

<sup>३</sup> क्यों न (क)    <sup>४</sup> सानु (ख)

<sup>५</sup> मत्त (क)    <sup>६</sup> श्लक (क)

३१०

[ विलावल—इकताल ]

जानी मैं<sup>१</sup> री ! आजु तू मिली प्यारे सों  
 तें अपनों भाँवती हैरी माई ! कियो ।  
 सकल रथनि रति — रस<sup>२</sup> रंग खेलत  
 पलक सों पलक लागन न दियो ॥  
 कंठ लागि दै भुजा सिरहाते<sup>३</sup> रसिकलाल कौ अधर-सुधा रस पियो ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिवर-धर कों आँको भरि भेटि जुडायो हियो ॥

३११

[ कानरौ ]

तें (तौ) लाल विलगु करि पायो ।

विविध भाँति संग खेलि सखी ! तें कियो आपुनो भायो ॥  
 रसिकराइ सिर-मौर नंद-सुत हिलि-मिलि रंगु बढायो ।  
 सुरत-सुधा निधि<sup>४</sup> अपनें बस करि जाइ निकुंज बसायो ॥  
 तू रावे ! बडभाग उदित जिनि त्रिभुवन — पति अरुज्जायो ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर हँसि-हँसि<sup>५</sup> कंठ लगायो ॥

३१२

[ केदारौ ]

डगमगि चालि आजु कछु औरहि बंदसि माई री ! रही है बैनी छूटि ।  
 अधर निरंग अरु नख लागे उर पर, मणजी चोली मोतीलर गई टूटि ॥  
 अंचल पीक तेरें लागी है री, जहाँ-तहाँ सैननि सखी सकल करैं कूटि ।  
 ‘कुंभनदास’ सौरभ भरी<sup>६</sup> जोबन-धन गिरिवर<sup>७</sup>—धरन लालन लई छूटि ॥

३१३

[ केदारो ]

मिलेकी फूल नैनाई कहें देत तेरे ।

स्यामसुंदर मुख — चुंबन परसे नांचत मुदित अनेरे ॥

नंद—नंदन पें गयो चाहत है मारग श्रवननु धेरे ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर—रसभरे करत चहूं दिसि फेरे ॥

<sup>१</sup> मैं आजु (क)      <sup>२</sup> ही माई (क)      <sup>३</sup> सुरंग (ख)      <sup>४</sup> खिरांहने (क)

<sup>५</sup> रस (क)      <sup>६</sup> हरि (ख)      <sup>७</sup> सुधरि धरी (क)      <sup>८</sup> धरन लालनु (क)

३१४

[ केदारौ - अठताल ]

माई ! तेरे फूलिये को न्याउ ।

गिरिधर लाल सकल अँग परसे, तारें तन-मन चाउ  
सुंदर स्याम बिलगु करि पाए सघन निकुंज परि गंयो सखि ! दाउ ।  
'कुंभनदास' प्रभु आनंद-सागर नंद-कुमार रसिक-राउ ॥

३१५

[ केदारौ जतिताल ]

तेरौ भांवतो भयो री ! काहे ना फूलै ।

गिरिधर लाल मनायो मान्यों कंठ लाइ  
कियो अधर-पान आई मेटि विरह-सूलै ॥

विविध बिहार विविध रस पिय-संग

सुरत करति कालिंदी-कूले ।

'कुंभनदास' आनंद-भरी लागतु नांहि न पांउ,  
नंद-नंदन भेटे रस-मूलै ॥

३१६

(लछित)

आजु कौन अँग ते ब्रज-सुंदरि ! रसिक गोपाल हिं भाई ।  
सकल सिंगारू साजि मृगननी एसे ई भले वेणि चलि आई ॥  
लहँगा लाल, झमकी सारी कस्तुभी वरन पिय-हेत रंगाई ।  
नयन रसमसे आलस जुत सब अँग-अँग प्रति वहु छवि छाई ॥

.....  
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर अपने जानि हँसि कंठ लगाई ॥

३१७

[ विभास ]

आजु तेरी चूनरि अधिक बनी ।

बार-बार जु सराहत मोहन राधाजू परम गुनी ॥

अंजन नैन, तिलकु, सेंदुर छवि, चोली चारु तनी ।

'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों रति रस-रंग सनी ॥

३१८

( विलावल )

\* सोइ उठी वृषभान- किशोरी ।

अलसानी अँगराइ मौरि तनु ठाढ़ी उलटि उभय भुज जोरी ॥  
 तव कर-बीच बदन यों राजत मोहै मोहन प्रीति न थोरी ।  
 नाल-सहित मानों सरोज-जुग मधि बंध्यो इंदु गरब गहोरी ॥  
 तिहिं छिनु कछुक उरज ऊंचे भए सोभित सुभग कहें कवि को री !  
 मानों द्वै कमल सहाइ सहित, अलि उठे कोपि मन संक न जोरी ॥  
 तापर लोचन चारु, मनोहर अरुन-कोर त्रिभुवन-छवि चोरी ।  
 'कुंभनदास' इंदीवर-विवि जनु विरचित सरस देखि एकोरी ॥

३१९

( सारंग )

डोलति फूली-सी तूं कहा री !।

मृगनैनी देखियत है आजु मुखचंद उहड़ब्बो भारी ॥  
 कंचुकी पीत, लाल लहंगा पर बनी रगमगी सारी ।  
 नूपुर रुनझुनात, कटि मेखल, मलहकनि चाल निन्यारी ॥  
 काजर तिलकु दियो नीकी विधि रुचि-रुचि मांग सँवारी ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर सों नयो रंग जानी बात तिहारी ?॥

३२०

[ विहारो ]

तेरे सिर कुसुम विथुरि रहे भामिनि !

सोभादेत मानों नभ निसि-तारे ॥

स्याम अलक छुटि रही री ! बदन पर  
 चंद छिप्यो मानों- बादर कारे ॥

मुक्ता-माल मानों मानसरोवर, कुच चकवा दोउ न्यारे ।

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर बस कीन्हें नंदलाल पियारे ॥

\* यह पद सं. ७७ परि. (१) वे सूरसागर में पाठमेद से छ्या हैं। सूरक्षत हांने में सम्पादक को अर्ध सन्देह है। स. भ. वंध ३।।४।।८ में कुंभनदास कृत है।

## खण्डिता (वज्ज्वता)

३२१

[विभास]

सांझ जु आवन कहि गए लाल ! भोरु भएं देखे ।  
 गनत नछित्र नैन अकुलाने, चारि पहर मानों चारयों जुग विसेखे ॥  
 कीनी भली जु चिन्ह मिटाए, अधर निरंग अरु उर नख-रेखे ।  
 'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि गिरिधर ! तुम्हारे कैसे लेखे ? ॥

३२२

[विभास]

लालन<sup>१</sup> ! इतनि बार जो-तुम कहां रहे ?  
 सगरि रैनि पथु चांहत-चांहत नैन दहे ॥  
 'कुंभनदास' प्रभु भए ताहि वस जिनि व गहे ? ।  
 गिरिधर पिय ! भले बोल निवाहे संध्या जु कहे ॥

३२३

[विभास]

निसि के उनींदे मोहन नैन रसमसे ।  
 कहा के लजांत कहहु धों लालन ! कहां बसे ?  
 डगत<sup>२</sup> चलत, आलस जंभात हो, बंदन रेख देखियत वसन खसे ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर ! तुम भुज-बंधन उरहि लाइ कसे ॥

३२४

[बिलावल]

कहो धों कहां तुम रैनि गैवाई ? लाल ! अरुन उदय आए ।  
 कौन सँकोच घनस्याम सुंदर ! तमचुर बोलत उठि धाए ॥  
 ऊखि देखि कहा साखि बूझिये ? रति के चिन्ह तन प्रगट लाए ।  
 'कुंभनदास' प्रभु (सु)जान गिरिधर काहे कों दुरत पिय ! जानि पाए ॥

३२५

[बिलावल]

कहो धों आजु कहां वसे लाल ! भोरु भएं आए डगमगात पग ।  
 खरे सत्तारे क्यों उठे ? मोहन ! बोलत तमचुर<sup>३</sup> खग ॥

<sup>१</sup> इतनि बार लों (क) <sup>२</sup> झुगत (क) <sup>३</sup> तमचुर वर खग (क)

काजर अधर, लटपटी पाग, उर विलुलित कुमुममाल कुच-परसग ।  
 अरुन नैन, आलस जंभात पिय ! रैनि कियो जा ? ॥  
 रति के चिन्ह प्रगट देखियत काहे कों दुराव करत स्याम ! सुमग ।  
 'कुंभनदास' रसिक गिरिधर परे चतुर नागरि-फग ॥

३२६

[ बिलावल ]

\* तुम्हारे पूजिये पिय ! पांड,  
 कैसी-कैसी उपजति तुम पहिं कहत बनाइ-बनाइ ॥  
 अरुन अधर क्यों स्याम भए ? ए क्यों परे पट पलटाइ ।  
 क्यों रचे कपोल पीक, कहां पायों उर जय-पत्र लिखाइ ॥  
 गिरिधर लाल जहां निसि जागे, तहीं देहु सुख जाइ ।  
 'कुंभनदास' प्रभु छांडो अटपटी अब हि व को पतिआइ ? ॥

३२७

[ बिलावल ]

ऐसी बातनि लालनु ! क्यों मन मानें ?  
 ऊरु बनाइ-बनाइ तासों कहिवे जो इह न जानें ॥  
 रति के चिन्ह सब प्रगट देखियत कैसें दुरत दुरानें ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! तुम हौ भले सयानें ? ॥

३२८

[ बिलावल ]

सांझ के सांचे बोल तुम्हारे ।  
 रजनी अनत जागि नँद-नंदन ! आए हौ निपट सवारे ॥  
 आतुर भए नील पट ओढे, पीरे बसन विसारे ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! भले वचन प्रतिपारे ? ॥

३२९

[ ललित ]

आजु निसि जागे अनुरागे पागे कौन रंग रंगे हौ ? लाल !  
 अरुन नैन, अरु माल मरगजी देखियत, सिथिल गति अरु चाल ॥

१ नागर (ख) \* यह पद स ३२९६ पर सूक्ष्मागर में कुछ परिवर्तन से छपा है— पर 'क'  
 'ख' प्रति में होने से कुंभनदास कृत है।

कहा कहों छवि कहत न आवै अँग-अँग बोलत आल-बाल ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर पिय ! भले जु कहा किये हाल ? ॥

३३०

( विभास )

कौन के भवन नीकें रैनि बसे हौ ?  
 जिनि सकुचो पिय ! ऊंचे बयों न चाहिए ॥  
 आई जु, आइए मेरें भले पांउ धारिए,  
 पलकनि मग झारों भागि जगाइए ॥  
 रँगमगे पेंचनि खुलि रही अलके  
 खसत पीत पट अँग हुं सँचारिए ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर की कहों जो-  
 कहों लों निरखि-निरखि छवि अति सुख पाइए ॥

३३१

[ बिलावल ]

काहे मोहन ! बोलत नाहिने ? हम तें कहा लजाने ? ।  
 वाही बगर तें आवत देखे मैं जीए जब ही जाने ? ॥  
 करनफूल भुज-मूलनि सोभित कंकन-बलय चिन्ह पहिचाने ? ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर के ढँग मोतें कहा अजाने ? ॥

३३२

[ रामकली ]

स्याम सुंदर ! रैनि कहां जागे ?

देखियतु विन-घुन माल, अधर अंजन,  
 भाल जावक लग्यौ, गाल पीक पागे ।  
 चाल डगमगी, अति सिथिल अँग-अँग सब,  
 तोतरे बोल, उर नखनि दागे ।  
 गड्यौ कंकन पींढि, निपट विहवल दीठि,  
 सर्वरी लाल ! नहिं पलक लागे ॥

कहिए सॉची वात, काहे जिय सकुचात ? कौन त्रिय जाके अनुराग-रागे ।  
 ‘दास-कुंभन’ लाल गिरिधरन एते पर करत झूठी सौंह मेरे आगे ॥

३३३

[ ललित ]

सिसकि-सिसकि रही अपने भवन में चार मास कौंकियो है विहारि ।  
 नंद-सुवन वृजराज सांवरो मोह्यौ परम चतुर व्रज-नारि ॥  
 कब आवेगें मेरे गृह में ? विधना सों पागों अँचरा पसारि ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! जाड्यौ चल्यौ दोऊ कर ज्ञारि ॥

## विरह [ द्वितीय अवस्था ]—

३३४

[ धनासिरी-जतिताल ]

कब हौं देखि हौं भरि नैननु ।  
 सुंदर स्याम मनोहर इह अँग-अँग सकल सुख दैननु ॥  
 बृदावन-विहार दिन-दिन प्रति गोप-बृंद संग लैननु ।  
 हँसि-हँसि हरखियै वोवा पीवनु बांटि-बांटि पय फैननु ॥  
 'कुंभनदास' किते दिन बीते किये रैनि-सुख सैननु ।  
 अब गिरिधर-बिनु निसि अरु बासर मन न रहत क्यों हूँ चैननु ॥

३३५

[ धनासिरी-इकताल ]

अब दिन-राति पहार-से भए ।  
 तब तें निघटत नांहिन जब तें हरि मधुपुरी गए ॥  
 इह जानियति<sup>३</sup> विधाता जुग-सम कीने जामु नए ।  
 जागत जात, विहात न क्योंही एसे मीत ठए ॥  
 व्रजवासी सब परम दीन् अति व्याकुल सोचु लए ।  
 जनु बिनु-प्रान<sup>१</sup>, दुखित जलरह-गन दारुन हेम हए ॥  
 'कुंभनदास' विछुरि नंद-नंदन बहु संतापु दए ।  
 अब गिरिधर-बिनु रहत निरंतर लोचन नीर छए ॥

<sup>१</sup> हरखित पान खवावनि (प्रचलित) हरखित पानखेनि (क) हरखि पतौआ (अष्ट छाप वार्ता)

<sup>२</sup> क्यों चैननु (ख)      <sup>३</sup> जानियत (क)      <sup>४</sup> ज्योंबिनु-प्रान (क)

३३६

[ आसावरी ]

विरह-वान की चोट जु जाहिं लागै सोई जानें ।

भोगइये ते समुझ परै जिय कहैं कहा मानें ? ॥

जैसें कांड सु 'बधिक चनकटि होत हैं विखु-सानें ।

मरमत नख-सिख अंग ततछिनु थोरे हू तानें ॥

होत न चैनु निमिख निसि-वासर बहुत जतन आनें ।

'कुंभनदास' लाल गिरिधर-विनु विथा कौन भानें ॥

३३७

[ सारंग-अट्टाल ]

किते दिन वहै<sup>२</sup> गए विनु-देखें ।

तरुन किसोर रसिक नंद-नंद्जु कठुक उठति मुख रेखें ॥

उवहै<sup>३</sup> चितवनि उवह हास मनोहर उवहै<sup>४</sup> बानिक नट-भेखें ।

उवह सौभग उह कांति बदन की कोटिक चंद-विसेखें ॥

स्याम सुंदर-संग<sup>५</sup> मिलि खेलन की आवति जियआ पेखें<sup>६</sup> ।

'कुंभनदास' लाल गिरिधर-विनु जीवन जनम अरुखें ॥

३३८

[ सारंग ]

जब तें विनुरे ललना तब तें मेरी नींदौ गई ।

कब हूं ए आंखि भूलि हूं न लागै जुग-समान अब मोकों राति भई ॥

हार, सिंगार, विहार उधीठे सदा सोच रहै जिय निमिख न घटई ।

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्यारे के विरह सूखि जरद भई दिन पीर नई ॥

३३९

[ सारंग-इकताल ]

ते दिन विसरि गए जब हरि लेते उछंग ।

बेनु-व्याज बोली अधरातिनु चढि गिरि-सिखि सृंग उतंग ॥

वेनी गूंथि विविध कुसुमावलि सुहथ सँवारत मंग ।

केतौ सुख लागतौ परस्पर देखि-देखि सब अंग ॥

<sup>१</sup> बधिक - चुनकटि (क) <sup>२</sup> वहै जु गए (प्रचलित) <sup>३</sup> उजह (क) <sup>४</sup> वह नटवर वपु-भेखें (क)

<sup>५</sup> सों (क)

<sup>६</sup> जिए अमेखें (क)

ए वातें कहियो न्यारे व्है जब कोउ होइ न संग ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर ! ए व तुम्हारे रंग ॥

३४०

( सारंग )

बीते<sup>१</sup> हो माधौ ! एते दिनां ।

कितीक दूरि गोकुल अरु मथुरा किधों पहिचान्यों ही किनां ॥  
कवहूँ इतनों<sup>२</sup> सदेश न पाती, सुरत्यौ विसारी तोरचौ प्रीति-तिनां ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर - विनु अब बीततु कलप छिनां ॥

३४१

[ गौरी ]

तुम्हारे मिलन-विनु दुखित गोपाल !  
अति आतुर<sup>३</sup> ब्रज-सुन्दरि प्यारे ! विरह विहाल ॥  
सीतल चंद्र तपनु भयो दहतु किरननि  
कमल-पत्र<sup>४</sup> जनु-गरल-व्याल ॥  
चंदन कुसुम सुहाइ न वाढी तन-ज्वाल ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु नव घनस्थाम ! तुम-विनु-  
कनक - लता सूखी मानों ग्रीष्म काल ॥  
अधर-अमृत सींचि लेहु गिरिधरन लाल ! ॥

३४२

[ मलार ]

घटा घनघोर उठी अति कारी ।

मुरछि परी गिरी घरनी पर विकल भई ब्रज-नारी ॥  
कूक महूक दामिनी कोंधति घेरि विरहिनी जारी ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु राखि लेहु किनि ‘सुख-निधान गिरिधारी ! ॥

३४३

( नट-नारायण )

कारी निसि मे दामिनि कोंधति ।

हरि समीप-विनु सूनी सेज अकेले हौं माई ? डरपति चोंधति ॥

१ हो जीते हौं (ख) २ इतौ (क) ३ आतुर कुलवधू ब्रजसुन्दरी (क)

४ कमलपत्र जलपत्र जनु (ख)

ज्यों-ज्यों व सुरति होति प्रीतम की, नैननि दरत जल ज्यों गगरी ओंधति ।  
‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर-बिनु अब नांद गई, छिनु-छिनु छतियां रोंधति ॥

३४४

[नटनारायण]

पीउ आए नांही सखी री ! जागत ही मोरों जान<sup>१</sup> निसा ।  
चात्यों जाम रही बैठि नैन अकुलाने जोवत दसहुं दिसा ॥

तेरे भरोसे हौं रही नां जानों तूं गई<sup>२</sup> गिरिधर<sup>३</sup>लालन पे  
किधों कियो मोसों एसें हि मिसा  
‘कुंभनदास’ प्रभु-बिनु<sup>४</sup> मेरी आली !  
लागी ज्यों चातक घन की तिसा ॥

३४५

[नटनाराइन]

\* नैन घन रहत न एक घरी ।

क्यों हूं न घटति सदा पावस ब्रज लागिय रहति झरी ॥  
विरह इंद्र वरखावत निसि-दिनु है अति अधिक करी ।  
उर्द्ध स्वास समीर तेज जल उर भूमि उमगि भरी ॥  
बूढति भुजा रोम अंबर द्रुम अँस कुच उचमि थरी<sup>५</sup> ।  
चलि न सकत पग, रहे पथिक थकि चंदन-कीच खरी ॥  
सब रितु मिटी भई अब एकै, वह विधि उलटि परी ॥  
‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर-बिनु नीति मरजाद ठरी ॥

३४६

[मलार]

आए माई ! वरिखा के अगिवानी ।

दादुर, मोर, पपीहा बोलत कुंजनि सुनिए<sup>६</sup>, बग-पंगति उडानी ॥  
घन की गरज सुनिके कैसे जीऊं माई ! कारे बादर देखि सयानी ॥  
‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल सवै सुख-दानी ॥

१ गई (क) २ गई ही (क) ३ ...धरनलाल पे (क) ४ बिनु आली (क)  
५ उच्च थरी (क) ६ ...ए दीसें (क)

\* यह पद सं. ४७३२ पर सूरसागर में छग है पर क. ख. प्रति में हांने  
से कुंभनदास कृत ही है ।

३४७

[ मलार ]

वरिखा कौ आगमु भयो री ! चातक, मोर बोलत दुहुं<sup>१</sup> दिसा ।  
 उने उने उठत कारे बादर सुहाए रु  
 तामें बग उडत समूह निकुर<sup>२</sup> रलाई दिन सारसा ॥  
 हरि-समीपु विनां कैसे भरों ए दिन,  
 दादुर की रटनि नींद न परै निसा ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर माई ! अजहुं न चितु कियो  
 इतकों, बिछुरनु परचौ मेरे हिसा ॥

३४८

[ मलार ]

हौं जगाई री माई ! बोलि-बोलि के इनि मोरा ।  
 वरखत बूंद अँध्यारी चौमासे की कैसे भरों पारथौ है वीचु नंदकिसोरा ॥  
 सेज अकेली डरों दामिनि कोंधति बोधति घन गरजत चोहूं ओरा ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर मोहि मिलाईरी ! जैसे व लागी रहों कोरा ॥

३४९

[ केदारों ]

उलरें<sup>३</sup> बादर चहूं दिसा तें ।  
 गिरिधर पिय-विनु सेज अकेली डरपति हों<sup>४</sup> निसा तें ॥  
 इहै गितु औरु बिछुरनों ऐसौ लिख्यो<sup>५</sup> विधाता कौन रिसा तें ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर-विना ए तपत नैन दरसन-तिसा तें<sup>६</sup> ॥

३५०

[ केदारों ]

आगम सांचनु क्यों भरिये ?

चातक, पिक, मोर बोलत सुनि-सुनि, श्रवननु जरिये ॥

चहुं दिसि उठत पहार-से बादर स्याम सुवरन

सु देखि-देखि धीरजु कैसे व धरिगे ॥

'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ आली ! मिलनु होइ सो करिये ॥

१ दहुं (ख) २ निकुवर लाई (क) ३ मिलाई करि (क) ४ गरजि उठे  
 बादर (वं. २७/४) ५ डरपति (ख) ६ भाग मेरे लिखे (ख)

३५१

[ कानरौ ]

चाहत—चाहत मारगु अब इह आयो है सावनु ।  
 अवधि गएँ किते दिन बीते अजहुं न भयो<sup>१</sup> आवनु ॥  
 क्यों सहों घन की गरज और चातक कौ पीउ-पीउ सुनावनु ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कब<sup>२</sup> देखों मन-भावनु ॥

३५२

( कानरौ )

हरि समीप-बिनु कैसे भरों ।  
 सांवनु आयो हरियारो,

ज्यों-ज्यों अंधियारी निसि दामिनि चगकै माई !  
 अरु घन गरजत त्योंव जिय डरों ॥

चहुं दिसि उठत जु बादर कारे देखि—देखि नैननु क्यों जिय धीर धरों ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर के विश्व क्योंहू न परै कल, हौं कहा करों ? ॥

३५३

[ केदारौ ]

माई ! कछु न सुहाइ मोहिं, मोर-बचन सुनि बन में लागे सोर करन ।  
 स्याम-घटा पंगति बगुलानि की देखि—देखि लागी नैन भरन ॥  
 गरजत गगन, दामिनी कांधति निसि अंधियारी, लाग्यौ जीउ डरन ।  
 नींद न परै चोंकि-चोंकि जागति सूती सेज, गोपाल घर न ॥  
 चंदन, चंद, पवन, कुमुमावलि भए विष-सम, लागी देह जरन ॥  
 'कुंभनदास' प्रभु कवहि मिलहिंगे गिरिवर-धर दुख काम-हरन ॥

३५४

[ केदारौ ]

निसि अंधियारी दामिनि डरपावति मोहों चमकि-चमकि ।  
 सघन बूंद परति माई री ? अरु चहुं दिसि घन गरजै धमकि-धमकि ॥

बिनु हरि-समीपु भवन भयानकु अकेले—  
 आखि न लागी चोंकि-चोंकि परों हमकि-हमकि ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर रसिकवरलाल,  
कव मिलि हैं? लागि हृदै रमकि-रमकि ॥

३५५

( केदरौं )

आयो हो! वरसि वादर कालौ ।

आवन निकट कक्षी गोपीनाथ, अजहुं न आए,  
ना जानों कवन दिन कियो चालौ ॥

घन गरजत, चातक मोर, बोलत सुनि-सुनि श्रवननि सुहाइ न कछु  
देखत ही पंथ जाइ भोर तें निसा लौं ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गिरिधर पिय-बिनु  
कहि क्यों मोपे रहौ परै? इह सब व्रज लागत ठालौ ॥

३५६

[ केदरौं-अठताल ]

औरनि कों व समीप, बिछुरनों आयो हो<sup>१</sup> मेरे हिसा ।

सब कोउ सोवै सुख आपुने आलि! मोक्षों चाहत जाई चोंहू दिसा ॥  
नां जानों या विधाता की गति? मेरे आँक लिखे एसे भाग सु कौन रिसा ।

‘कुंभनदास’ प्रभु ‘गिरिधर’ कहत-कहत

निसि-दिन रही रटि ज्यों चातक घन की तिसा ॥

३५७

[ केदरौं-अठताल ]

बिछुरनों इहै व किनि कियो?

यातें बुरी पीर और नांहि न जरत भस्म होत हियो ॥

पलु-पलु जुग-सम जाइ क्यों हू न परै जियो ।

‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल

घोष तें गवने तन-मन आन-संग लियो ॥

३५८

[ केदरौं-अठताल ]

जा दिन तें हरि बिछुरे, भूलि हू न नींद परै ।

धनि ते जुवति जे सपनें हूं पिय कों देखति, सोई छिनु विरह टरै ॥

चंदन, चंद-किरन पावक-सम नित प्रति हृदौ जरै ।  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर-बिनु को तनु-ताप हरै ? ॥

३५९

[ केदारै ]

गोविंद बृंदावन की साध ।

देखन कों उह भूमि मनोहर लोचन तपत<sup>१</sup> अगाध  
 कहहु व इह कैसे भावतु है थार-सिन्धु कौ वास ।  
 वह सुख कहाँ राधिका-वल्लभ ! कालिदी के पास ॥  
 एक बार चलिए पाँ लागत ब्रजवासी सब लोग ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल बिना सब सोग ॥

३६०

[ विलावल ]

सुनहु गोपाल ! एक<sup>२</sup> ब्रजसुन्दरि तुमहि मिलनकों बहुत करति ।  
 वार-वार मोसों कहत रहति है वाके जिय में बहुत अरति ॥  
 तुमहि जपत रहति निसिवासर और वात कछु जिय न धरति ।  
 स्याम सरीर चिहुंटि चित लाग्यौ लोकलाज तें नांहिन डरति ॥  
 होत न चैनु वाहि एकौ छिनु अति आतुर चित बिरह भरति ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर ! तुव-कारन नव जोवन गरति ॥

३६१

[ गौरे ]

चितवत नें कु कहा वहै जात ?

अब मोहन एसौ मन कीन्हों चंचल चपल-दल कैसौ पात ॥  
 जबलगि मुख देखों तबलगि सुख, देखिवें कों अकुलात ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु रीझि बिमन भए देखत वहै जु गयो गलि गात ॥

३६२

कहिये कहा कहिवे की होइ ।  
 प्राननाथ-बिछुरन की वेदन जानत नाहिं न कोइ \* ॥



### इति लीला-पद

<sup>१</sup> तृपत (क)    <sup>२</sup> एक मोहनि ब्रज ० (व. १९/७)    \* यह पद पूर्ण प्राप्त नहीं हुआ ।

# प्रकर्ण



## आवना—

३६३

( हमीर )

\* दरकि रहौ सीस दुमालौ मोहन ।  
 कटि सूथन कसि पियरो पडुका,  
 उर मनि-कांति अति सोहन ॥  
 गोविंद गाँइ चराइ ल आवत,  
 मन वासि रही मुसक्याहन ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर  
 कोटिक मन्मथ-मोहन ॥

३६४

[ हमीर ]

\* आजु उर चंदन-लेप किये ।  
 कटि पर आडबंद हू चंदनी, सीस पर पगा छिये ॥  
 गो-धन सँग आवत मनमोहन वांहि सखा के कंठ दिये ।  
 'कुंभनदास' प्रभु वदन सुधानिधि, निरखत नेन पिये ॥

३६५

[ हमीर ]

\* सुंदर अति जसुमति कौ छगन मगननियौ ।

बुंदावन मे गाँइ चरावत बलदाऊ और कन्हइयौ ॥  
 फेटा सीस दोउ भैयनिके, कटि परधनी सोहत चंदनियौ ।  
 चिरजिओ दोउ होटनि की जोरी 'कुंभनदास' उर-मनियौ ॥

\* इन पदों के कुंभनदास कृत होने में सन्देह है । यह एकाध ही अर्वाचीन प्रति मे मिलते हैं । अमुक गृणार-वर्णन के लिये इनकी रचना की गई है । इनका शीर्षक भी 'भोग मे दुमाला' कौं कीतन, पगा, फेटा, आडबंद कौं कीतन' इस प्रकार मिलाता है जो अप्रामाणिक है । अन्य पदों की तुकों का संमिश्रण भी इसी बात को पुष्ट करता है ।

३६६

( हमीर )

\* गिरिधर आवत गांडनि पाछें ।

सीस मुकुट, कुंडल की लटकनि, कटि पर काछनी काछें ॥  
 चंदन चरतित नील कलेवर, वेनु बजावत आछें ।  
 'कुंभनदास' प्रभु अधर-सुधा पीवत को चाहें छालें ? ॥

३६७

[हमीर]

\* सोहै कटि सेत परधनी झीनी ।

सीस धरथी फेंटा अति सुंदर, चंदन वेंदी दीनी ॥  
 गैयां घेरि करी इकठौरी जसुमति धैया कीनी ।  
 'कुंभनदास' जसुमति मुख चुंचति, प्यावति प्रेम रस-भीनी ॥

३६८

\* देरबो सखि ! मोहन-नंद दुलारौ ।

स्योम घटा में रूप-छटा-सी सोभित पीत टिपारौ ॥  
 धौरी धूमरि गैगनि पाछें आवत ब्रज कौ प्यारौ ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर की छवि पर तन-मन आरति वारौ ॥

## छाक—

३६९

[ मलार ]

\* आजु हरि जैवत छाक बनाइ ।

संग सखा सब बैठे चहं दिसि करत बात मन भाइ ॥  
 जोरि पलास करत पनवारो बिजन सरस धराइ ।  
 'कुंभनदास' प्रभु जोरि सबनि कों देत बांट कर माइ ॥

३७०

[ मलार ]

\* हरि-संग बिहरत है सुकुमारी ।

हरि जो भये हरी रस-माते देखत सब हरियारी ॥  
 हरी हरी विधि के भोजन करत हैं पिय प्यारी ।  
 'कुंभनदास' प्रभु हरे महल में रंग मच्यौ है भारी ॥

३७६

[ मलार ]

\* नवल निकुज में जैवत मोहन बलदाऊ भैया ले संग ।  
 खात खवावत परस्पर दोऊ सुंदर छवि की उठत तरंग ॥  
 कमल बरन काछनी, कनक बरन टिपारौ सिर,  
 कुंडल किरननि रवि - जोति किये भंग ।

जगमग जोति अति सुख मंडल की, निरखि लजित भये कोटि अनंग ॥  
 खात-खात उठि टेरत खालनि छाक आई भैया ! आवौ सब दोरि ।  
 मधुरे बचन मीठे जु लालन के सुनत-सुनत मेरौ लियो चित चोरि ॥  
 आसपास बैठी खाल - मंडली मधि जंवत दोऊ नंदकिसोर ।  
 सोभा कहा कहों ? रसिक कुंवर पे 'कुंभनदास' वारत तुन तोर ॥

३७२

[ मेघमलार ]

\* भोजन करत नंदलाल संग लियें ब्रजबाल,  
 बैठे हैं कालिदी-कूल चंचल नैन विसाल ।  
 छाक भरि लाई थाल, परस्पर करत ख्याल,  
 हसि-हसि चुंबत गाल, बोलत बचन रसाल ॥  
 आसपास बैठी धाम, मध्य सोहै धनस्याम,  
 जवत है सुख के धाम रस भरे रसिक लाल ॥  
 विमलचरित्र करत गान, आग्या दई कुंवर कान्ह,  
 'दासकुंभन' गावत रागमलार निरखि भयो निहाल ॥

३७३

[ सारंग ]

\* कुंजनि धाम अति तपत भैया रे ! भोजन कीजै ।  
 सुबल कहत सुनो सुबाहू ! श्रीदामा द्वार कीक्यों न दीजै ॥  
 अर्जुन आनि धरत घट भरि-भरि ताकि ताकि सीतल धाम कीनों ।  
 परिद्वित लै पनवारो डारत भोजन भाव करि लीनों ॥  
 मधुमंगल मंडल-रचना रची बांटि-बांटि सबहिनि कों देत ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर कियो खालनि सों हेत ॥

## भोजन—

३७४

[सारंग]

\* गोवर्द्धन की सघन कंदरा भोजन करत हैं पियप्पारी ।  
 आस-पास जुबती सब ठाढ़ी देत परस्पर करि मनुहारी ॥  
 सबनि के भाव सामग्री हित सों लेत श्रीललिता निहारि निहारी ।  
 'कुंभनदास' लाल गिरिधर-मुख बीरी देत श्रीराधा प्पारी ॥

३७५

\* छप्पन भोग आरोगन लागे ।

श्रीवृषभान-कुंवरि नॅद-नॅदन लै अपुनो गन संग अनुरागे ॥  
 विविध भांति पकवान मिठाई विविध विजन धरे रसपागे ।  
 पटरस धरे प्रेम रुचिकारी मधु मेवा अपने मुख मागें ।  
 खात-खवावत हसत-हसावत विनवति सखी तहै ठाढ़ी आगें ॥  
 जैवत देखि 'दास कुंभन' तहाँ हरपित मानत बड़ भागें ॥

## प्रभु-स्वरूप वणन —

३७६

[ सारंग ]

\* सोहत आडबंद अति नीकौ ।  
 केटा चंदनी स्याम-सिर सोहत, मोती वडे लूम ही कौ ॥  
 उर पे मोतियनि की माला हार सिंगार विच फूल केतकी कौ ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर मुख निरखत, त्रिभुवन जीवन जी कौ ॥

३७७

[ पूर्वी ]

\* सौहै सिर कनक के वरन टिपारौ ।

कनक ताग लागे बागे में कुंडल श्रवन निहारौ ॥  
 रंगमहल में रतन-सिंधासन, राधा-रवैन पियारौ ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, सब व्रज लोचन-तारौ ॥

३७८

[ हमीर ]

\* बलि-बलि आजु की वानिक लाल ।  
 पिछोरा कटि-ऊपर सोहत, उर मुक्तनि की माल ॥  
 फूल सेहरौ सीस विराजित फूलनि - माल रसाल ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गिरिधिर निरखत नैननि भयो निहाल ॥

३७९

[ सोंठ मलार ]

\* रह्यौ ढरि स्याम दुमालौ सीस ।  
 तैसोई कटि स्याम पिछोरा आजु बनै ब्रज-ईस ॥  
 हरित भूमि ठाडे जमुना-तट संग लरिका दस-वीस ।  
 'कुंभनदास' तैसे उनए बादर निरखत श्रीजगदीस ॥

३८०

[ हिमन ]

\* फूलनि कौ सेहरौ दूलहै-सिर बनायौ ।  
 फूलनि के बाजूबंद, फूलनि के कडा फूलनि के कुंडल श्रवननि सुहायौ ॥  
 फूलनि हार सिंगार रचे अँग फूलनि रंगमहल सब छायौ ।  
 फूली दुलहिनि फूले श्रीगिरिधिर 'कुंभनदास' (फूलि) जसु गायौ ॥

३८१

[ मलार ]

\* ब्रज में गोकुल-चंद विराजै ।  
 नन्ही-नन्ही बूंदनि बरसन लाग्यौ मंद-मंद घन गाज ॥  
 मोर मुकुट, मकराकृत कुडल, घनमाला छवि छाजै ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवद्वैन-धर प्रगट भक्त-हित काजै ॥

३८२

( मलार )

\* कदमतर ठाडे हैं बल मोहन ।  
 सीस धरी नव पाग कस्तुभी तैसोई पिछोरा सोहन ॥  
 ब्रजनारी चहुं दिसि तें धेरें लाग्यौ है सब गोहन ।  
 कस्तुभी छरा टेढी ल ठाडे और नचावत भोंहन ॥

घन गरजत नभ, उर डर लागत, घ्वाल लगे सब जोवन ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर ब्रज-जुवती तृन तोरन ॥

३८३

[ गौडसारंग ]

\* नवल वानिक बन्यौं अँग-अँग सौधे सन्यौं,  
 पावस फ्रतु मानों उनयो नव घन ।  
 उत गुरुजन-लाज, तोरें कैसे बने काज ? इत धीर न रहै तन ॥  
 करनि कमल लियें सखा-अंस भुज दियें  
 आंगनि गयो री ! मेरे बरसि प्रेम-बुंदन ॥  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर यह ढोटा हरत परायो मन ॥

### थुगलस्वरूप-वर्णन—

३८४

(नट)

\* आजु प्यारी पिय के संग विराजै ।  
 क्रीट मुकुट निरखत मन हरषत मुख मृदु मुसकनि आजै ।  
 प्रीतम ओढें रजाई सुंदर सुजनी अंग पर छाजै ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर सब ब्रज-जन सिर-ताजै ॥

३८५

(हमीर)

\* दम्पति दोउ राजत कुंज-भवन ।  
 पीत कुलहै सिर, कटि पियरी पट कुंडल ललित श्रवन ॥  
 विजना-वियार ढोरति सखी नियरें सीतल लागत पवन ।  
 ‘कुंभनदास’ गोवर्द्धन-धर रिक्षावत प्यारी राधा रवैन ॥

३८६

[ कानरौ ]

\* सीस सोहै कुलहै चंपक वरन ।  
 राधा-संग चंदन चरचित अंग कुंडल सोहैं श्रवन ॥  
 मुख मृदु मुसकत, पान आरोगत लाल गिरिवर-धरन ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु फूल-सेज में पौंढे आरति-हरन ॥

३८७

[ विहारो ]

\* करत केलि मिलि कुंज-भवन मे पिय प्यारी रस-रंग भरे ।  
 मृदुल कुसुम रची बैनी सेवारी कंठ कुसुमनि के हार धरे ॥  
 विविध विहार कुसुम-सिज्या पर निरखत रति-पति मान हरे ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर कोक-कला जुत सुखनि ढरे ॥

३८८

[ ईमन ]

\* स्याम-सिर सोभित पगा आजु सेत ।  
 और कहा कहों सुख की लुनाई, मधुर वचन सुख देत ॥  
 कुंज-भवन श्रीडत राधा-संग अँकनि परस्पर लेत ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्रकटे हैं भक्तनि-हेत ॥

## हिंडोरा—

३८९

[ ईमन ]

\* बैठे दोउ झूलत कुंज-हिंडोरे ।  
 फूले द्रुम, फूली बन वेली, बरखत हैं घन घोरे ॥  
 तैसेरे कोकिला कूजति प्रमुदित पवन झकोरे ।  
 'कुंभनदास' गिरिधर बंसीवट जमुना देत हिलोरे ॥

## आसक्ति—

३९०

[ सारंग-इकताल ]

\* सिर परी ठगौरी सैन की ।  
 मदनमोहन पिय जब तें कीन्ही परी चितवनी नैन की ॥  
 मन की व्यथा कछु कहत न आवै सुधि भूली सखि ? वैन की ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सांट लगी तन मैन की ॥

## दान—

३९१

[ ललित ]

\* दान कैसौ रे ! तुम भए अनोखे दानी ?  
 औरनि के धोखे जिनि भूले भए रहो ? अभिमानी ॥

जो रस चाहत सो रस नांही, बात तिहारी है हाँ जानी ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर ! काहे कों करत नकवानी ॥

## विरह—

३९२

[ मलार ]

\* गुमानी घन ! काहे न वरसत पानी ?  
 सूखे सरोवर उडि गए हँसा, कमल-बेलि कुम्हलानी ॥  
 दादुर, मोर, पपीहा ना बोलत कोयल शब्दनि हानी ॥  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल गए सुखदानी ॥

## श्रीजमुना-स्तुति—

३९३

( रामकली )

श्रीजमुना अगनित गुन गिने न जाई ।  
 जमुनातट-रेनु होत बेन इनके मुख देखन की करत बडाई ॥  
 भक्त मांगत जो होत ही छिनु सो, को करै एसी प्रन निवाई ?  
 ‘कुंभनदास’ गिरिधर-मुख निरखि कहों, कै हसों करि मन अघाई ॥

३९४

जमुने ! रसखानि कों सीस नाऊं ।  
 एसी महिमा जानि, भक्त की सुखदानि ! जोई मागों सोई पाऊं ॥  
 पतित पावन करत, नाम लीन्हे तरत, दृढ करि गहे चरन कहूं ना जाऊं ।  
 ‘कुंभनदास’ गिरिधर-मुख निरखत यही चाहत, नहीं पलक लाऊं ॥

३९५

श्रीजमुने पर तन-मन-प्रान वारों ।

जाकी कीरति विसद कौन अब कहि सकै ? ताहिं नैननि तें न मैं नेंकु टारों ॥  
 चरन कमल-रेनु चितत रहों निसि-दिन नाम मुख तें उचारों ।  
 ‘कुंभनदास’ कहै लाल गिरिधर-मुख इनकी कृपा भई, तोऊ निहारों ॥

३९६

[रामग्री]

भक्त—इच्छा पूरन जमुने जू ! करता ।  
 विनुही मांगत कहाँ लों कहों, देत जसे—  
 काहू कों कोउ होइ करता धरता ॥

जमुना—पुलिन रास, ब्रजवधू लिएं पास, मंद हास भवन जो हरता ।  
 ‘कुंभनदास’ जो प्रभु कौ मुख देखे ताहिं जिय लेखत जमुने ! जो भरता ॥

## सीकरी—

३९७

८४

\* भक्त<sup>१</sup> कौ कहा सीकरी काम ? ।

आवत जात पन्हैयाँ दूटीं विसरि गयो हरि—नाम ॥  
 जाकौ मुख देखत दुख उपजै<sup>२</sup> ताकों करनी परी प्रनाम ।  
 ‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर—बिनु यह सब झटौ धाम ॥

## टोंड कौ घनौ—

३९८

[ सारंग ]

भावत<sup>३</sup> तोहिं टोंड कौ घनौ ।  
 कांटे बहोत<sup>४</sup> गोखरू बूडे फारत सिंह परायो तनौ ॥  
 आवत—जावत बेलि निवारै बैठत है जहाँ एक जनौ ।  
 सिंघ कहा लोखरी कौ डरै<sup>५</sup> छांडि दियौ भौन अपनौ ॥  
 तब बूढत ते<sup>६</sup> राखि लिए हैं सुरपति तो तुन हूँ न गन्यौ ।  
 ‘कुंभनदास’ प्रभु गोवर्द्धनधर ! इह<sup>७</sup> तो नीच ढेढिनी जन्यौ ॥

\* अकवर बादशाह द्वारा सीकरी बुलाए जाने पर उनके सन्मुख गाया हुआ पद ।  
 ( कुंभनदास की वार्ता अष्ट छाप ) वि. विभाग द्वि. सं. पत्र २३३

१ भक्तनि कौ (प्र.)            २ लागै (मु.)

३ भावत है (मु.)            ४ लगे गोखरू दूटे, फारत है सब तनौ (मु.)

५ यह कहा बानिक बनौ (मु.)            ६ वह कौन ढेढिनी रांड कौ जन्यौ (मु.)

३९९

बैठथौ आइके बन मांहि ।

मृदु भोजन सब छांडि दिए हैं अब खिचरी छांछि साँ खांहि ॥  
 जाइ अँगाकरि दूरि करि ल्यावै कररी बहुत जीभ छुलि जाँहि ।  
 डरपत्, किरै मृगी तें सिंघ क्यों ? ए बातें हम कों न सुहाँहि ॥  
 गाँइ गोप सब सूने डोलत देखन कों गोपी अकुलाँहि ।  
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! सूनों भवन देखि पछिताँहि ॥

## विनय—

४००

[ भैरव ]

सार हिं श्रीवल्लभ-पद गहु रे !

श्रीविष्णुलनाथ प्रगट पुरुषोत्तम पल-पल छिनु-छिनु नाम सुख लहु रे ॥  
 श्रीगिरिधर, गोविंद करुणानिधि, श्रीवालकृष्ण-चरण चित देहु रे ।  
 श्रीगोकुलनाथ अनाथ के बंधु श्रीरघुपति जदुपति-जस कहु रे ॥  
 श्रीघनस्याम सुखधाम जग-जीवन मन, वच, क्रम एही चाह चहु रे ।  
 नहिं कहु और तत्व त्रिभुवन में 'कुंभनदास' शरणागत रहु रे ॥

४०१

( भैरव )

तुम-बिनु को ऐसी कृपा करै ?

लेत सरन तत्त्विन करुणानिधि त्रिविध संताप हरै ॥  
 सुफल कियो मेरौ जनमु महाप्रभु ! प्रभुता कहि न परै ।  
 पूरन ब्रह्म कृपा- कटाच्छ तें भव कों 'कुंभन' तरै ॥



इति प्रकीर्ण-पद

५८

'कुंभनदास' कृत पद-संग्रह  
समाप्त

# ‘कुंभनदास’



वर्षोत्सव



[ सरल भावार्थ ]

मंगलाचरण—

१

श्रीगोवर्द्धनधर श्रीकृष्ण की जय है। वृष्टि को दूर कर व्रज के कष्ठहारी, इन्द्रमान—मंगकारी प्रभु की जय है।

विद्युत समान पीत अम्बरधारी, कोमल शरीर से सजल मेघ-कान्तिहारी और करकमल से अधर पर वेणु धर संगीत के द्वारा व्रज—युवतियों के चित्त चुराने वाले की जय है।

वृन्दावन व्रजभूमि में वंदनीय चरणों से विचरण कर यमुना-तीर विहार करने वाले नन्दगोप—कुमार की जय है। ‘कुंभनदास’ नमन करता है, प्रभो! वह आपकी शरण में है।

जन्मसमय (बधाई)—

२

श्रीनन्दराय के सुत का प्राक्टथ हुआ है। सब व्रज में चलो, वहाँ मंगल हो रहा है। जन्म के समाचार से ही जगत का अज्ञान अन्धकार मिट गया और त्रिविध ताप नष्ट हो गया।

महोत्सव में नवनीत, दूध दही हरदी तेल उछाले जा रहे हैं। गोपियाँ आतुर होकर नदी-सी उमड़ी चली आ रही हैं। गिरिखर—धरण के प्राक्टथ के समान आनन्द तो कभी नहीं हुआ।

३

सब व्रज में गोकुलचन्द्र के प्राकटघ से आनन्द हो गया । श्रीयशोदा और बाबा नंद के भाग्य धन्य हैं । भाद्र, कृष्ण पक्ष, अष्टमी अर्धरात्रि, रोहिणी नक्षत्र, बुधवार को प्रभु के दर्शन करते ही सर्वत्र हर्ष—कोलाहल होने लगा । गोपी घाल, दूध दही के माट, अनेक प्रकार की भेट लेकर नाचते गाते नन्दराय के द्वार पर आए, उन्हें पकड़ कर नाचने गाने और बाजे बजाने लगे ।

व्रज में 'जय जय' चिरंजीव हो, इस प्रकार शब्दों का धोष होने लगा, याचकों को दान मिलने लगा । सभी का सत्कार होने लगा । नंद यशोदा फूले नहीं समाते । कमलनयन को गोद में लेकर श्रीयशोदा हर्षित हो उठीं । यमुना, गिरिराज, वृन्दावन, व्रज सभी हर्षोत्सुल्ल हो उठे ।

श्रीकीर्तिंजू और वृषभानुजी युगल—जोड़ी देखकर प्रसन्न हो गये । 'कुंभनदास' के जीवन राधानंदकिशोर की जय हो—ये जोड़ी चिरंजीवी हो ।

### पलना—

४

श्रीगिरिधरलाल पालने झूल रहे हैं । जननी यशोदा मुख कमल निरखती हुई उन्हें झुला रही हैं । लोरियां ( बाललीला ) गाती हुई वे प्रसन्न होकर हाथ से ताल देती जाती हैं । बड़-भागिनी रानी प्रफुल्लित होकर लाला पर मुक्का—माला न्योछावर कर रही हैं ।

५

रत्न—खचित सुंदर पालना में गिरिधरलाल झूल रहे हैं । हर्षित होकर यशोदा गुण गा कर ताल देती जाती हैं, कभी

गुलगुली चला कर हरि को हँसाती हैं, कभी चुम्बन ले लेती हैं। इससे नद-नंदन किलक उठते हैं। मैया उन्हें अंगुली पकड़ कर चलना सिखाती हैं।

### छठी—

६

आज जसुमति-सुत की छठी है। सखियो ! चलो बधाई देने चलें। नये भूषण वस्त्र पहिन कर मंगल वस्तुएँ ले चलो। नंदरानी के पुत्र हुआ है—विधाता ने कैसी सुन्दर बात की है, पूर्व पुण्यों का साक्षात् फल प्रगट हुआ है। कन्हैया को देखने से आँखें दृप्त नहीं होती ब्रज भर में सुख ही सुख दीखता है, घर-घर मंगल हो रहा है।

हम तो यही चाहती हैं—नंद-सुत गोकुल में ‘जुग जुग राज करो’। अब स्वकीय जनों के मनोरथ पूर्ण हो गये, वे यश गान करके जियेंगे। जननी यशोदा बाल प्रभु को निरख कर अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं।

### राधाष्टमी (बधाई)—

७

शोभा स्वरूप श्रीराधा के प्राकद्य से वृन्दावन और गोकुल की गलियों में सुख की लता लहलहा उठी है। पद-पद पर गोवर्धन पर प्राकद्य के संकेत हैं, दर्शन कर नयी-नयी उपमा उपजती है। श्रीगिरिधर भूतल पर पधारेंगे, सो लीला के लिये इनका पहिले ही जन्म हो गया है।

८

रूप-निधान नागरी श्रीराधा का प्राकद्य हुआ है। दर्शन कर ब्रज-वनिताएँ प्रसन्न होती हैं। उनकी कोई उपमा ही नहीं

है। कवियों ने जा-जो उपमाएँ दीं वे सब समाप्त हो गईं। यह तो गिरिधर की सहज समान जोड़ी है, इसकी क्या उपमा?

९

माई ! तुम यह सुख देखो—आज वृषभान-लली की वरस-गांठ बड़े भाग्य से आई है। जन्म का दिन सुखदायक होता है। कीर्तिरानी ने बड़े पुण्यों से यह निधि पाई है, ब्रज में प्रभु की लीला से आनन्द-लता बढ़ने लगी है। ‘कुंभनदास’ की जीवन श्रीराधा यशोदा-नंदन को भी सुख देने के लिये प्रगट हुई हैं।

**इयाम-सगाई—**

१०

श्रीवृषभानुजी के घर नन्दरायजी के स्वागत का और सगाई का वर्णन है।

**दान-प्रसंग—**

११

गोपीप्रति प्रभुवचन—

“गुजरिया ! तू हमारा दान दे। नित्य ही यहाँ से तू चोरी से गोरस बेच आती है, आज अचानक ही भेट हो गई। तू बड़े गोप की बेटी है, इतनी क्यों सतराती है ? अब कैसे छूटेगी ?” ऐसा कह कर गोवर्धनधर ने रोकने के लिये अपने हाथ में उसकी ओढ़नी लपेट ली।

१२

भैया खालो ! आज उस वन में चलना है, जहाँ होकर गोपियाँ दही बेचने जाती हैं। वहाँ छीन २ कर सब दही खाना है। उस वन में धास बहुत है—गायें वही चरेंगी। कुंभनदास (मुझ) को गिरिधर ने कहा है कि आज वहीं राधिका को अनुराग में रंगना है।

१३

“आज तो मैं तेरा दही चख कर देखूँगा। मोल क्या है? और इसे कहाँ बेचेगी? सच सच बता दे। जो मूल्य तू कहेगी वही दूंगा—ये सखा साक्षी हैं। तुझे विश्वास न हो तो यह मोती की माला लेकर रख ले।”

ऐसा कहकर दाम देने को उसे घर की ओर ले गए, मार्ग में कटाक्ष द्वारा प्रभुने अपना अभिप्राय जताया तब उसने तत्क्षण उनको सर्वस्व समर्पण कर दिया।

१४

“रसिकनी! तू दान दिये बिना ही कैसे जा रही है, दान दे। ग्वालिनी! मेरी बात सुन, देख दूध—दही के पीने से सब ग्वाल तृप्त हो जायंगे।

तेरे मीन जैसे चंचल नेत्र और तन पर सुन्दर वस्त्र हैं। नूपुर रुनझुन करते हैं, मोतियों से मांग भरी है, तू पूर्ण युवती है।

मुख से बोल दे, घूंघट पट खोल दे”। यह सुन कर गोपी मन में मुसकाती हुई आंचल संभालने लगी। ‘कृष्ण कर मुझे कंचन कलश का रस दो।’ यह सुनकर उसने कृष्ण को दान दे दिया। श्यामसुन्दर ने प्रेम से दधि का स्वाद लिया।

प्रभुप्रति गोपीवचन—

१५

लालन! मुझे जाने दो, आंचल छोड़ दो, देखो बहुत देर हो रही है? नंदकुमार! वैसे ही मैं घर से बड़ी देर से निकल पाई हूँ। तुम्हारे लिये कल भली भाँति दही जमाकर जल्दी ही ले आऊंगी। गिरिधर! तुम यही बैठे हुए मिलना।

१६

श्यामसुन्दर ! तुम इस मार्ग से किसी को भी चलने नहीं देते, इस घाटी से ज्योंही निकले, तुम मार्ग रोक लेते हो । नंदकुमार ! हार तोड़ देना, अंचल फाड़ना, घूंघट खोल कर मांग पटियां देखना, बांह मरोड़ देना, दही की चटियां फोड़ना क्या यह सब ठीक है ? यह तो बताओ तुमने कव कव दान लिया है—नई बातों का ठाट क्यों जमा रखता है ? अच्छा ! गिरिधर ! हम पैरों पड़ती हैं—तुम तो हमारी दशा जानते ही हो, जाने दो ।

गोपीप्रति गोपीवचन—

१७

यहाँ तो एक ही गांव का रहना है, सखी ! कहाँ तक बचें । श्यामसुन्दर प्रतिदिन एक क्षण को भी तो दूर नहीं रहते । इसी घाटी से सब का आना जाना होता है, और यहाँ अपनी सखा-मण्डली के साथ नंदनंदन आकर खेलते हैं । अरे ! कभी दहेंडी फोड़ देना, कभी दही ढोल देना और कभी बांह पकड़ कर कुंज की ओर ले जाना—यह दशा किससे कही जाय ? चित्त में लोक-लज्जा के भय और संकोच से कह भी तो नहीं सकती है ।

तुम्हें अच्छी तरह जान लिया—तुम गिरिधरलाल जो ठहरे ?

१८

“अरी गोपियो ! गोस का दान लेना ही हमारा काम है । हम तीनों लोकों के दान लेने वाले हैं, चारों युगों में हमारा राज्य है । बहुत दिनों तक दान दिये बिना ही तू अद्वृती भाग जाती रही है ?” प्रभु गोवर्द्धनधर बृन्दावन में दान लेने के लिये इस प्रकार कहते हैं ।

## गोपीप्रति गोपीवचन—

१९

अरी ! यह है कौन ? इसे हम गोवर्द्धन की तरहटी में दान नहीं देंगी । यह कान्हा हाट, गाम, खेत, मढ़ैया सभी ठिकाने संग लगा डोलता है । बाप तो राजा कंस को कर देता है, और उसका यह सपूत साथियों को लेकर अकड़ता फिरता है । अरे गिरिधर ! तुम सीधे अपने पेढे २ क्यों नहीं चले जाते ?

२०

माई ! मदन गोपाल तो बड़ा हठी है । कितनी देर हो गई वह अभी तक मार्ग रोके खड़ा है । कहता है—सुन्दरि ! वृषभान की दुहाई है, दान लिये बिना जाने नहीं दूंगा, वृथा तुम झगड़ा बड़ा रही हो, हमारा दान चुका दो और चली जाओ ।

इस पर गोपी बोली—मोहन ! तुम जब देखो तब ‘दान दान’ क्या कहते रहते हो ? यह कैसी जबर्दस्ती है ? यह सुन कर गोवर्द्धनधर ने मन्द हास्य द्वारा उसका मन हर लिया ।

२१

सखी ! नंद के ढोटा ने ज्योंही मुझ से कुछ अटपटा दान मांगा, मै मथनियाँ उतार कर हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई । उसने मेरा आंचल खींचा तब मुझे बहुत डर लगा । इसी झगड़े २ में मेरा दही बेचने का समय निकल गया ।

२२

‘व्रजराज का लाडिला बेटा दान ले रहा है । सखियो ! सिरपर दही का माट धर कर उस मार्ग से चलो । देखो वह संकेत करते रहा है’ । एसा कह कर ग्वालिनी ज्योंही सांकरी खोर के पास पहुंची वहाँ भी श्याम को बात करते हुए खड़ा पाया ।

मुख मोड कर गोपी ज्यों ही हँसी--श्याम ने अंचल पकड लिया ।  
तब बोली--अंचल छोड दो तुम्हें दान देती हूं ।

कृष्ण बोले--तू ग्वालिनी किस गाम का है, मिस बना कर  
रोज निकल जाती है ? उत्तर मिला--हम सब वृषभान के पुर में  
वसती हैं । तुम श्यामसुन्दर हो तो लो, अपने ग्वाल बालों के  
साथ खूब दूध दही पी लो ।

### दानलीला—

२३

कृष्ण और गोपियों के सम्बाद-रूप में :—

गोकुल की बालाए विविध भूषण और शृंगार धारण कर  
नित्य दही बेचने जाती हैं । इनकी परम शोभा कही नहीं  
जा सकती, एक से एक बढ़कर सुन्दर हैं ऐसा लगता है मानों  
कुंज अनेक प्रकार के पुष्पों से फूला हो ॥ १ ॥

प्रातः नंदलाल ने उठकर अपनें सखाओं को बुलाया । वे  
दान की बात सुनते ही दौड आए । वे सब नंदलाल के साथ  
यमुना के किनारे एक कुंज में जाकर बैठ गए ॥ २ ॥

आती हुई गोपवालाओं ने श्याम को मार्ग में खडा देखा तब  
इकट्ठी हो गई और विचार करने लगी कि-अब क्या करना  
चाहिये ? यहां तो नन्द का ढोटा रास्ता रोक कर खडा है यह  
छीन कर दही खा जायगा—चलो दूसरी तरफ चलें ॥ ३ ॥

उन सब को दूसरी ओर जाते देख गोपवालों के संग श्याम  
ने दौड कर उन्हें वहां रोक लिया, बोले—अब कहां जाओगी ?  
नंद की दुहाई है ज्यादा चतुराई छोड दो—हम तुम्हारा मान  
रखेंगे ॥ ४ ॥

ब्रजनागरी बोली—

नन्दलाल ! तुमने कबसे दान लेना शुरू किया है, और कबसे दानी कहाने लगे ? हमने तो आज तक नहीं सुना । जाकर यशोदा से पूछ लो ? अरे ! तुम तो देवकी के जाये हौं और गोकुल में शरण ली है, यहाँ तुम सब गोपचालों की जूठन खाकर बड़े हुए हैं—और अब दान मांगते लाज नहीं आती ? ॥५॥

नंदलाल बोले—

अरी गोपियो ! तुम्हें अपने यौवन का गर्व है । संभालकर बोलना नहीं आता ? दध-दही के पीछे गाली—गलौज करती हो ? नंद की दुहाई है—सब को लूट लूंगा, बख्त छुड़ा लूंगा, और हार-घार सब तोड़ डालूंगा ? ॥६॥

ब्रजनागरी बोली—

‘लूट’ ‘लूट’ क्या मचा रखती है ? यहाँ कोई तुम्हारी चेरी नहीं है । कब तो दान लिया और कब दुहाई फेरी ? तुम्हें यह मालुम नहीं कंस का राज्य है—संभलकर खियों से बोलो । यदि नंदरानी ने सुन पाया तो तुम्हारी इस करतूत से उन्हें दुःख होगा ॥७॥

नंदलाल बोले—

देखो ! तुम गँवार ज्वालिनी हो । हम जैसों को क्या समझाती हो ? अरे ! शिव, ब्रह्मा, सनकादि ऋषि भी हमारा पार नहीं पाते ? भक्तों की रक्षा और दुष्टों का संहार यही तो हमारा काम है । थोड़े दिनों में केश पकड़कर कंस को मारकर धरती का भार उतार दूंगा ॥८॥

ब्रजनागरी बोली—

रहो ! रहो ! माता देवकी बांधी गई तब आप कहाँ गये थें ? रातों—रात मथुरा छोड़कर गोकुल में आकर शरण लेनेवाले आपही

हैं न ? अपनी बहुत बड़ाई क्या करते हो, मन में सोचो तो—बन में जूठे बेर फल खा—खाकर बड़े हुए और अब कुमार बन गये हो ॥९॥

नंदलाल बोले—

तुम्हें मालुम नहीं ? नंदरानी यशोदा ने तप करके हम से वर मांगा था सो—वेद वचन को सत्य करने, उन्हें प्रसन्न करने मैं गोकुल आकर रहा हूं । बाबरी ! तुम्हें क्या मालुम कि— मैं वही त्रिभुवन-नाथ हूं जो— जल-थल और घट-घट में समाया हुआ है ॥१०॥

ब्रजनागरी बोली—

अरे कान्ह ! जब तुम ऐसे हो तो घर-घर चोरी क्यों करते हो ? याद नहीं जब मुझ से झगड़ बैठे थे, तब मैंने तुम्हारा पीताम्बर छुड़ा लिया था ? थोड़े से दही के नुकसान पर माता ने तुम्हें बंध दिया था ? वे हमीं तो थीं जो— जाकर छुड़ाया था, और अब बड़ी २ बातें बनाते हो ? ॥११॥

नंदलाल बोले—

तुम्हें खबर नहीं ? विचारे नल-कूवर जो— मुनि की शाप से वृक्ष बनकर खड़े थे, उनका उद्धार करने को ही हम ऊखल में बंध गए थे । राधे ! जरा चीर-हरण की बात सोचो—जब यमुना में ठंड से ठिठुर रही थीं और हा ! हा ! खाकर वस्त्र हम से मांगे थे ॥१२॥

ब्रजनागरी बोली—

कान्ह ? तुम बड़े हीठ हो गए हो, ऐसा कठोर क्या बोलना ? बन में गाएँ चराते, ग्वालों के संग इधर-उधर दौड़ते फिरते हो ? भूल गए जब बीन २ कर इस उस की छाक खाई थी, और अब अकड़ते फिरते हो, अंट-संट बोलते हो ? ॥१३॥

नंदलाल बोले—

पृथ्वी पर असुरों की प्रवलता हो गई, ऋषि-मुनि जप-तप

छोड़कर भाग गए, गायों का नाश हो गया—सो हमें देह धर कर आजा पड़ा हैं ? देखो ! ये संग के ग्वाल हैं सो—सभी स्वर्ग के देवता हैं। हमने इन्द्र का भी गर्व हर लिया, और अब तुम्हारी छुशामद कर रहे हैं ॥ १४ ॥

ब्रजनागरी बोली—

बस बस ! बन में ही बातें हमें सुना लो । हम तुम्हें जानती हैं—आप कैसे बलशाली हो ? सांवरे ? आपकी ऐसी शक्ति है तो वसुदेव के फंद क्यों न काट डाले ? सात बालकों को मारने वाले कंस को क्यों न मार डाला ? ॥ १५ ॥

नन्दलाल बोले—

केसी, कंस इन सब दुष्टों को मारकर वसुदेव के बंध छुड़ाना है। उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाकर चंचर छुलवाना है। मल्ल, कुवलयापीड को पछाड़कर जब धनुष तोड़ूँगा—तब देखना—चतुर्दश भुवन में हमारे प्रताप यश को देवता गावेंगे ॥ १६ ॥

ब्रजनागरी बोली—

कान्द ! अपनी अधिक बड़ाई रहने दो ? मैं खूब जानती हूं। तुम्हारी जात-पांत कुल—प्रतिष्ठा हमसे कुछ छिपी नहीं है ? लड़कों के साथ खाते पीते ग्वाल कहाने लगे हो ? हम हैं ब्रजबाला—सो देखेंगी ? हमारा दही तुम कैसे खाते हो ? ॥ १७ ॥

नन्दलाल बोले—

हां ! दहेड़ी तो छुड़ा लूँगा—कंठकी मुक्तावली टोड़ फेकूँगा ? पैर पर पैर धर के ये तुम्हारी ओढ़नी भी फाड़ फेकूँगा ? समझी ? देखो—तुम तो वृषभान की ग्वालिनी हो और हम ? हम हैं नन्द के कुमार ? सो अब जिसका तुम्हें बल हो उसके पास जाकर पुकारकर देख लो ! ॥ १८ ॥

ब्रजनागरी बोली—

हमारी तो जाति अहीर की है, नित्य दही— बेचना हमारा काम है। आज तक दान का नाम सुना नहीं था ? अब दान दे कर नई बात चलावें ? सांवरे ! तुम खड़े अनवीगे हो जो— बन में हम ज्वालिनियों को रोकते हो ? क्या इसी मुख से और यहीं कदम की छांह में बैठकर दही खाओगे ? वाहरे वाह ! ॥ १९ ॥

नन्दलाल बोले—

ज्वालिनी ? तू तो बड़ी आंखे मटका-मटका कर चाँत करती है, सीधे बोलना तो आता ही नहीं ? हम अनवीगे नहीं हैं हो ? तुम्हीं अनवीगी हौं—जो इधर-उधर भटकती फिरती हौं ? हमने तो जब से ब्रज में जन्म लिया तभी से दान लिया है ? भला, ब्रजराज से जाकर भी कह लों, और अपना अभिमान भी दूर करलो ! ॥ २० ॥

ब्रजनागरी बोली—

बस, श्याम ? टेढ़ी पाग बांधकर टेढ़ी लकुट लेकर टेढ़े खड़े हो गये और स्त्रियों को रोककर लगे दान मांगने ? अपने घर के बड़े सपूत हौं ? जिनका सहारा लेकर नाथ बनै फिरते हो ? सो—ये सब सखा भाग जायगे—समय पर कोई भी साथ नहीं देगा ? समझे ? ॥ २१ ॥

नन्दलाल बोले—

भला—वता तो नागरी ? ऐसा राजा कौन है जो हम पर हाथ उठावे ? अरे ! हमारे तो बंदीजन और वेद द्वार पर खड़े २ यश गाते हैं ? ब्रह्मा के रूप से उत्पत्ति, रुद्र—रूप से संहार और विष्णु रूप से रक्षा करनेवाला मैं ही तो नन्दकुमार हूँ ॥ २२ ॥

**ब्रजनागरी बोली :**—

हाँ, हाँ ! तुम ऐसे ही ब्रह्म हैं जो—हमारे छोंके ढूँढते फिरते हैं ? घर—घर चुपाकर माखन खाकर मस्त होते हैं और स्त्रियों के साथ छेड़खानी करते हैं ? ऐसे ही ब्रह्म हैं न ? सांवरे ! तुम्हें दोष नहीं है, अंधियारी गत्रि में जो—आपका जन्म हुआ है ? वन में आप जरूर ब्रह्म कहलाते हो तभी माता-पिता को छोड़ बैठे हो ? ॥२३॥

**नन्दलाल बोले :**—

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सभी लोकों में मेरी ठकुराई है। मैं वृन्दावन-चंद्र हूँ, सभी वस्तु में समाया हुआ हूँ, और बांवरी ! जो—तू हमारा नाम पूछती है ? सो गज से लेकर पिपीलिका (चींटी) तक सभी तो मेरे रूप नाम हैं-कितने गिनाऊं ? ॥२४॥

**ब्रजनागरी बोली :**—

लालन ! दही खाना हो तो सीधे मांगो ! इस तरह लड़ाई झगड़ा क्या करना ? आप बड़े बलवंत हैं तो—मथुरा जाकर कंस मारो-और फिर आकर हमारा दही खाना ॥२५॥

**नन्दलाल बोले :**—

देखो ! राधानागरी ! मुझे मथुरा जाकर बहुत से काम करना है। वहाँ जाने पर फिर यहाँ नहीं आसकूंगा ? तुझे तमाशा देखना हो तो देख लेना ? एक बार जाने पर फिर नहीं आज़ंगा ? ॥२६॥

**ब्रजनागरी बोली :**—

श्याम ! मथुरा जाने की बात मत कहाँ ! आप मथुरा क्यों जाओ ? हम और तुम सब सदा पास में ही रहें। यहीं गोकुल में आप नित्य विहार करो। दही-दूध की क्या पस्ताह ? आप

नित्य हम से दान मांगो, मांगते २ आपको तो लाज आवेगी—  
हमें तो अति मान होगा ॥२७॥

नन्दकुमार बोले :—

तुम सब अबला और भोली हैं। हमारे कृत्य नहीं समझौगी ? मैंने कालीनाग को दूर भेज दिया, दावानल का पान कर लिया, इन्द्र ने कुद्ध होकर जब ब्रज-बहाने की ठानी तो गोवर्द्धन उठा कर रक्षा की, और बकायुर मारकर बालक बछड़ों को बचा लिया था ॥२८॥

कुंभनदास कहते हैं :—

श्यामसुन्दर की रसभरी बातें सुनकर—ब्रजबालाएँ प्रसन्न हो गईं और उन्होने दही—दूध सिर से उतारकर सब प्रभु के सन्मुख रख दिया। प्रभु ने ज्वाल—बालों को बांटकर अच्छी प्रकार आरोगा। पहिली प्रीति जानकर श्रोदृष्टभानु-कुमारी राधा गिरिधर से मिलीं और उन्होने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया ॥२९॥

ब्रजनागरी बोली :—

प्रभु ! तुम त्रिशुभन-पति और हमारे नाथ हैं। आपकी जो-इच्छा हो सो करो। आपके गुण, कर्म हमारी समझ में नहीं आते, उन्हें हम कह भी नहीं सकतीं ? शेष हजार मुखों से आपकी स्तुति करते हैं—त्रिपुरारि ध्यान धरते हैं। फिर भला हम अहोरी ब्रजबासिनी भोली सरल बालाएँ आपका क्या पार पात्रे ? ॥३०॥

कुंभनदास कहते हैं :—

श्रीराधाकृष्ण के दान-प्रसंग का यह वार्तालाप जो—गाकर सुनावै, उनकी लीला का ध्यान करै-उसे मनवाजिछत फल मिलेंगे और हृदय का ताप शान्त होगा। सुखनिधान श्यामा—श्याम को बिराजमान इस जोड़ी के दर्शन कर उनकी वानिक पर ‘कुंभनदास’ बलि २ जाता है ॥३१॥

## दशहरा—

२४

आज दशहरा का शुभ दिन है। गिरिधरलाल जवाह धारण कर रहे हैं। भाल पर कुंमकुंम का तिळक शोभित है। माता यशोदा आरती कर मोतियों का हार न्यौँछावर करती हैं। इस समय गोवर्धनधर के दर्शन से त्रिभुवन का सुख भी फीका लगता है।

२५

आज विजय-दशमी का दिवस धन्य है। सज-धज कर आए हुए घ्वालवालों के मध्य नंदनंदन की शोभा ही कुछ न्यारी है। श्रीमस्तक पर झीनी रंगभीनी पाग और कस्तूरी का तिळक शोभित हो रहा है। आज श्रीविष्णुलेश्वर विधिपूर्वक शमी वृक्ष का पूजन कररहे हैं।

## रास—

२६

“मोहन मधुर वेणु बजा रहे हैं। सरस संगीत की लय-गति से मन को थोड़ा-सा भी चैन नहीं पड़ता। चलकर प्राण-पति से मिलें अंग २ में काम व्याप्त हो रहा है।” ऐसा कहकर ब्रज वनिताएँ सुख-निधान गिरिधर के समीप जा पहुंचीं।

२७

सुजान राधिके ! चलो तुम्हारे लिये सुख-निधान कृष्ण ने कालिंदी-तट पर रास रचा है। ब्रज-युवतियां नृत्य कर रही हैं, राग-रंग से कुतूहल हो रहा है, रस-भरी मुगली बज रही है।

निकट ही बंसी बट, रमणीय भूमि, त्रिविध मलय-पवन एवं उही पुष्पों के खिलने से बन शोभित हो रहा है, शरद-पूर्णिमा की चांदिनी छिटकी है।

प्रभु का यह नखशिख-सौन्दर्य, देखने मात्र से ब्रज-युवतियों के काम-दुःख को नष्ट कर देता है। हे भागिनी ! तुम भी प्रभु के श्रीकंठ में गलवांही डालकर गोवर्धनधर की सुखदायिनी लीला का आस्वादन करो ।

२८

प्रिय कमलनयन प्रभु रास-नृत्य में तान ले-ले कर भाँति २ से गान कर रहे हैं। वह रसिकों में मूर्धन्य और गुणियों में सर्वश्रेष्ठ तुम्ही को समझते हैं। गोवर्धनधर लाल तान छेड़कर सब का मन मुग्ध करलेते हैं।

२९

गोपाल ने यमुना तटपर रास रचा है। उनके अधर पर मधुर वेणु बज रही है। ब्रजयुवति-समूह के साथ हाव-भावों से उन्हें नृत्य करते देख कामदेव भी लजित हो जाता है।

उनके श्याम वपु, पीत कौशेय पट और चरण-नख की झाँकी से सकल जगत का अन्धकार हट जाता है। ललित आभूषण, धनुष के समान कुटिल भौंहें, चंचल कटाक्ष से ऐसा लगता है मानों काम ने बाण चढ़ा रखे हों।

नूपुरों की मन्द ध्वनि, किंकिणी के कणित और गंभीर संगीत से मेघ-गर्जन की आन्ति होती है। इस प्रकार रासोत्सव में गोवर्धनधर की नख-शिख सौन्दर्य से अमृत ही शोभा हो रही है।

३०

श्रीगोवर्धनधर रसमय वेणु में अमृत भर रहे हैं। इसकी चारू ध्वनि को सुनते ही ब्रजबालाएँ विमुग्ध हो जाती हैं। सुन्दर शरद ऋतु में गोपाल ने गोवर्धन की तलहटी में रास रचा है। इस कौतुक को देखकर चन्द्रमा भी पश्चिम दिशा की चाल

छोड़कर मध्य में ही ठहर गया है। वेणु-कूजन से सुर, मुनि, पवन, पशु, पक्षी सभी स्तब्ध रह गये। उनको देह का अनुसन्धान भी नहीं रहा। इस प्रकार गोवर्धनधर ने वेणु-नाद से सभी का मन हरलिया।

३१

गोविन्द मुरली में गा रहे हैं। मृदुल अधर और करपल्लव पर रखी हुई बंसी के सप्त स्वरों की तान के सुनते ही ब्रजबालाएँ विमोहित हो गईं। पशु, पक्षी कान ऊंचे कर आंख मुंदकर उसे सुनने लगे। इस शब्द से चर अचर पदार्थों की विपरीत दशा और चेष्टा हो गई। मुनियों की समाधि टूट गई, देवों के विमान रुक गये।

सुजान गिरिवर-धरण ने इस प्रकार वेणु बजाकर चिलक्षण ठाठ ही जमा दिया।

३२

रास-मण्डल में श्रीगिरिधर ने सुन्दर वेश धारण किया है। रमणीय यमुना का पुलिन, प्रफुल्लित कदम्ब के वृक्ष, शरद-निशा में ब्रजबालाओं के सौन्दर्य को देखकर चन्द्रमा स्थगित हो गया।

नवे-नये भूषण वसन धारण कर युगल स्वरूप प्रेमालाप करते पधार रहे हैं। किस कवि की सामर्थ्य है जो—इस गौर-श्याम शोभा का वर्णन कर सके? इसे हृदय में ही अनुभव किया जा सकता है।

३३

रास-मण्डल में नवल किशोर किशोरी उल्लास पूर्वक नृत्य कर रहे हैं। दोनों का वय, रूप सौन्दर्य समान ही है, गिरिधरण घनश्यामल कान्ति और श्रीराधा गौर छवि हैं। पीत और अहुण

वस्त्र हैं, नवल आभूषण हैं, कटि में किंकिणी मन्द इनकार कर रही है। दोनों के शृङ्गार ने त्रिभुवन की शोभा चुराली है। तान, बंधान, मधुर वार्तालाप, स्वर आदि सभी बातों की समानता से ऐसा लगता है—मानों विधाता ने बड़े परिश्रम से यही एक सरस जोड़ी बना पाई है। गोवर्धनधर विविध लीला, चेष्टाएँ कर भक्तजनों के मन मोह रहे हैं।

३४

श्रीगिरिवर-धरण रमणीय यमुना पुलिन में, रास में अच्छुत-गति से नृत्य करते हुए शोभित हो रहे हैं। ब्रज-वनिताओं के कई युथ, जिनके गण्ड-मण्डल पर कुण्डल झालमला रहे हैं, स्वरों में केदारा-राग का आलाप कररहे हैं।

दोनों ओर सुशोभित गोपिओं के मध्य में इयामसुन्दर कंचनमणि में खचित नीलमणि से दीप हो रहे हैं। नृत्य-गति की शीघ्रता से कटि-बसन कुछ शिथिल-से हो रहे हैं जिन्हें वे अपने हाथ से साधे हुए हैं। सकल कलाप्रवीण गिरिवरधारी के स्वर-जाति का आलाप लेते समय प्रियतमा अंग-प्रत्यंग से शोभित हो जाती हैं।

३५

रास-रंग में नागरी, गोवर्धनधर के साथ अति प्रसन्न होकर उरप-तिरप तान ले रही हैं। 'सरिगम' आदि सभी स्वरों के भेद, आलाप, लाग, दाट के साथ स्पष्टरूप में निनादित हो रहे हैं।

प्रभु ! प्रसादी ताम्बूल देते हैं और जहां सम आती है वहां गति लेते हैं, 'गिडि-गिडि-युंग युंग' मृदंग के बोल अलग मालूम हो रहे हैं। इस प्रकार रास-बिलास में श्रीराधा और नंदनंदन दोनों रस-सौभाग्य का आनन्द लेरहे हैं, उनकी बलिहारी है।

३६

रूपगुण-सम्पन्न नागरी श्रीराधे ! चलो श्यामसुंदर ने यमुना-तीर पर रमणीय रास रचाया है । सोलहों शृंगार कर और सुवासित दच्छन चीर ( पटोला ) पहिरकर प्रसन्नता से चलो ।

श्याम के अधर पर बंशी विराजमान है, और उनके प्राण तुम में बसे हैं । इस समय उन्हें और कुछ अच्छा नहीं लगता, सब काम छोड़ जलमें मीन के समान उनसे मिलकर सुख प्राप्त करो ।

प्रियतम की कटि में पीत पट, और मस्तक पर मुकुट मण्डित हैं । वेणु-रव का अनुकरण करते हुए मत्त भ्रमर पुष्पों पर मंडरा रहे हैं, कोकिला शुक बोल रहे हैं । सुनो तो श्रीगिरिवर-धरण सप्तखर-संमिश्रित केदारा राग में गान कररहे हैं ।

३७

रास-मंडल में गोपाल के संग प्रमुदित ब्रज-युवतियाँ नृत्य कर रही हैं । श्यामसुन्दर तमाल वृक्ष और वृषभानु-दुलारी कनक लता-सी रम्य लगती हैं ।

नृत्य में कटि, ग्रीवा हस्त आदि अंग चंचल हो रहे हैं, और किंकिणी कड़ा आदि आभूषण झनकार कररहे हैं । राग तान-सहित वेणु-नाद गूंज रहा है । गति-विशेष से श्रमकण झलक उठे हैं ।

इस प्रकार श्रीगिरिधरलाल नृत्य में ब्रज-वनिताओं के मन को मुग्ध कररहे हैं ।

३८

नवरंग दूलह श्रीगोवर्धनधर ने रास की रचना की है । उनके आसपास ब्रज-युवतियाँ सुशोभित हैं और मधुर केदार राग की तान अलापी जा रही है । ललिता आदिक सखियाँ मृदंग, ढोल,

किन्नरी आदि बजा रही हैं। इस प्रकार रास के रंग में गिरिवर-धरण विविध भाँति से नृत्य कररहे हैं।

३९

मंजुकल ख-युक्त कुञ्ज-स्थली में श्रीराधा और हरि सुन्दर वेश धारण किये हैं। पुष्पों की सुगंधि युक्त शरद-पूर्णिमा में श्यामलतन कृष्ण और गौरवर्ण श्रीराधा, नीलमेघ के संग सौदामिनी के समान विचरण कर रही हैं।

युगल स्वरूप के अरुण और पीत दुकूल अनुपम अनुराग प्रकट कर रहे हैं। शीतल मंद सुगंध पवन बहरहा है, नये पल्लवों की शश्या रची है, कोकिला मयूर कूज रहे हैं इससे मानिनी कामिनियों का मान भी खंडित हो जाता है।

प्रिया प्रियतम दोनों संयोग सुख से प्रसन्न हो रहे हैं। इस प्रकार गिरिवर-धरण की यह सुखदायिनी क्रीडा त्रिलोक की पाविनी हो रही है।

४०

वृन्दावन में रास-विलास का आनन्द बढ़ा कर श्यामसुन्दर ने नृत्य की नई गति-विधि का प्रदर्शन किया। अनेक प्रकार के आलाप, स्वर तथा 'ताता-थेर्ह' आदि बोलों का उच्चारण मन को मोह लेता है। इस प्रकार प्रतिक्षण नई प्रीति उपजाते हुए गिरिधर मनोज्ज क्रीडा कर रहे हैं।

४१

सारंग राग में सरस आलाप करने और इकताल में साथ देने के कारण ही राधे! तू मदनगोपाल के मन भाई हैं। सप्तक का अनुकरण कर अतीत, अनागत, अवघर अल्प, स्वल्प, संच आदि गायन के भेद-उपभेदों को जानकर नृत्य में किंकिणी की मधुर ध्वनि से तू विशेष सरसता प्रगट करती है। और रतिवाला

सी परम रमणीय रूप में तू नृत्य में हस्तक-भेद ( कर-चेष्टाएँ ) दिखाकर गोवर्धनधरलाल को रिङ्गालेती है ।

४२

रास में गोपाललाल और भामिनी संग नाच रहे हैं । नृत्य में कंधे पर श्रीहस्त रखने से ऐसा प्रतित होता है—मानों श्याम तमाल से कोई कनकलता लिपट गई हो ।

उरप तिरप, लाग दाट आदि नृत्य के भेद एवं मृदंग की ध्वनि में जैसा सरस राग जमा है, वैसी ही शरद-पूर्णिमा खिल उठी है । गिरिधर को नटवर—भेष धारण किये देखकर कोटि कोटि कामललनाएँ लजित हो जाती हैं ।

४३

विशेष पद है और भावार्थ स्पष्ट है—

इसमें रास—मण्डल का सम्पूर्ण वर्णन किया गया है ।

४४

रास—रस मत्त होकर गोविन्द विहार कर रहे हैं । ब्रजभक्तों के साथ ऐसे लगते हैं, मानों यमुना—पुलिन के मध्य में कुमुद कलहार फूले हों । मंडल शतदल कमल—सा विकसित है । जाही, जुही, निवारा आदि पुष्प—समूह झूम रहे हैं, मलय पवन बहरहा है, पूर्ण चंद्र की शोभा और मधुकरों की झंकार के बीच सुधरराय नंद—कुमार संगीत कला बताते हुए चंदन—कपूर से चर्चित होकर ब्रज—भामिनियों के साथ नृत्य कररहे हैं । सुकुमारता की सीमा दोनों स्वरूप क्रीडा में तल्लीन होकर ऐसे प्रतीत होते हैं मानों—उन्होंने रसमय हार पहिर लिया हो ।

४५

भानु—नंदिनी के तीर पर रखे हुए रास—विलास में अनेक ब्रज—कामिनियों के साथ नन्दलाल की अपूर्व शोभा होरही है ।

प्रफुल्षित नव निकुंज, त्रिविध पवन, शरद-रात्रि में विमल चन्द्रमा की चांदनी अनोखी दीखती है।

मध्यनायक श्रीकृष्ण और गौरस्वरूप स्वामिनीजी गलवाहियाँ देकर नांच रहे हैं—सो नीलमेघ और सौदामिनी की प्रतीति होती है। संगीत के आलाप और नृत्य-भेद दिखाकर श्रीराधा अपना अभिनय बताती हैं।

इस अञ्जुत रस को देखकर कामदेव अभिमान छोड़ देता है। मोहन अधर पर धरी मुरली में कलनाद गुंजन करते हैं। इस रसमय प्रसंग में श्रीस्वामिनी के संग क्रीड़ा करते हुए गिरिवरधरण पर 'कुंभनदास' तन, मन, धन न्यौछावर कर बलि २ जाता है।

४६

रास-विलास में श्याम के संग श्यामा अत्यन्त शोभित हो रही हैं। दोनों स्वरूप मिलकर नायिकाओं के साथ जो—सुगंध नृत्य कररहे हैं, सो—घनदामिनी जैसे प्रतीत होते हैं।

वेणु के मधुर कूजन के साथ उच्चारित संगीत की स्वर—लहरी और 'तत—थेर्ड २' बोल रास में रंग जमा रहे हैं। गिरिधर के अंग—प्रत्यंग से मिली हुई ब्रजबालाएँ मणिमाला—सी शोभित हो रस की कनी बरसा रही हैं।

४७

गोपाल सुंदर गान कर रहे हैं। कालिन्दी के तीर सरस रास—रंग हो रहा है। श्याम और ब्रज—रमणियाँ नीलमणि और सुवर्णमणि अथवा तमाल और सोनजुही की बेल के समान रमणीय लगती हैं। उरप—तिरप, 'तत—थेर्ड २' शब्द ताल से पूर्ण संगीत चालू है। नक्षत्रों के मध्य में चंद्र के समान युवती—समूह में गोविन्द की शोभा प्रकट हो रही है। गोवर्धनधर सौन्दर्य की सीमा विदित हो रहे हैं।

४८

## धनतेरस—

माई ! आज धनतेरस के दिन नंदरानी मंगल गाती हुई धन धो रही हैं । वे परमधन श्रीगिरिधर गोपाल का शृंगार करती हैं और उन्हें देख देखकर अपना हृदय शीतल करती हैं ।

४९

## गोक्रीडा (कान जगाई) —

कान जगाई के समय 'धौरी' गाय खेलने को आकुल हो रही है । ज्योंही उसने नंदनंदन की पुकार सुनी चौकन्नी होकर [ डाढ़मेल\* कर ] सन्मुख आ खड़ी होगई । बड़े २ गोप जिसे खिलाने में थक गए उसको इतने छोटे बालक का खिलालेना एक आश्र्य की कहानी-सा है । प्रतिवर्ष एसे शुभ मंगल की कामना कर गोप ग्वाल गारहे हैं, गायें इधर-उधर कूदती नाचती हैं । नंदकुमार प्रेम-पूर्वक अंगोछी से गायों का मुख झारहे हैं । 'जय-जय' शब्दोच्चार हो रहा है । कुंभनदास कहते हैं—श्रीगिरिधर की राजधानी में सदा ऐसी ही सुख समृद्धि वसती रही ।

५०

श्यामसुन्दर गाय खिला रहे हैं । ग्वाल कूक-कूक कर 'ही ही' कह कर उन्हें बुला रहे हैं, वेणु और सींग बज रहे हैं । सभी धेनुओं का शृंगार किया गया है, उनकी सजावट अनोखी है । वे गायें बिचककर लौट आती हैं, पूँछ उठाकर दौड़ पड़ती हैं, कान ऊंचेकर चकित-सी खड़ी हो जाती हैं । उनके पैरों में पेंजनी पड़ी हैं, मँहदी से पैर रंगे गये हैं, पीठ और पुद्दों पर सोने के थापे लगाये गये हैं । इस प्रकार जैसे उल्लास से खेल प्रारंभ हुआ उसी प्रकार गोक्रीडा हो रही है ।

---

\* गाय के खेलने के समय उसके दौड़ कर आने को 'डाढ़मेल' कहते हैं ।

५१

## दीपमालिका—

पंक्तिबद्ध प्रज्वलित इन दीपकों की सुंदरता तो देखो, अँधियारी निशा में वे आकाश में छिटके हुए तारा-गण से प्रतीत होते हैं। नन्दराय ने अगणित बतियां लगाकर इन्हें अद्भुत ढंग से सजाया है, कपूर धी आदि सुगंधित द्रव्य से उन्हें भरा है। व्रज में घर-घर परम आनन्द और कुतूहल हो रहा है। इसी समय गिरिधर सब को सुखदायी गो-क्रीडा कररहे हैं।

५२

## गोवर्द्धन-पूजा—

गोपाल गोवर्द्धन पूजने चले। उनकी मंद गति को देखकर मत्त गजेन्द्र लजित हो जाता है। व्रज-वनिताओं ने कई प्रकार के पक्कान्न बनाकर थालों में सजाये हैं। अंग पर उन्होंने रंग विरंगे चमकीले बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र पहिन रखे हैं, मनोहर गीत गाती हुई वे चली जा रही हैं। वेणु के स्वर के साथ भाँति २ के बाजे बजरहे हैं, सुर ताल की जमावट है। गोप, ध्वजा-पताका, छत्र-चमर लियेहुए कोलाहल करते जा रहे हैं। कृष्ण के चारों ओर बालकों की टोली कमल पर मधुकर-माला सी शोभित हो रही है। इस प्रकार गोवर्द्धन-घर लाल अपनी सुषुमा से त्रिशुभ्वन को मुग्ध कररहे हैं।

५३

जिस समय मदनगोपाल गोवर्द्धन-पूजा करने लगे, ताल बज उठे, मृदंग ठनक उठे, शंख-घोष गूंज उठा और मुरली कूज उठी। मस्तक पर कुंकुम का तिलक लगाए, नवीन आभूषण वस्त्रों से सजे-सजाए गोप-गोपियों के ठड़ जमा हो गए। सुवर्ण मणियों के बीच नीलमणि के समान व्रज-ललनाओं में श्यामसुन्दर स्मणीय

लगते थे। हर्ष-मणि होकर गोप ज्वाल 'धोरी हो कारी हो' इन नामों से गायों को बुलाने लगे। उन्होंने लाल-पीले टिपारा सिर पर धारण किये थे। मधुर वाणी से वे गायों को बुलाते और खिलाने लगे। गोप ज्वाल परस्पर हरदी, दूध, दधि अक्षत छिड़कते थे, छोटे पैर पड़ते थे, बड़े आशीर्वाद देते थे। 'प्रिय गोवर्धन-धर! आप कई युगों तक गोकुल-राज करो' ऐसी शुभ कामनाएँ सब की प्रगट होने लगीं।

५४

परम उदार, गोप-वृन्द के रक्षक मोहन की गोवर्धन-पूजन के समय कुछ अपार शोभा हो गई। षट्-स व्यंजन उपहार और भोग रूप में रखे जारहे हैं, सभी गोप ज्वाल पूजा करके गिरि की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। कंचनवर्णी गोपिकाएँ पर्वत के चारों ओर विद्यमान हैं सो ऐसा लगता है मानों-उसने सुवर्ण का हार पहिन रखा है। प्रभु की परम स्मणीय छवि देखकर कामदेव भी ठिठककर रह गया।

५५

ब्रजके राजा नंदजी गोवर्धन-पूजा कर रहे हैं। बलभद्र और मोहन उनके आगे गोप-वृन्द सब समीप खड़े हैं। 'आज दीपावली का महोत्सव गोवर्धन-पूजा है, सभी को बुला लो' ऐसा आदेश दे रहे हैं, सभी ने अपने २ मनभाये वस्त्र अलंकार पहिने हैं। दूध दही के पात्र भरे रखे हैं, मीठी खीर भी अधिक मात्रा में बनाई गई है। इसी समय शिखर पर बिराजमान होकर, भोजन करते हुए सब को गोपाल के दर्शन होते हैं। सकल ब्रजवासी आनन्द-मणि होकर अपनी २ गायें खिला रहे हैं। इस प्रकार स्वकीय भक्तों का मनोरथ पूर्ण करते हुए श्रीगिरिधर ने गिरि गोवर्धन की पूजा की।

५६

## गोवर्द्धनोद्धारण (इन्द्र-मानभंग) —

नन्दलाल ने व्रज की रक्षा के लिये गोवर्द्धन पर्वत को धारण कर लिया। इन्द्र ने अपनी पूजा का भंग देखकर क्रोधित हो ग्रलय मचा देने के लिये मेघों को भेजा, सात दिन तक लगातार घोर वर्षा होती रही। पर श्रीकृष्ण ने शरणागत गोपी, गाय, ग्वाल बाल, बछड़ों की आत्मवल से ही रक्षा कर इन्द्र का अभिमान चूर कर दिया। अपना अधःपात होते देख इन्द्र ने गर्व का परित्याग कर दिया और अनन्यभाव से गोवर्द्धन-धरण के चरणों में आकर पड़ा।

५७

प्रिय गोपाललाल समग्र गोकुल का जीवन है। सुन्दर मुखारविन्द के दर्शन मात्र से हृदय स्तिंग्ध हो जाता है। वह तो गोपी ग्वाल सभी के आंखों का तारा है।

वह रूप की निधि, मनोरथों की सिद्धि है, और प्रेम की विधि का जानकार है। संध्या के समय धेनु-समूह लेकर जब घर आते हैं, कितने प्रिय लगते हैं? उसी गिरिधर ने तो शरणागत व्रज के परित्राण के लिये कोमल वाम कर पर गोवर्द्धन को सहज ही धारण करलिया था।

५८

इन्द्र-पूजा का भंग होते ही व्रज पर मेघों की काली रघटाए उमड़ आई। नंद के सलोने लाला पर इन्द्र ने चढ़ाई-सी कर दी। तब उन्होंने व्रज रक्षा के लिये पर्वत को नख पर उठाकर गाय, गोप ग्वालों को बचा लिया। वे सब मिलकर प्रभु की इस लीला का गान करने लगे।

५९

## श्रीगुसाईंजी की बधाई—

आज श्रीवल्लभ के द्वार पर बधाई है। अपनी अवतार-लीला को दिखाने के लिये पूर्ण पुरुषोत्तम का पुनः प्रागद्य हुआ है। सभी दैवी जीवों के भाग्य का उदय और निःसाधन जनों का उद्धार हो गया। प्रभु गोवर्द्धनोद्धरण, श्रीवल्लभाचार्य तथा श्री-विठ्ठलेश, यह तीनों निगमगम में कथित समस्त साधनों के फल-स्वरूप हैं।

६०

गोकुल में घर-घर बधाई हो रही है। श्रीवल्लभ के आत्मज रूप में पृथ्वी पर साक्षात् करुणा की निधि प्रगटी है। दर्शनकर ब्रजवनिताओंने मोतियों के चौक पूरे। साक्षात् गोवर्द्धनधर का प्रागद्य देखकर देवोंने पुष्प-पर्व की। गोपियां आशीष देने लगीं उनके हृदय में आनन्द नहीं समाता। श्रीगोवर्द्धनधर को सुख देने के लिये ही यह स्वरूप प्रगट हुआ है।

६१

बाल गोपाल के रूप में आजश्रीविठ्ठलेश प्रगटे हैं। यह कलियुग के निःसाधन जीवों के उद्धारक, सत्पुरुषों के प्रतिपालक, तैलंगद्विज-कुल के तिलक एवं रसस्वरूप श्रीवल्लभ-वंश के अलंकार हैं। ब्रज ललनाथों के आनन्दरूप श्रीगोवर्द्धनधर ही इस स्वरूप में प्रगट हुए हैं।

६२

आज फिर श्रीवल्लभ ने पुत्र रूप से प्रगट होकर अत्यन्त गूढ भगवत्सेवा रस का विस्तार किया है। आपने अपने दर्शन से स्वकीय जनों को पवित्र कर दिया—जन्मोत्सव के आनंद से घर-घर वंदन वार वंध गए। बंडी और चारण हर्षित होकर श्रीगिरि-धर की महिमा और गुण गाने लगे।

६३

अरे मन ! जो तुझे परमार्थ की चाहना है तो श्रीविष्णुलेश के चरण कमल का भजन कर। 'मार्ग' नाम से जितने भी पंथ चलते हैं—वे सब पाखंड हैं—काम के साधन हैं। सभी देवी—देवता को स्वार्थ से भजते हैं, हरि को नहीं भजते। श्रीभागवत और भजन की महिमा आपने बताई सो ही यथार्थ है। यह मार्ग तीनों लोकों में प्रसिद्ध है—इससे अनेक जीव कृतार्थ हुए हैं। तूने इतने दिन शरण आए बिना वृथा ही खोए—अब भी चेत।

६४

श्रीविष्णु प्रभुचरण के प्रताप से अब मुझे बाधा कष्ट नहीं रहा। मस्तक पर श्रीहस्त के रखने से सब अपराध नष्ट हो गये हैं। पृथ्वी पर महापतितों के उद्घारार्थ ही आपका प्राकृत्य है।

'कुंभनदास' तू अब आनंद में मग्न रह—तुझे डर नहीं—सब शत्रुओं को भी तूने जीत लिया है।

६५

### वसन्त-धमार—

शुभ दिन, घड़ी मुहूर्त श्रीपञ्चमी (माघ शु. ५) के दिन श्रीसाधिका ब्रजराज को वधाई है। बृन्दावन कुंज में श्यामा के साथ श्याम विहार कर रहे हैं, गुलाल उड़ रही और रसभरी वेणु बज रही है, कृष्ण गा रहे हैं। कंचनवल्ली के समान राधा श्यामतमाल से मिलकर विनोद कर रही हैं। प्रभु गोवर्द्धन और स्वामिनी दोनों स्वरूप मिलकर परस्पर प्रमुदित हो रहे हैं।

६६

श्याम के रमणीय शरीर पर चन्दन के छीटे कैसे सुन्दर लगते हैं। सुरंग अबीर कुमकुमा और केवडा के रज की चित्र-

कारी श्रीअंग पर मंडित है। नंदनंदन की शोभा देख कामदेव भी तन, मन न्यौछावर करता है। ऐसा लगाता है कि—गिरिधरलाल ने भाँति २ के रंगरंजित वस्त्रों से भूषित हो ब्रजभक्तों के मन को बांधने के लिये नये प्रकार की वेष-रचना की है।

६७

वसन्त ऋतु आई है। चारों ओर वन में वृक्ष पुष्प फूले हैं। कोकिला कूजती है, मधुप गुंजार कररहे हैं। सप्त स्वरों का गान सुनकर प्रत्येक पशु पक्षी के शरीर में उल्लास भर गया है। रसिक जन प्रसन्न होकर परस्पर मिलते हैं—काम सुख का कहीं अन्त दीखता ही नहीं। इस सुहावने समय को देखकर सखी स्वामीनीजी से शीघ्र चलकर नवल कंत गिरिधरलाल से मिलने के लिये प्रार्थना कर रही हैं।

६८

‘उस वन में चलिये, जहां शीतल, मंद, सुगंध यवन बह रहा है। वहीं यमुना—तट पर हरि तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। चारों ओर मन को हर्षित करने वाले गुलम कुसमित हो रहे हैं। राधे ! श्यामसुन्दर ने तुम्हारी शरीर—कान्ति के समान पीत पट धारण किया है। विविध स्वरों में भ्रमर शुक पिक बोल रहे हैं। प्रभु ताप की शान्ति के लिये अनेक प्रकार के शीतल उपचार कर रहे हैं।’

६९

हरि ब्रज—युवतियों के संग फाग खेल रहे हैं। बालकों के कोलाहल से कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता। सुगंधित कुमकुमा, अरगजा और चंदन के जल से भरी पिचकारियां एक दूसरे पर प्रसन्न चित्त से चलाई जा रही हैं। खेल में ड़फ, मृदंग, बांसुरी, किन्नरी आदि बाजों के स्वर में अपनी अधर—धरी मुरली की तान

मिलाकर नन्दनन्दन और भी रस बरसा रहे हैं। खेल की छीना-झपटी में हार टूट पड़ते और बख्त फट जाते हैं, कई गिर पड़ते हैं, क्रीड़ा आनन्द में मग्न होने से किसी को तन की संभार और घड़ी पहर का ध्यान भी नहीं है। इस प्रकार गोवर्द्धन-धर फाग की क्रीड़ा से सभी ब्रज-जनों को आनन्द-मग्न कर रहे हैं।

७०

गिरिवर-धरण बन में बसन्त खेल रहे हैं—उसमें बंदन\* अबीर, कुमकुमा आदि रंग उड़ रहे हैं। सुन्दर ललित अंगो पर लगे हुए विविध रंगो से प्रभु एसे लगते हैं—मानों कामदेव अपने विविध रंग के पांच बाणों को सजा कर लड़ने आया हो। मनोहर यमुना का तट, रमणीक बनस्थली, लता वृक्ष और रंग २ के पुष्प अपनी २ पूर्ण शोभा विखरा रहे हैं। मीठे स्वरो में भ्रमरों का गुंजन और मधुरस-मुग्ध कोयल के कूजन से कोलाहल होने लगा।

इस सुहावने समय धोष—सीमन्तिनी बहुमूल्य पट आभूषण पहिनकर हावभाव से मधुर गीत गाती हुई आने लगीं। उनकी दुमक २ चरण—गति से प्रसन्न होकर सुवर्ण के नृपुर भी मुखरित हो उठे। उनके मुखकमल अधरविम्ब और मृदुल कपोलों की आभा से चंचल कुण्डल भी झलमल—झलमल करने लगे। शोभा की सीमा नंद-नंदन इस प्रकार ब्रज—युग्मियों के चित्त को लुभाते हुए आनंदित हो बसन्त—क्रीड़ा करने लगे।

७१

बसन्त के मोहक अवसर को देख ब्रज—सुन्दरियां मान छोड़ ब्रज की ओर आने लगीं। सुंदरता की राशि श्रीराधाकिशोरी

\*बदन—आम की मंजरी के पराग से तयार किया हुआ चूर्ण।

के रमणीय नबल आभूषण शङ्गार धारण करने से तन की कान्ति और भी दुगुनी हो उठी। द्रुमलता से सघन, भ्रमर—गुंजरित उस निकुंज में जाकर श्रीराधिका श्रीगिरिधरलाल से मिलकर अत्यन्त आलहादित हुई।

७२

श्रीगिरिधरलाल रस मग्न होकर राधा—संग विमल वसंत—क्रीडा कर रहे हैं। अबीर, गुलाल डालकर अरगजा छिरक कर गोपी घाल सब को रंग से भर रहे हैं। ताल मृदंग, अधौटी, बीणा, मुरली की तान छिड़ रही है। इस प्रकार यमुना—तट पर क्रीडा करते हुए प्रभु के सौन्दर्य और हावभाव को देखकर काम भी लज्जित हो जाता है।

७३

श्रीगिरिधरलाल मरस वसन्त खेल रहे हैं। कोयल बोल रही है, यमुना तट पर तमाल, केतको, कुंद आदि फूल रहे हैं। वेणु, मृदंग ताल स्वर में मुरली की मधुर तान सुनकर ब्रज—बालाएँ नवीन साज—सिंगार कर चली आ रही हैं। मदनगोपाल चोवा, चंदन, झरगजा छिरक रहे हैं, प्रेम से मिलकर परस्पर फूल मालाएँ पहिना रहे हैं। इस क्रीडा के दर्शनकर देवगण ब्रज—कुमार पर पुष्प—वृष्टि कर रहे हैं। श्यामसुन्दर सब के मन को प्रसन्न कर रहे हैं, उनकी बलिहारी है।

फाग—

७४

ब्रज—युवतियों के साथ ‘हो हो होरी’ बोल कर नंदलाल फाग खेल रहे हैं। चारों ओर घालों के टोल नटनारायण राग, चैती और फाग के गीत गा रहे हैं। आवज, उपंग, बांसुरी, बीणा, चंग, संख, झांझ, डफ, मृदंग, होल आदि वाद्यों के ताल में श्री-गोपाललाल होरी-गीत गाते हैं वेणु से भी वह तान निकालते हैं।

ब्रजवनिताएँ अमूल्य पट आभूषण पहिनें हैं जिनकी शोभा अकथरनीय है। ब्रज की गली-गली में रंग की पिचकारियाँ छोड़कर 'ही-ही हू-हू' करते घ्वाल डोल रहे हैं। रसमत्त होकर घ्वाल गोपियों के आभूषण और वस्त्र खेच लेते हैं। किसी का हार टूट जाता है, तो किसी की भुजा झकझोर और कलाई मरोड़ जाती है।

इस प्रकार समस्त गोकुल में रंग की कीच मचो है, अतुलनीय अनुराग उमड़ रहा है। गिरिधर प्रभु का इस प्रकार ब्रज में प्रेम-कल्पोल देखने को देव-विमान स्थगित हो जाते हैं।

७५

'देखो सखियो ! होरी का अवसर है कोई बुरा न मानें'। ऐसा कहकर श्याम किसी का हार तोड़ते किसी की चुरियाँ चरकड़ कर देते हैं, तो किसी की खुंभी ले भागते हैं, आँखों में पिचकारी तानकर मार देते हैं। वह खेल में किसी की नक्वेसर झटकते हैं किसी का स्पर्श करते हैं तो किसी की पीछे से बेनी खेचते और कंठसरी लेकर भाग जाते हैं। इस प्रकार का ऊधम करते हुए भी गिरिधरलाल सब को आनंदित कर रहे हैं।

७६

'हो ! हो ! होरी है' बालकों के साथ हल्ला मचाते हुए गोवर्धन-धारी फाग खेल रहे हैं। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजकर ब्रज-रमणियाँ आ रही हैं। उनकी मांग का सिंदूर झलक रहा है।

खेल में ताल, मृदंग, अधौटी आवज और डफ किडकिड, 'थुंग-थुंग धम्म' शब्द कर रहे हैं; तो वीणा वेणु स्वर-मंडल अपनी मधुर गुंजार कर रहे हैं। श्याम के अधर-धरी मुखली तो सातों स्वरों की तरंग छलका रही है। अबीर कुमकुमा बंदन और नाना

प्रकार के रंगों से मंडित त्रिभुवन-मोहन श्याम अपने कोटि कन्दर्प-लावण्य से मन मोह लेते हैं।

७७

माई ! 'हो हो होरी है' बोल-बोल कर होरी खिलाओ। जांझ, बीन, पखावज, किन्नरी और डफ मृदंग, बजाकर चांचर का खेल प्रारंभ करो। चोवा चंदन मृगमद घोल २ कर छिड़को और एक दूसरे पर अबीर गुलाल उड़ाओ। नंद के लाडिले श्याम फाग खेल खेल रहे हैं, गोप-वेशधारी मनमोहन का यश गाओ।'

नवीन वस्त्र आभूषण पहिन कर ब्रजवनिताएँ कह रही हैं कि, चलो-नन्द के घर चलकर लाल गिरिधर पर अपना सर्वस्व न्योछावर करें।

७८

अब तो चारों ओर रंग मच गया है 'हो ! हो ! होरी है' कह-कह कर होरी खेल रहे हैं। सब ब्रजधाराएँ मनमोहन का रंग-हंग देखकर सिमिट कर इकट्ठी हो गई हैं। खेल-खेल में ही सब ने सब कुछ कर डाला, अब बाकी क्या बचा है ? स्त्रियाँ रस-भरी गाली गाती हैं। होरी का छैला चेष्टाए कर बेढ़ंगा नाच रहा है।

गुलाल लेकर मुख पर मली जा रही है। दोनों नेत्रों में काजर आंजा रहा है, राधिका ने पिचकारी छोड़कर श्यामसुन्दर को सरावोर कर दिया है। रसनिधान ब्रज का लाडिला तो शोभा का समुद्र हो रहा है, उसे देखकर कामदेव भी मन में लज्जित हो जाता है।

७९

कुंवर कन्हैया होरी खेल रहे हैं। चोवा, चंदन, अगर, कुम-कुमा से आंगन में कीच मच गई। ललिता आदि सखियों की गुलाल उड़ाने की शोभा दर्शनीय हो जाती है। वे पिचकारी का केसरी रंग एक दूसरे पर छिड़कती जाती हैं। युवक—युवती सभी ने एड़ी से लेकर चोटी तक नये वस्त्राभूषण पहिने हैं। गिरिधर की शोभा पर तो निछावर हो जाने का मन हो जाता है।

**डोल—**

८०

मोहन के मन में डोल—झलने से आनन्द उमड़ पड़ा है। एक ओर वृषभानु—नन्दिनी दूसरी ओर ब्रज—चन्द्र विराजमान हैं।

सोने की डांडी पकड़ कर ललिता, विशाखा, प्रिया—प्रियतम को झुलाती जाती हैं। युगल स्वरूप आपस में देखकर मन्द स्मित कर वार्तालाप कररहे हैं।

उड़ती हुई गुलाल, कुमकुमा मृदुल कपोलों पर लग जाता है। गोपाल पर रंग और फूल बरसाते समय जय—जयकार का कोलाहल हृदय के आनन्द को बढ़ाता है। परस्पर प्रेमरस की वृद्धि होती है, उसकी उपमा त्रिभुवन में नहीं है।

‘कुंभनदास’ लाल गिरिधर की वानिक पर बलि २ जाता है।

**फूलमण्डली—**

८१

आज लाल गिरिधर फूलों के चौबारे में विराजे हैं। कुरवक बकुल, मालती, चंपा, केतकी, निवारी तथा जाई जुही, केवडा रायबेल आम आदि सुगंधित पुष्पों की महक उठ रही है। त्रिविध मंद समीर में पिक शुक के बोल और मधुकरों की

गुंजार व्याप रही है। राधा-रमण रसमग्न होकर विलास कर रहे हैं—सामने मयूर नाच रहे हैं। अनुपम शोभा से युक्त श्री गिरिधिर पर कोटि मन्मथ निछावर हैं।

### श्रीमहाप्रभुजी की बधाई—

८२

श्रीलक्ष्मण भट्टजी के घर आज बधाई है। सुखदाता पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ का प्राकृत्य हुआ है। लक्ष्मण भट्टजी सभी को दान मान से सम्मानित कर रहे हैं। सुख की लता लहलहा उठी है। इनके प्राकृत्य से श्रीगोवर्धनधर के हृदय में आनन्द नहीं समाता।

८३

अवतार-स्वरूप श्रीवल्लभ का गुणगान करो। सकल विश्व के आधार श्रीगोकुलपति गोकुल में साक्षात् प्रगटे हैं। महाप्रभु ने सेवा-भजन की रीति बताकर जीवों के जन्म मरण का व्यापार ही मेंट दिया है। श्रीप्रभु गिरिधिर के इस प्राकृत्य से भवसागर से पार उतारने का मार्ग अब सरल हो गया—मुक्ति का द्वार खुल गया है।

८४

श्रीवल्लभ की बलिहारी है। आप अपने वचनामृत सींच कर सब का दुःख हरलेते हैं। आप निकुंज-विहारी कृष्ण की लीला का विस्तार करते हैं। प्रभु गोवर्द्धन-स्वरूप! ‘कुंभनदास’ तो आपकी विना मोल की दासी है।

८५

श्रीवल्लभ प्रकट न होते तो प्रभु की लीला ही पुरानी पड़ जाती, सब लोग उसे भूल जाते। आपके प्राकृत्य-विना वसुधा

स्थनी लगती। जिस प्रकार कुन्दन पर चुनी (जड़ाव का हीरा) सुन्दर लगता है उसी प्रकार आप से भूतल की शोभा है। जिनका यश मुनिगण गाते हैं, उनकी स्तुति 'कुंभनदास' कहाँ तक कर सकता है?

### अक्षय तृतीया—

८६

श्रीगिरिधर सुभग अंग पर चंदन धरा रहे हैं। उनके बाई और कंचनबहुरी-सी श्रीराधा सुशोभित हैं।

अक्षय तृतीया के दिन आज सर्व प्रथम ही अंग-प्रत्यंग पर चंदन की चित्र-रचना की गई है। श्रीहरि ने श्वत वाणा और पाण धारण की है। वक्षस्थल पर केसरी मलयागिर चंदन का लेप किया है, दोनों स्वरूपों ने चंदन की मालाए धारण की हैं। रसिक शिरोमणि प्रभु ब्रज-वनिताओं के साथ हास्य-विलास कर रहे हैं।

८७

ठीक दुपहरी में खस-खाना में भी विहारी विराजमान हैं। कटि में खासा का पिछोरा और श्रीमस्तक पर चंदन से भींजी कुलह धारण कर रखी है। वृषभान-दुलारी श्याम के कोमल तन पर चंदन लेप कर रही हैं, सुगंधित जल के फुँहारे छूट रहे हैं। प्रीतम फूलों के पंखा छुला रहे हैं। सघन लतादुमों से मालती-पुष्प झररहे हैं। श्रीराधा गुलाबों की माला गूंथ रही हैं। श्रीगिरिधर उनकी छवि पर रीझ जाते हैं, तन-मन न्यौछावर करते हैं।

### रथयात्रा—

८८

रथ पर विराजमान मदनगोपाल की शोभा क्या बर्णन की जा सकती है? मोरमुकुट, वनमाला, पीताम्बर और तिलक

सुशोभित है। कंठ में गजमुक्ता की माला नीलगिरि पर बहती हुई स्वच्छ गंगा की धारा जैसी लगती है। वृन्दावन की सम्य भूमि में प्रभु के संग राधिका, घन के साथ दामिनी के समान छवि पा रही हैं।

रथ के शब्द को सुनकर शुक, पिक, मयूर बोल उठते हैं, त्रिविधि पवन बहरहा है, इन्द्र पुष्प-वर्षा कररहा है। गिरधरलाल की इस शोभा की बलिहारी है।

८९

रथ पर घनश्याम और गौरवर्ण श्रीराधा की जोड़ी शोभित है। इस समय देखने को आकाश में देव-विमान इकट्ठे हो गये, सुर, मुनि, गन्धर्व 'जय-जय' का उचार कररहे हैं।

'कुमनदास' इन दोनों स्वरूपों की वानिक वर बलि जाता है।

९०

सुसज्जित रथ पर त्रिभुवन के नाथ और उनके आसपास बहिन सुभद्रा और बलभद्र चिराजमान हैं। सब सखा भी जहाँ तहाँ बैठे हुए हैं। रथ के ऊपर सोने के कलश की ओर भीतर मरकत श्यामप्रभु की छवि दर्शनीय है। नीलाम्बर तथा पीताम्बर और श्रीहस्त के सुदर्शन चक्र का तेज अभूतपूर्व है। दोनों भाई नील शिखर पर इन्द्र के समान दीप होते हैं।

'कुमनदास' इनके यश का वर्णन करता हुआ तृप्त नहीं होता।

**वर्षा-ऋतु वर्णन—**

९१

सखी ! रिमझिम २ मेह बरस रहा है, प्रीतम के साथ भींजते चलने में बड़ा आनंद मिलेगा। इधर चातक, पिक, मयूर बोलते हैं, उधर मेघ की मधुर गर्जना होती है, उसी प्रकार पवन भी

शीतल है। जैसी गगन में काली घटा उमड़ रही है, वैसी ही पहिनी हुई चूनरी से वेश स्मणीय लगेगा। ऐसे समय रसिक सुन्दर वर प्रभु गोवर्धन भी हृदय को प्रिय लगेगें।

९२

‘मोहन! यह नई साड़ी बरसा में भींजेगी। बाबा वृषभानु ने अभी दी है—सो पहिन कर आई हूँ। अपना पीताम्बर मुझे उढ़ालो, यह साड़ी भींज जायगी, चित्राम—रंग बिगड़ जायगा, घर जाकर क्या कहूँगी? मुझे तो डर लगता है,’ प्रिया के इस वचन को सुनकर गोवर्धनधर ने प्रसन्न होकर उन्हें पीताम्बर में छिपा लिया।

९३

गोवर्धन पर मुदित मयूर बोल रहे हैं। मंद घोर सुनकर मन के उछास से वे जहां तहां नाचने लगते हैं।

मेघ—घटा—सी श्रीअंग की शोभा, दामिनी—सा दमकता पीताम्बर, इन्द्र धनुष—सी वनमाला, और वक—पंक्ति—सी मोतियों की माला शोभित होती है। ऐसे समय नवल घनश्याम सुन्दर प्रेमनीर की वरषा कररहे हैं।

९४

श्रीराधिका नवल तन पर कस्तुभी साड़ी पहिनें हरियाली भूमि पर चन्द्र ( इन्द्र ) वधु—सी लगरही हैं। हरि के निकट ठाड़ी मृगलोचनी राधा दर्शन से मन मुग्ध करलेती हैं।

जैसी सुहावनी वर्षा ऋतु है वैसी ही घन—घटा, और वैसी ही युगल स्वरूप की वानिक को क्या उपमा दी जाय? विचित्र वेश—धारिणी, स्वामिनी श्रीराधा का मुखकमल श्रीहरि इकट्क निहार रहे हैं।

९५

‘देखो सखी ! यह मेघ चारों ओर से झड़ी लगा रहे हैं । घटा की उठान और बिजली की कोईध से आकाश छा गया है । रस की बूंदे धरती पर पड़ने से व्रज-जनों को अच्छा लगता है । एसे सुहावने समय प्रभु गोवर्द्धनधर मलार राग छेड़ रहे हैं ।

९६

‘प्यारे कान्ह ! मुझे अपने कंधे का कंबल दे दो ? रिमझिम २ बरसा से मेरी कसूंभी साड़ी भींजी जारही है । मेघ-घटा और गर्जना से डर लगता है ।

‘कुंभनदास’ कहते हैं कि—गोवर्द्धनधर साथ के ज्वालों के डर से अपना कंबल प्रियतमा को उढ़ा नहीं पाते ।

९७

आज व्रज पर सलोनी घटा छाई है । नन्ही नन्ही बूंदें और और दामिनी की चमक सुहावनी लगती है । आकाश गर्जना-रूप मृदंग बजाता है, तो मयूर नट अपनी कला दिखाता है । उसके ताल स्वर में चातक, पिक तान छेड़ देते हैं । इसी समय मदन भट (योद्धा) भी खंभ फटकार आ कूदता है । खेल का जमघट-सा जुड़ जाता है, नंदलाल ऊँची अटारी पर विराजे हैं, श्रीअंग पर पीत पट, मस्तक पर कसूंभी पाग शोभित है, सभी उन्हें भेट समर्पित कर रहे हैं ।

९८

माई ! गोवर्द्धन पर मयूर बोल रहे हैं । काली २ घटा सुहावनी लगती है । तेज पवन भी चल रहा है । श्याम घन के तन में दामिनी दमक रही है, थोड़ी २ बूंदे पड़ रहीं हैं । गोवर्द्धन-धर को देखकर मेघ की भ्रान्ति से चातक भी बोल उठते हैं ।

९९

प्रिया प्रीतम सरस वार्ता में मग्न होजाने के कारण वर्षा से भींजने लगे। सघन कुंज के द्वार पर खड़े २ पत्तों की छाया से अपने अंग को बचा रहे हैं। श्यामा श्याम उमंग में रसमत्त है, गीले वस्त्र उनके श्रीअंग से जाकर चिपट गये हैं। गोवर्धनधर इस समय प्रेमभरी चेष्टाओं से और भी स्नेह की वृद्धि कर देते हैं।

१००

युगल स्वरूप भींजते हुए कुंज के भीतर आरहे हैं। श्याम सुन्दर ने वर्षा से बचाने के लिये वृषभानु-कुंवरी पर कांबरी उढ़ाली हैं। इस प्रकार हेल-मेल और परस्पर प्रीति से दोनों पुलकित होने लगे। इसी समय प्रधु श्याम राधिका को छल से छोड़कर छिप जाते हैं।

१०१

‘मैं अपने नेत्रों से दुलहिन राधिका की सुरंग चूनरी और मोहन का उपरेना भींजता हुआ कब देखूँगी? श्यामा श्याम दोनों वरषा में कदम्ब के नीचे खड़े भींजते होंगे—मैं उन्हें बचाने का कुछ भी यत्न नहीं करूँगी? सखी! मैं इस प्रकार मन में सोच ही रही थी कि—मेघ-घटा विरकर आगई।

१०२

अरी आली! ये मयूर भाग्यशाली हैं। इनके पंखों का बना मुकुट नंदकिशोर मस्तक पर धारण करते हैं। ये सभी ब्रजवासी भी धन्य हैं जो—हरि का मुखचन्द्र देखकर नेत्रों को सफल करते, आठों पहर। श्यामसुन्दर के साथ हिलमिल कर खेलते और आनन्द से किलोल करते हैं। ब्रज की ललनाओं के

सौभाग्य की भी कहां तक सराहना की जाय ? जो-हरि-गुणगान में लीन रहती हैं—प्रभु इनके मन को चुराकर इनके साथ विहार करते हैं ।

१०३

लाल गिरिधर ! देखो मेह बरसने से मेरी सुरंग चूनरी भींज रही है, अब मुझे घर जाने दो । मनमोहन ! तुम्हारे अटपटे विचार से मेरे मन में सन्देह—सा होजाता है । प्रभु गोवर्धनधारी ! तुम सुख से राज करो यही हमारी प्रीति—मेरी शुभ कामना है ।

१०४

‘श्याम ! सुनो तो ? वर्षा पास में आ गई । मेरी रंग—रंगीली चूनरी भींज जायगी । मेरे ऊपर अपना पीत पट उढ़ालो । मोहन ! मुझे बिजली से डर लगता है, मुझे अपने पास खड़ी कर लो ।’

कुंभनदास कहते हैं—इस प्रकार वाग्विनोद करते, गिरिधर-लाल से गोपी का अधिक स्नेह बढ़ गया ।

१०५

‘अरे सखी ! देख, अचानक शरीर पर बूँदें पड़ने लगीं । मैं सुख से सोरही थी, गड़गड़ाहट से मेरी नींद खुल गई । दादुर, मोर पपीहा बोल उठे और मधु के लोभी भँवरा गूंजने लगे ।’

ऐसा कहकर चित्त में स्नेह उमड़ने से वह वड़भागिनी गोपी लाल गिरिधर के समीप जा पहुंची ।

हिंडोरा—

१०६

सुंदर हिंडोरना में नागरी नागर झूल रहे हैं । उनके अंग २ की शोभा सुखद है । श्यामसुंदर के साथ भामिनी मेघ-दामिनी जैसी शोभित है, रमणीय वर्षा ऋतु है । पीत पट और लाल

साड़ी की उड़ान अनोखी छबि देरही है। खंभे, डांड़ी, मरुआ सभी रबों से जड़े हैं। ललिता-आदिक सखियाँ गिरिधर प्रभु का यश गाती हैं। इस शोभा को देखकर रतिपति भी लजित हो जाता है।

१०७

माई ! युगल किशोर हिंडोरा झूल रहे हैं। ललिता चंपक-लता आदि व्रज-नारियाँ झोटा देरहीं हैं। एक ओर भारी मेघ-घटा उठ रही है। उधर गोपियाँ गा रही हैं। इस शोभा को देख २ कर गोपियाँ मुग्ध हो जातीं हैं। गोवर्द्धनधारी हिंडोरा झूल कर सब को प्रसन्न कर रहे हैं।

१०८

व्रजनारियो ! हरि हिंडोरा झूल रहे हैं, सावन में छोटी २ फुहियाँ पड़ रही हैं हरियाली छा रही है। नवीन बन, नवीन घन-घटा, नवीन ही चातक पिक पक्षियों के बोल हैं, उसी प्रकार नवीन कस्तुभो साड़ी पहिरें नंदकिशोर के वाम भाग में वृषभानु-दुलारी शोभित हैं। मणि जटित सुवर्ण के खंभ, पटेला और डांड़ी सजी हुई हैं। लाल गिरिवरधरण धीरे २ झोटा दे-देकर झूल रहे हैं।

१०९

व्रज-नारियाँ हरि के संग झूलने आई हैं। इन मृगनैनियों ने सुन्दर आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र पहिने हैं। सुवर्ण के खंभों की रत्न जटित डांड़ी और सिंहासन पर विराजे गोवर्द्धनधारी मधुर २ झोटा दे-देकर झूल रहे हैं।

११०

माई ! नागर नंदकिशोर गिरिधरलाल रत्नखचित पटली पर

बैठे हिंडोरा झूल रहे हैं। घनश्याम के तन पर पीत पट और श्यामा के सुंदर वपु पर सुरंग साड़ी दीस हो रही है। वे गलवहियाँ दिये मंद हास्य कर रहे हैं। चारों ओर खड़ी घोष-नारियाँ धीरे २ उन्हें झुला रही हैं। गिरिधरलाल की झूलने की शोभा उनके मन को मोहित कर रही है।

१११

माई! सुवर्णमणि-जटित हिंडोरा में श्यामा श्याम दोनों स्वरूप झूल रहे हैं। ब्रज-सुंदरियाँ गा रहीं हैं सुरमण्डल के मीठे शब्द के साथ ताल, पखावज, झाँझ, बांसुरी बज रही है। पुलकित होकर प्रिया श्रीराधा और प्रीतम प्रभु गोवर्धनधर रसिक-प्रीति का निर्वाह कर रहे हैं।

११२

प्रियतम के संग स्वामिनी सरस हिंडोरा झूल रही हैं। चारों ओर साज-सजी खड़ी होकर ब्रज-युवतियाँ धीरे २ उन्हें झुला रही हैं। नीली साड़ी के साथ पीताम्बर घन-दामिनी जैसी शोभा दिखाकर चित्त चुरा लेता है। गिरिधर प्रभु के परस्पर देखने पर छबि की तरंग-सी उठने लगती है।

११३

नटवर सुरंग हिंडोरा झूल रहे हैं। प्रिया और प्रियतम के चरण एक दूसरे की पटली पर सटे हुए हैं। पीत पट, बनमाला और सुरंगी साड़ी अपनी २ आभा प्रकट करते हैं। सजल घन सरीखे श्याम और कनकवर्णी राधिका की छबि मानिनी के मान को खंडित कर देती है। अनन्त दीसि से झलकते कुँडलों को धारण किये दम्पति श्रीगिरिधर और राधिका की यह अनोखी प्रीति दर्शनीय है।

११४

नवल लाल के संग व्रज-रमणी श्रीराधा हिंडोरा झूलने आई। सुंदर पाग की लपेट और चूनरी की रचना दर्शनीय है। प्रियतम के संग सगसमाकर मधुर वार्तालाप करती हुई श्रीराधा उनका चित्त चुरा लेती हैं। युगल स्वरूप रमक २ आनन्द से झूलते और मुख मोड़कर मन्दहास्य-पूर्वक वार्तालाप करते जाते हैं।

११५

‘प्रियतम ! मुझे भी थोड़ा झूलने दो। श्यामसुन्दर ! मुझे जैसे डर न लगे वैसे झोंटा देकर रमककर मुझे झुला दो। मैं कभी अकेली पढ़ुली पर नहीं बैठी। सखियों को भी पास बुलाकर उनके गीत के साथ मुख्ली मिलाकर मलार राग की तान छेड़ना, मैं झल्लंगी। प्रियतम ! फिर मैं उतस्कर आपको भी वैसे ही झुलाऊंगी, जिससे आप प्रसन्न होंगे’।

११६

माई ! नवल किशोर सजे हुए झूला पर प्रसन्न होकर श्रीराधा को झुला रहे हैं। उनके तन पर नवल कसंभी साढ़ी और चारों ओर नवीन हरित भूमि शोभित है, कंचन के खंभों के पास खड़ी हुई सुन्दरियाँ गीत गा रहीं हैं, वन में अनेक पक्षी कल रव कर रहे हैं। मेघ की नई घटा से गर्जना के साथ थोड़ी २ बूँदे पड़ जाती है। राधा के अंग पर चूनरी और श्याम के अंग पर पीताम्बर कव रहा है। नव आभूषणों से सजित प्रभु गोवर्धनधर रत्न-खचित पटेला पर विराजकर रस में मग्न मन्द २ झोंटा दे रहे हैं।

११७

श्यामा श्याम दोनों हिंडोरा झूल रहे हैं। गौर श्याम शरीर, कसंभी और पीत वस्त्र से शोभित वे दोनों साक्षात् आनन्द-मग्न

काम की मूर्ति हैं। हिंडोरा में मरकत मणि से जड़े हुए खंभ, रमणीय डांडिया, पिरोजा की जटित पटली और मनोहर बहुरंगी झूमक झूम रही है। ललिता-विसाखा झोंटा देकर रस-भरे गीत गा रही हैं। पिक चातक मयूर पक्षी मधुर बोल रहे हैं। देवगण विमान पर चढ़कर इस कौतुक को देखते और प्रभु श्रीगोद्धूनधर पर पुष्प-वृष्टि करते हैं।

११८

ब्रज-वनिताएँ सोलहों शश्नार सज्जकर प्रभु को हिंडोरा छुलाने आई हैं। वे रमणीय लग रही हैं। श्याम मनोहर श्यामा के संग सजे हुए चिरजे हैं। इनके नखशिख-सौन्दर्य को देखकर कोटि कन्दर्प लज्जित होते हैं। प्रसन्न होकर सखियाँ छुलाती और गीत गाती हैं। तान, मान, बंधान आदि संगीत वाद्य-भेदों के साथ मृदंग बज रहा है। यमुना-तट पर निकुंज में हर्ष-उल्लासित गुणनिधि राधा और गिरिवरधारी झूल रहे हैं—कुंभनदास कीर्तन गा रहा है।

११९

वर्षा-क्रतु, कुंज-सदन, यमुना-तट और बृन्दाविपिन में ब्रजराज-कुंवर हिंडोरा झूलरहे हैं। कनक के खंभा, सुन्दर चार डांडियाँ, रम्य झूमक और नवरंग पटुली अमूल्य लगरही हैं। वेषभूषा से सजे गोपाललाल, नवल ब्रज की सीमन्तिनी और चारों ओर गोपियों के टोल कैसे सुन्दर लगते हैं? नटनारायण राग का आलाप, सुन्दर नृत्य, ब्रजनारियों का बारी-बारी से झुलाने का शब्द मुरली पखावज की ध्वनि, आकाश को गुंजारित करती है। स्वर-संगीत से युवतियाँ मत्त हो जाती हैं।

इस विलास को देख कर 'कुंभनदास' गिरिधर का गुणगान करता है।

१२०

नन्दकिशोर ! आज नया हिंडोरा सजाया है । हरियाली भूमि में कल्पद्रुम-से वृक्ष दीख पड़ते हैं । पारिजात मंदार के फूलों पर भौंरा मंडरा रहे हैं । हंस, चातक, मोर, कोकिला, शुक आदि पक्षी यमुना-तट पर मधुर शब्द कर रहे हैं । मल्लिका, मालती, चंपक, आदि वृक्ष-लताएं लहलहा रही हैं । घन-घटा उमड़ी और इन्द्र-धनुष निकला है । सुगंधित पवन बहरहा है । रत्नजटित शोभित हिंडोरा में प्रसन्न चित्त गिरिधिर के संग राधिका विराजमान हैं । वेणु, वीणा, मुरज, मृदंग, आदि वाद्य बजरहे हैं । सुंदर सरोवरों में कुमुद-कलहार फूल रहे हैं । संगीत में मल्हार राग जमरहा है । ललिता-विशाखा सखियाँ कुंज-कुंज में युगल स्वरूप को झुलाकर स्वयं झूल रही हैं ।

इस आनन्द-मग्न युगल स्वरूप के विलास को देखकर देवगण पुष्प-वृष्टि करते हैं, और 'कुभनदास' बलिहारी जाता है ।

### पवित्रा—

१२१

श्रीगिरिधरलाल पवित्रा पहिर रहे हैं । उसमें रंग-बिरंगे रेशमी फौंदना लगाकर घाल बड़े प्रेम से प्रभु को पहिना रहे हैं । उन के चारोंओर सखा-मण्डली कमल पर अलि माला-सी शोभित हो रही है । श्रीगोवद्वेनधर अपने सौन्दर्य से त्रिभुषन को मोह रहे हैं ।

१२२

श्रीगिरिधरलाल पवित्रा धरारहे हैं । वामभाग में विराज-मान श्रीवृषभानु-नंदिनी मधुर बचन बोल रही हैं । कमल पर अमर-पंक्ति के समान युगल-स्वरूप के चारोंओर सखा-मण्डली

विद्यमान है। श्रीनंदलाल और श्रीराधा अपने सौन्दर्य से - जगत का मन मुग्ध कररहे हैं।

१२३

श्रीगोकुलराय पवित्रा धारण कररहे हैं। श्याम-अंग पर पवित्रा के रंग की सुन्दर झलक वर्णनातीत है। बाई और लावण्यमयी वृषभानु-कुमारी बिराजी हैं। गोपियाँ दामिनी-सी दमक रही हैं। मनमोहन ने भक्तों के लिये अपनी गूढ़ लीला प्रगट की है। उनकी शोभा कही नहीं जा सकती।

१२४

गोकुल के राजकुमार गिरिधरलाल ने पवित्रा धारण कर अपने यश से तीनों लोकों को पवित्र कर दिया है। श्रावण शुक्ल एकादशी के दिन मंगलचार हो रहा है। सब बालकों के साथ सजधजकर प्रभु सिंहासन पर बैठे हैं। व्रज-युवतियाँ मोतियों के थाल भरकर गीत गाती हुई आ रही हैं। कहती हैं—प्रभो ! ‘प्रसादी पवित्रा प्रदान करो’ चिर जीवो-ऐसी शुभ कामना है।

**राखी—**

१२५

माता यशोदा बलराम और गोपाल के हाथ में राखी बांध रही हैं। सोने के थाल में कुमकुम-अक्षत लेकर नंदलाल को तिलक किया है। दोनों कुमारों के तनु पर सुन्दर वस्त्र-आभूषण और वनमाला शोभित हैं। यशोदा उनके शरीर पर मृगमद, चंदन आदि सुगंधित द्रव्य लगा रही हैं। सब सखियाँ श्यामतमाल के समान सुन्दर श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देरही हैं।

१२६

नंदरानी कृष्ण के कर में सुन्दर रत्नों से जड़ी मनमोहन को मनभावती राखी बांधरही है। उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत-सी दक्षिणा दी और प्रसन्न होकर श्रीगिरिधर के ऊपर न्यौच्छावर उतारी।

१२७

यशोदा मैया कृष्ण का सुन्दर शृंगार कर राखी बांध रही हैं। बार-बार वे चलैयाँ लेती हैं, प्रसन्नता मन में नहीं समाती। अनेक प्रकार के मिटान्न आगे धरकर कहती है—कृष्ण! आरोगो, बलदाऊ के भैया आरोगो। ब्रज-नरनारी वहाँ आकर शोभा देखकर नंदलाल को आशीर्वाद देकर कहती है—ब्रज के सुखदाता कृष्ण! तुम चिर जिओ।

इति वर्षोत्सव पद-  
सरल भावार्थ  
समाप्त ।



# लीला

\*

[ सरल भावार्थ ]

कलेज—

१२८

मनहरन श्यामसुंदर ! मैं बलिहारी जाऊँ, अब उठो कलेज कर लो । सभी तरह के पकवान और दूध, दही, माखन मिश्री तयार हैं । देखो कटि-पट में मेवा बांध लो बलदाउ के साथ खेलने जाओ । तुम्हारी क्रीड़ा से ब्रज-वासियों को आनन्द होता है । तुम नंद के नंदन, यशोदा के (हमारे) प्राणप्यारे कुंवर और भक्तों के देवाधिदेव हो ।

माखन चोरी—

१२९

“ हरि ! आज बड़े अच्छे २ हंग से आपको पकड़ा है, अभी तक खूब चुरा-चुराकर माखन खाया, इसी छोंके पर लपक गये थे ? ” ऐसा कहकर नूपुरों की आवाज किये बिना ही गोपी ने अचानक दरवाजा रोक लिया । बोली—“ दूध दही पीकर मथनिया फोड़कर अब तुम कैसे भागोगे ? श्यामसुन्दर ! भले फँसे हो ? ”

यह कहकर वह पकड़ना ही चाहती थी कि—गिरिधर ने दूध का कुछ उसकी आँखों पर फूकरके छोड़ दिया, गोपी के सँभलने के पहिले ही वे कीक देकर भाग गए ।

१३०

“ ओ हो ? तुम तो बचपन से ही चोरी सीख गए हो ? माखन दूध खाना-पीना छोड़कर अब तो बासन फोड़ने लगे ।

लाल ! तुमने हमारा सर्वस्य तो चुरा लिया और अब उलटी हमसे ही रार बढ़ाते हो ? ”

ऐसा उलहना सुनकर भी गोवर्धन-धर उस गोपी के ही संग लगे फिरते हैं ।

१३१

“ अरी ! कोई हरि की चपलता से बुरा मत मानना । बालकों के साथ नाचते नाचते आना और घर-घर का दही खाना तो उसका रोज का काम है । प्राण न्यौछावर करके भी नंद महर का वह ढोटा मिलै तो भी क्या कहना ? यही गोवर्धन-धर तो राधिका का प्रीतम है ” ।

क्रीड़ा—

१३२

कृष्ण कन्हैया चमचम करते आंगन में खेल रहे हैं । नीचे पड़रही अपनी प्रतिविम्ब-मूर्ति पकड़ने के लिये किलक कर दौड़ते हैं । किन्तु जब वह हाथ नहीं आती तब थककर वहीं लौट आते हैं । प्रभु की बाल-सुलभ लीला को देखकर माता यशोदा हँसती और मन्द मुसकाती हैं ।

१३३

“ सखी ! कुंज में जाकर अब गोपाल को मेरे पास बुलालाओ । खेलते २ उसे बहुत देर हो गई उसे साथ लिये बिना तू मत आना ? देख मैं उसी तरफ देख रही हूँ । अब जाकर गिरिधर को ले आओ उसे फिर न जाने दूँगी ” ।

१३४

“ लाल प्यारे ! आज बड़ी देर से आए ? कबकी तेरी बाट देख रही हूँ ? अब मैं तुझे बाहिर नहीं जाने दूँगी । तुझे देखकर

मेरा हृदय शीतल होता है । घर में ही बहुत से खिलौना हैं—बाहर न जाने का धरा है ? अभी एक गोपी उराहना देगई है ” ।

माता के इस कथन पर “ मैंने किसीका दही नहीं चुगया ” यों कहकर भी गिरिधर अपनी मन-मानी ही लीला करते फिरते हैं ।

१३५

“ अरी ? माई ! कन्हैया तो देखने में ही छोटा है । उसने कालिय नाग को नाथ कर यमुना-जल को निर्विष कर दिया । उसका शरीर कमल से भी कोमल है—फिर भी गोवर्द्धन धारणकर बूढ़ते ब्रज को बचाकर इन्द्र का मान मटिया-मेट कर दिया । यशोदा ! तेरा पुत्र तो कोई बड़ा देव है ? वह भक्तों का जीवन और हम सभी का सर्वस्व प्राण है ” ।

### ब्रजभक्त-प्रार्थना—

१३६

“ तुम भली भाँति गाय—दुह जानते हो । नंदनंदन ! रसिकवर ! चलो, मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूँ । तुम्हें आता हुआ देखकर मैया ने सोने की दोहिनी देकर मुझे भेजा है । यहीं पास में खरिक है—दूर नहीं जाना पड़ेगा ? नागर ! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेती हूँ ” ।

यह सुनकर गोवर्द्धनधारी उस गोपी की सुन्दरता पर मुग्ध हो गए, और मन से उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

१३७

“ कन्हैया ! तेरी सौगन्ध है—मैं अवश्य आऊंगी—अब जाने दो । श्याम ! सांझ को समय मिलते ही बछड़ों को छोड़ने के लिये निश्चित आऊंगी । जो—मेरे यहां लोगों की आवजाव नहीं होगी, तो मैं तुम्हें अवश्य बुलाऊंगी । देखो—संकेत के लिये

बालबच्चों को झूला झुलाने के लिए मैं ऊंचे स्वर से गाऊंगी । अभी देर हो जायगी, घर के लोगों से क्या कहूंगी ? प्रभु गोवर्धनधर ! उसी समय मैं तुम्हारे कृपा-रस का पान करूँगी ” ।

१३८

“ कान्ह ! हमारी गैया दुह दो । सात भाइयों में लाडिला समझकर मेरी माता ने मुझे तुम्हें बुलाने भेजा है । तुम बड़े उपकारी और संकर्षण के भैया हो । नंदननंदन ! तुम हाथ में कनक-दोहिनी ले लो । मैं बलैयां लेती हूँ । यद्यपि तुम्हारे गोधन ज्यादा है, दूध-दही, घैया खूब होती है पर गोवर्द्धनधारी ! थोड़ी-सी कृपा करो ” ।

### परस्पर हास्य-वाक्य—

१३९

“ गोपाल ! तुम्हारे संग अब कौन खेले ? मोहन ! रहनेदो । तुमने मेरी मोतियों की लर तोड़ डाली । बांह मरोड़ कर पकड़ लेना ही तुम्हें अच्छा लगता है ? मेरी चुड़ियां फूट गईं, अब म घर जाकर क्या कहूँगी ” ?

“ तू रिस क्यों करती है ? ला मैं फिरसे उन्हें जोड़ दूं ” प्रभु की इस बात को सुनकर वह गोपी मुख मोड़कर मुसकाती हुई चली गई ।

१४०

“ अरी ज्वालिनी ! तूने मेरी गेंद चुराली है । वख में छिपाकर तू चुपचाप सोगई ? ” कृष्ण के इस विनोद को सुन-कर गोपी बोली- अरे ! गोपाल ? इतना झूठ मत बोला करो, मैंने कब तुम्हारी गेंद ली है-देखो पराये अंग को हाथ लगाना ठीक नहीं है ?

## मुरली-हरण—

१४१

उसनींदे नंदनंदन के अंक से चतुर सुंदरी श्रीराधा मुरली चुरा रही हैं। बजते हुए नूपुरों को बंद करके धीरे-धीरे चरण रखती हैं। कंकण, किंकिणी आदि आभूषणों को हाथों से संभाल कर चलती हैं। गिरिधर के निमीलित नेत्रों को देखकर मंद हास्य करती हैं “प्रभु जाग न पड़ें, मुझे देख न लें” ऐसा सोचकर कौतुक करती डरती जाती हैं।

१४२

चतुर राधिका ने नंदकुमार गिरिधर के अंक से अचानक मुरली निकाल ली, पर उनको पता ही न चला। उस व्रज-सुंदरी ने बड़े यत्न से नूपुर और कंकणों की झनकार बंद कर ली, और वह मंद मुसकाती हुई मुरली लेकर धीरे-धीरे खिसक गई।

१४३

नव नागरी राधा ने निकुंज की ओर से निकलकर चतुराई से मोहन की मुरली चुराकर कहीं छिपा दी। मृदु मुसकान करके उन्होंने जो रसभरी बात कही उसे मुख से कहा नहीं जा सकता। गोवर्द्धनधर ने आज ही श्रीराधा की नवीन प्रीति का अनुभव किया है।

## प्रभु-खरूप वर्णन—

१४४

“सखि! श्याम सुन्दर के नेत्र सुन्दरता की सीमा हैं। वे अति स्वच्छ, चंचल अनियारे और सहज ही काम को लज्जित करते हैं। कमल, मीन, मृग और खंजन अपनी विशेषता पर गर्व करते थे, पर इन नेत्रों में सभी गुण देखकर वे इनके दास हो गए,

उन्होंने सर्वस्व न्यौछावर कर दिया । स्वानन्द में मग्न होकर गोवर्द्धनधर युगल लोचन से जब कुछ गृह भाव प्रगट करते हैं तब सहज ही ब्रज-युवतियों का मन खो जाता है” ।

१४५

“आली ! हरि के मुख के समान उनके सभी अंग मोहक हैं । हस्त और कपोलों की सुषुमा लोचन भर-भर कर देखो । सौन्दर्य-सिन्धु अतिशय विस्तृत होकर कहीं मर्यादा न छोड़ दे ? इस रूप-सिन्धु में रमणियों के नैन तरते-तरते थक गए, इसका पार ही नहीं पाते । शरद के कमल और चंद्र की उपमा देने का तो विचार ही नहीं उठता । लाल गिरिधर का तो रूप ही अन्तु और सलोना है” ।

१४६

“अरी ! श्याम के तन की शोभा तो देखो ? नंद-नंदन ने नवीन मेघ की सभी कान्ति छीन ली है । तडित के समान पीत वस्त्र, इन्द्र-धनुष के समान रंगवाली बनमाला है ? वक्षःस्थल पर मोतियों का हार आकाश में उड़ती बक-पंक्ति से क्या कम है ? रात्रि-दिन सौन्दर्य बारि बरसा कर यह मन की परिधि को सींचते रहते हैं । यही गोवर्द्धनधर ब्रज-जनों के जीवन है” ।

१४७

“सौन्दर्य की सीमा नंद-नंदन के मुख की आभा देखो । सखी ! वे अपने लोचनों से सहज ही मन हरलेते हैं । उन नेत्रों का स्वरूप-श्याम, श्वेत, अत्यन्त स्वच्छ और चितवन कुटिल है । ऐसा लगता है मानों शरद-कमल पर दो खंजन बैठे लड़ रहे हों । श्याम अलकावलि मधुप-पंक्ति-सी लगती है । अंग-अंग की शोभा का क्या कहना ? सौन्दर्य देखकर साक्षात् मन्मथ भी चरणों

में लोट जाता है। गिरिधर श्याम की शोभा-माधुरी, त्रिलोक की युवतियों को सहज ही बश कर लेती है”।

१४८

“हरि के मुख कमल का सौन्दर्य वर्णनातीत है। नख-शिख अंग के लावण्य को सोचते २ विधाता भी थक गया। यह पूर्ण शरद-चन्द्र, विकसित सरोज आदि सभी की शोभा हरलेता है। लाल गोवर्धनधारी वास्तव में सौन्दर्य की सीमा ही हैं”।

१४९

“हरि के लोचनों की कोई उपमा ही नहीं है। खंजन और मीन चंचलता में प्रसिद्ध हैं पर ऐसों की गिनती ही क्या है? राजीव, कोकनद, इंदीधर आदि जितने भी जलज हैं—वे सब सौन्दर्य को देखकर फीके हो जाते हैं। गिरिधरधर के लोचन बड़े सुदंग और रमणीय लगते हैं”।

१५०

“रंगीले, छवीले, रसभरे श्याम के नयन मुदित होकर चंचल हो रहे हैं। मत्त खंजन के समान ये दोनों किसी प्रकार वश में नहीं आते इनमें श्यामता, श्वेतता और ललाई झलकती हैं, चित्र-लिखित-से जान पड़ते हैं। प्रभु गोवर्धनधर के सुन्दर शरीर में ये कैसे सुन्दर लगते हैं”।

१५१

“क्षण-क्षण प्रभु की शोभा विलक्षण ही प्रतीत होती है। अरी सहचरी! जब देखो तभी यह नई दीखती है। इस पर दृष्टि ठहरती ही नहीं है। मैंने मन में बहुत विचारा पर इसकी कोई जोड़ी दीखी नहीं। गिरिधर तो सौभाग्य-सीमा और सिर-मौर हैं।”

१५२

“अरी माई ! शरद-सरोवर रूप शरीर में कमल मुख कैसा विकसित हो रहा है, उस पर मत्त खंजन जैसे युगल लोचन चंचलता दिखाकर आपस में लड़-से रहे हैं, चिकने और संवारे हुए केश मधुप-समूह सरीखे मंडरा रहे हैं”। इस प्रकार गिरिधरलाल युवतियों को स्वरूपानन्द का दान करते हैं ।

१५३

“कालिन्दी के तीर प्रातः गेंद खेलते आते हुए आनंद-कंद कृष्ण को देखा । उनके चरणों में नूपुर, कटि में पीत बसन, लाल उपरेना और मस्तक पर मयूर-चन्द्रिका शोभित है । गोवर्धन-धर ब्रज-सीमन्तिनियों से हास्य विनोद कर अपनी चारु चितवन से उनके हृदय के आवरण को दूर करते जाते हैं” ।

१५४

जमुना के तट पर खड़े हुए मदनगोपाल बेणु बजा रहे हैं । श्रीमस्तक पर टिपारा, कटि में लाल काछिनी, पीला उपरेना और वक्षस्थल पर वनमाला शोभित है । श्रीहस्त में लीला-कमल फिराते हुए कल गीत की तान लेकर प्रभु गोवर्धन-धर त्रिभुवन को मोहित कर लेते हैं ।

१५५

“आली ! कालिन्दी के तीर पर मैंने मदनगोपाल को देखा ? कक्षंभी पाग पीला उपरेना, और वक्षस्थल पर गज-मुक्तामाला लुठित हो रही थी । अंग २ का सरस रूप देखते ही मन मुग्ध हो जाता है” । इस प्रकार गोवर्धनधर लाल त्रिभुवन को मोहित कर लेते हैं ।

१५६

श्याम के मृदुल अंग पर महीन लाल रंग की परधनी शोभित हो रही है। पतली कटि में परधनी के ऊपर मोतियों की किंकिणी अधिक छबि बढ़ा देती है। प्रभु के मस्तक पर उज्ज्वल पाग और अलकावली मधुकर-पंक्ति-सी लगती है। प्रभु गोवर्द्धन-धर चंचल नयनों से ब्रज-युवतियों को वश करलेते हैं।

१५७

सखी ! तू देख ! मदनगोपाल आज नव निकुञ्ज में ठाढ़े हैं। वे परम रसिक, रूप की निधि सुन्दर श्यामलवर्ण और आनंद के पुंज हैं। उनके कमल सदृश आयत लोचनों की चंचल और सरस चितवन कैसी प्यारी लगती है? मंद मुसकान और मुख-शोभा पर कोटि कामदेव निछावर किये जा सकते हैं। उन्नत वक्षस्थल पर माला, हंस और गज की चाल, मधुर हास्य इन सब से सम्पन्न गिरिधर का सौन्दर्य हृदयारूढ कर 'कुंभनदास' प्रभु के मुयश का गान करता है।'

**श्रीखामिनी-खरूप वर्णन—**

१५८

आली ! तेरे लोचन चंचल हैं और उनकी कनीनिकाएँ (तारा) भी बड़ी बड़ी हैं। हरि के बदन-चंद्र को देखकर वे धूंघट के भीतर नहीं समाते। वे प्रतिक्षण खुले-से ही रहते हैं। दोनों कान आगे आकर उनका मार्ग न रोकते तो वे न जाने कहाँ तक बढ़ते चले आते? गिरिधर रसिक की कृपा-रस से सिंचित होकर यह अतिशय बड़रारे हो रहे हैं।

१५९

कुँवरि राधिके ! तू समस्त सौभाग्य की सीमा है। तेरे बदन पर शत-कोटि चन्द्र, नयनों के ऊपर खंजन, कुरंग निछावर

‘

करते हुए मन में कोई द्विषक्त नहीं होती। जंघाओं पर शत-कोटि कदली वृक्ष, कटि पर सिंह, मन्द गति पर मत्त गजराज और पुष्ट वक्षःस्थल पर कुम्भों को बारा जा सकता है। नासिका के लिये शत-कोटि शुक, दन्त के लिये कुन्दकली, और अधरों को देखकर पके हुए किंदुक फलों को न्योछावर कर उनके गर्व का भंग किया जा सकता है। काली सटकारी वेणी पर शत-कोटि नागिनें और ग्रीवा पर कपोत, कर-युगल के सामने करोड़ों कमल कुछ काम के नहीं हैं, लोक में समानता की कोई उपमा ही नहीं है।

स्वामिनी के नख-शिख सौन्दर्य का कहाँ तक वर्णन करें। गिरिधरलाल तो यही कहते हैं कि—क्षण २ मैं राधिका का मुख देखकर ही तो आनन्द मग्न रहता हूँ।

१६०

“सखि ! तेरे रूप की निकाई कहाँ तक कही जाय ? तेरा नख-शिख अंग-प्रत्यंग विधाता ने रचयच कर अञ्चुत ढंग से गिरिधरलाल के लिये बनाया है। चाल के लिये मत्त हंस, जंघा के लिये कदली-खम्भ और कटि के लिये मिंह की उपमा है, तेरा गौर तनु सौभाग्य की पराकाष्ठा है। श्रीफल के सदृश उरोज, केकीशिखा-सदृश केश-कलाप, पिक-सम बचन और कपोत के समान ग्रीवा मन को मुग्ध कर लेती है चंचल लोचनों ने कमलों को श्रीहत कर दिया है। चिवुक पर इयाम तिल से और रत्नजडित कर्णफूल की झलमलाहट से कपोलों की आभा दुगुनी हो उठती है। अधर विम्बाफल, और दन्त-अवली कुन्दकली, सुभग नासापुट तिल-कुसुम के समान कमनीय है। तेरे मुख को देख चन्द्रोदय समझकर कोक-दम्पति दुःखित होकर बिछुड़ जाते हैं।

सभी अंग शोभा का समुद्र हो रहा है, इस सौन्दर्य का पार

नहीं आ सकता । इस प्रकार प्रमुदित होकर सहचरी श्रीस्वामिनी-जीके सौन्दर्य का बखान करही है ।

१६१

सखि ! तेरे तन की सुन्दरता अंग-प्रत्यंग की शोभा देख कर रचयिता ब्रह्मा भी चकित हो गया, तेरी चलन मन्थर, कटि क्षीण और वक्ष परिपुष्ट होने से अनुपम हैं । पल २ में विलक्षण छवि और उज्ज्वलता दीख पड़ती है । बहुत विचारने पर भी इसकी इयत्ता का भान नहीं होता । इस परम शोभा के कारण ही गोवर्धन-धारी तेरे वश में हो गये हैं ।

१६२

राधिके ! तेरी रूप-रचना में विधाता की एक भी चतुराई बाकी न बची । उसने सभी का सार-सार लेकर तेरा तन सजाया-संवारा है । कर चरण-युगल में कमलों का, जंघा में कदली का, गति में मत्त गजेन्द्र और हंस का, ग्रीवा में कपोत का, उरज में श्रीफल का, कटि में केसरी का और भुज-युगल में मृणाल का सौष्ठव लाकर संचित किया है । मुख में चंद्र, अधर में बिवाफल, विद्रुम और बंधूक ( जपा कुमुम ) का सौन्दर्य है तो नासिका के लिये तिलप्रसून और शुक की अनुहार है । नयन-युगल के लिये खंजन, मीन और कुरंग को विशेषताओं का उपयोग किया है । हीरा के समान चमचमाती दशनावली चिद्युल्लता सी मुसक्यान, कुंदकली-से दांत क्या कम रमणीय हैं ? दिव्य संतस सुवर्ण के समान देह-कान्ति पिक-मयूर से मधुर बोल और अलि-अबली के सदृश अलकावली है, इन सभी अद्भुत उपकरणों को लेकर प्रजापति ने तुम्हारे अंग-प्रत्यंग प्रभु गिरिवरधरण के लिये बड़ी सावधानी से बनाकर तयार किये हैं ।

१६३

तेरे वदन की अनुपम छवि प्रियतम गिरिधर के हृदय में जाकर बस गई है। सखि ! तेरे इस अंग के आगे अनेकों चन्द्र दब जाते हैं। तुम्हारे नयनों की शोभा वर्णन करै ऐसा तो कोई कवि दीखता नहीं है। स्वामिनी ! यह गति और छवि एकमात्र तुझे ही फवती है—तू अपनी उपमा आप है।

१६४

माई री ! तेरे नेत्र विधाता की परम रंजन रचना है। वे दोनों सहज कटीले, सौभाग्य की सींचा और गिरिधरलाल के हृदय में सदा बसते हैं। उनकी उपमा क्या कमल हो—सकते हैं ? व्रजकुमारि ! जब तू अपने सहज भाव से प्रसन्न होकर हरि को रिश्वाने के लिये नेत्र में अंजन अंजती है—तब उन्हें देखकर खंजन पक्षी अपने सौन्दर्य का गर्व स्वयमेव छोड़ बैठते हैं।

१६५

श्रीराधे ! तुम्हारा मुख विधाता ने बड़े चाव से बनाया है। वह त्रिभुवन की रचना छोड़कर इसीमें लग गया। सरोज, चन्द्र, बन्धुक पुष्प, शुक, पिक, भ्रमर आदि सभी के विशेष गुणों का उसने इसी मुख—रचना में उपयोग किया है। अन्त में वह इस अनुपम भेट को प्रभु गिरिधरधरण को समर्पित कर आनन्द से नृत्य करने लगा कि—मेरी रचना आज सार्थक हुई।

१६६

सखि ! जैसी तेरी भोंहें बड़ी बंक और मोहिनी हैं, उसी प्रकार चाल, दोनों लोचनों की चितवन भी कुटिल और मोहक हैं। तेरी अलकावली, वेणी, चाल, भूमि पर चरण रखना

सभी मन मुग्ध करते हैं। तूने एकटक चितवन की छवि से प्रभु गोनर्धनधर को मोहित करलिया है।

१६७

प्रिय सखी ! तू सरोवर पर मत जाया कर। तेरे मुखचन्द्र को देखकर चक्की अपने प्रिय-संयोग-सुख को छोड़कर बिलुड़ जाती है। चन्द्रोदय-सा समझकर कमल सकुचित हो जाते हैं, बेचारे अमर व्याकुल हो उठते हैं। तेरे इस सहज स्वभाव के कारण दूसरे विचारे विना अपराध ही दुखी होते हैं। इसे किसका अपराध गिनें ? विधाता ने तेरे मुख को एक अद्भुत चन्द्रमा-सा बनाया है-जिसे देख गिरिधर नागर अतिशय प्रमुदित होते हैं।

१६८

भामिनी ! सोच विचारके बाद भी यह निश्चित नहीं हुआ कि तेरे तन की उपमा के लिये योग्य क्या है ? कंचन, कदली, केसरी, करीन्द्र, कपोत और कुम्भ, कोकिल यह सब इनके सन्मुख कुछ भी नहीं है। सुधानिधि और सौदामिनी भी निर्णय-से हैं। कुरंग, कीर, बंधूक-कुसुम, केकी और कमल सभी इसके आगे फीके हो जाते हैं। इन सभी में एक न एक दोष तो है ही। स्वामिनी राधे ! परम रसिक मोहन तुझे इसी-लिये 'परम भावती' कहकर सम्बोधित करते हैं।

१६९

आली ! तेरे बदन पर चपल नयन; कमल पर किलोल करते हुए दो खंजन-से रमणीक लगरहे हैं। यह कुंचित श्याम, चिकने केश ऐसे लगते हैं मानों रसलोलुप भंवर मंडरा रहे हैं। तेरे अंग-प्रत्यंग की चारु सुपुमा को कहाँ तक कहा जाय ? मृदुल गोल कपोल पर झलमलाती हुई ताटंक की शोभा

प्रभु गोवर्धनधारी के हृदय में अकथनीय रस की वृद्धि कर देती है।

१७०

तेरे नेत्रों की सीमा नहीं है ? मन की सच बात तो यह है कि—अब मैं दृष्टि नहीं चुग़ज़ंगी—अपलक तुझे देखती ही रहूँगी। तेरे कटाक्ष को देख कर कमल, मीन, मृग सभी अपने आपको भुला बैठे हैं। तेरा भ्रकुटि—विलास सचमुच गिरिधर को रिज्जानेवाला है।

**युगल—स्वरूप वर्णन—**

१७१

राधिका गिरिवरधर की जोड़ी बहुत ही अभिराम है। ऐसा लगता है कि—दोनों ने कोटि मन्मथ और रति की सुन्दरता को छीन लिया हो। श्यामसुन्दर भी नूतन वय हैं और वृषभानु—सुता भी नवल गौरी हैं। रसिकवर श्याम और रसिकनी राधा परस्पर मुख—निरीक्षण नहीं कर रहे हैं मानों—तृषित चकोरी इन्दु का सुधापान कररही है। युगल मूर्ति में अवर्णनीय प्रीति की वृद्धि हो रही है।

१७२

रसिकनी श्रीराधा सदा रस में ही गड़ी रहती है। यह वृषभानु—नंदिनी सोनजुही की लता—जैसी श्याम तमाल का अवलम्ब लेकर बढ़ी है। प्रियतम के संग विहार करने में उसने दक्षता कहां पाई कहा नहीं जा सकता ? उसने गिरिधर के संग ही क्रीड़ा—फरने का अभ्यास किया है—ऐसा ज्ञात होता है।

**छाक—[ वनभोजन ]—**

१७३

सुबल सखा गोवर्धन पर चढ़ कर बुला रहा है कि—

“ओरी ! छकहारियो ! छाक जलदी लेकर आवो, गिरिधर तुम्हारे आने की बाट जोह रहे हैं ” ।

बन में विलम्ब हो जाने से जब भूख लगी और उपरेना फेरकर सूचना दो, उसी समय छकहारी भी वहाँ पहुंची-और उसने प्रभु को प्रसन्न किया ।

१७४

“ बिहारीलाल ! आवो ! सलोनी छाक आ गई है । चन्द्रावली ने इस पोटली में कुछ बांधकर भेजा है—इन दो तीन दोनियों में भी स्वादिष्ट वस्तुएँ हैं ”

इस प्रकार ऊंचे हाथ हिलाकर सखी श्याम को बुलाती, छाक लेकर उनके आगे पहुंच जाती है, और गिरिधर को अनेक प्रकार से रिज्ञाती है ।

१७५

बन में घर-घर से खड़े मीठे सलोने सभी प्रकार के पकाओं की छाक आई है । यमुना-तट पर लता-मण्डप में मंडली बनाकर गोप ग्वाल सभी मिलकर जैम रहे हैं, और स्वाद की सराहना करते जाते हैं । बलदाऊ और मोहन हाथों में दोना ले-लेकर सभी को बांटते जाते हैं—स्वयं आप भी सखाओं की तरफ देख २ कर चरवते हैं और गोपियों के मन को मोह लेते हैं । टेंटी, शाक, संधाना, रोटी और गोरस तथा महेरी का स्वाद ले-लेकर रस-लंपट गिरिधर खाते और नाचते जाते हैं ।

१७६

“ अरे ! श्यामढाक की गहरी छाया में बैठे तुम सब देर क्यों कर रहे हो ? देखो मैं छाक लेकर आ गई । इधर देखो उमड़-घुमड़ कर चारों ओर से घटा उठ आई है और तुम सब निधड़क घूम-फिर रहे हो । ”

इस प्रकार छकहारी ने हा हा ! कह—कहकर बड़ी कठिनाई से सबको बुलाया और पंगति में बैठाकर कहा—“अर्जुन ! तुम सबको पनचारे डाल दो।” यह सुनकर गोवर्द्धनधरण लाल सब को छाक बांटकर स्वयं आरोगने लगे और सखाओं को भी भोजन की आज्ञा दी ।

१७७

ज्योंही गोपी बन में छाक लेकर चली मेघ—गर्जना के साथ रिम—श्विम बरसा से सहसा अटक गई, पगड़ड़ी भूल गई और कहाँ और जा निकली । बड़ी देर तक भटकती रही तब जाकर कहाँ गैल मिली । तन और व्यंजनों के भींज जाने के डर से छाक की सघन छाया में भूमि पर वह छाक का डला रख ही रही थी कि—गोवर्द्धनधर की कूक सुनते ही उसे पत्तों से ढक्कर चुपचाप सटक गई ।

१७८

रिम—श्विम वरषा में भींजे बस्त्र पहिरें खालनी को देखकर मोहन रीझकर बोले—“अरी ! बस्त्र पलट ले, मैं तुझे पीताम्बर दिये देता हूँ—छाक सब को बांटकर शीघ्र घर लौट जा, देखती नहीं वरषा चढ़ी आ रही है । सभी भूख से अकुला रहे हैं—खीझ रहे हैं । तुझे देखकर भट्ठ ! सभी के दुःख दूर हो गए” ।

कुंभनदास कहते हैं कि—गोपी ! छाक की तलाश में गोवर्द्धनधर कहाँ और जारहे थे, भाग्य से वे तुझे निकट में ही मिल गए ।

१७९

भोजन में रोकते—रोकते सब थक गये पर एक दूसरे की पत्तल में जूठे परवान डालने से कोई नहीं चूका । इस प्रकार

हँसी-खुशी में हरि ने और ग्वालबालों ने खूब भोजन किया। तृप्त होकर सभीने आचमन लेकर यमुना-जल का पान किया। सुबल, तोष, मधुमंगल और अर्जुन, भोज, सुवाहु, श्रीदामा आदि सखाओं को श्रीहरि ने बीड़ा बांटे। इस प्रकार गोवर्धनधरण वरषा ऋतु की रिमझिम में भोजन कर परम प्रसन्न होते हैं।

१८०

आज हरि ने बन में भोजन करते हुए बड़ा आनन्द दिया। मेह-बरसना अच्छा लगता था और भोजन में रुचि बढ़ती थी। सुबल सखा को चिखरी हुई गायों को इकट्ठा करने के लिये भेजकर प्रभु गोवर्धनधर ने छकहारी की छाक लेकर कृपारस की वृष्टि कर उसे कृतार्थ किया।

१८१

“लाल ! देखो तो सभी बन में हस्तियाली छा गई है—चारों ओर कैसा सुहावना लगता है ? भोजन का यही सुख्य स्थान है। क्या क्या पक्कान्न आए हैं ? देखो तो। इस सघन कुंज में बरसात का डर नहीं।” यह सुनकर गोपाललाल ने ग्वालों से कहा कि— हाँ यहीं ठीक है। इस प्रकार नन्ददुलारे गिरिधरलाल सखा-मण्डली के मध्य सुशोभित हो रहे हैं।

१८२

मंडली बनाकर मोहन छाक आरोग रहे ह। जसे घन की गर्जना होती है—उसी प्रकार लेद्य चोष्य पेय वस्तुओं के सपोडने का शब्द होता है। वर्षा के कारण कभी बूंदे कभी फुहियाँ झड़ने लगती है, पवन का झोंका लगते ही ग्वालबाल हाथों में कौर ले—लेकर मुंह में जल्दी २ रखने लगते हैं। चिखरी हुई गायों और बछड़ों को दौड़ कर घेरते हुए गिरिधर श्याम को देखकर प्रेममग्न कुंभनदास तृण तोड़कर उनकी बलैया लेता है।

## भोजन—

१८३

“मोहन तिवारी में विराजे भोजनकर रहे हैं, अरी ! अभी वहाँ मत जा, कईबार तुझे वरजा पर सिंहपोरी तक जाकर तू बार-बार लौट आती है”। इसी समय रोहिणी बाहिर आई और मुँह पर आंचल लगाकर हँसती हुई बोली “अरी ! तुम बड़ी मदमाती हो, श्याम को देखने को बड़ी उतावली हो रही हो ? कोई गरजती हो, कोई लरजनी हो, कोई ताली बजाती हो । प्रभु गोवर्धनधर अभी—अभी तो थाली पर विराजे हैं । थोड़ा भोजन तो कर लेने दो ? ”

१८४

“आज मोहन हमारे घर भोजन करें ब्रजरानी ! ऐसी कृपा करो—उन्हें भेज देना घर दूर नहीं है । मैंने सब तयारी लगा ली है । हमने बड़े प्रेम से खड़े—मीठे अनेक प्रकार के पक्कान्न बनाये हैं, जो श्यामसुन्दर को अच्छे लगते हैं” ।

इस प्रकार की प्रेम प्रार्थना सुनकर रोहिणी ने जसोदा से कहा कि—आपने इसकी प्रेमभरी वाणी सुनी ? यशोदा मन ही मन रहस्य समझकर मुसकाने लगीं । उन्होंने बलदाउ को और सखाओं को बुलाकर मिस बनाकर अलग भेज दिया । प्रभु गोवर्धन ने गोपियों के घर पधारकर उनका मनोरथ पूर्ण किया ।

## आवनी—

१८५

“अरी ! बन से मदनगोपाल की आवनी तो देख ? इनकी चाल देखकर मत्त ऐरावत भी लजित हो जाता है । श्यामल शरीर, कटि में पीत बसन और वक्षःस्थल पर बनमाला मन को हरलेती है । भौंह—रूपी धनुष पर तीखे लोचनों की चितवन कामदेव के

बाण समान हृदय में बिंध जाती है। गोरज-मण्डित अलक और भाल पर कस्तूरी-तिलक रमणीय लगता है। नंद-कुवर गोवर्धनधर का सुन्दर हास्य जगत को मुग्ध कर लेता है”।

१८६

“देखो देखो! धेनुओं को साथ लेकर हरि बन से चले आ रहे हैं। ऐसा विदित होता है कि—संध्या समय पूर्व में पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ हो। वृन्दावन-रूपी गगन में बालकवृन्द-रूपी नक्षत्रों की छटा देखते ही मन चुरा लेती है”।

इस रूप-सुधा का पान करके नयन चकोर सरस हो जाते हैं। गिरिधर प्रभु इस प्रकार व्रजजनों को आनन्द देते रहते हैं।

१८७

बन से आते समय मोहन ने चित्त हरलिया। सखी! मैं सायंकाल अपने घर निश्चिन्त बैठी थी कि—उनका दर्शन करते ही मुझे अपने वस्त्रों तक की सँभाल नहीं रही। श्यामसुन्दर का रूप देखकर धैर्य जाता रहा। प्रभु गोवर्धन-धर अंग-प्रत्यंग में प्रेम-सुधा से भरपूर हैं।

१८८

एरी! सखी! श्यामसुन्दर श्रीमस्तक पर लपेटा केंटा धारण किये हैं। उस पर सोने की जरकशी कीहुई चंद्रिका शोभित है। तिरछी मोतियों की लड अलकावली पर लटक रही है। गोचारण से मुखारविन्द पर लगी गोरज औरभी कमनीय लगती है। इस प्रकार बन से बनठन कर आते हुए बनवारी गिरिधारी को व्रज-युवतियाँ निहारती हैं, और छघि पर तन-मन-धन न्यौछावर करती हैं।

१८९

सभी गाएं गोवर्धन से चरकर लौट आई हैं। श्रीनंद-नंदन

बछड़ा चराहे थे, उन्होने वेणु बजाकर ज्योंही उन्हें बुलाया गोपबालकों के घेरे वे घिर न सकीं, और आतुर होकर दौड़ीं। मदनमोहन पर वात्सल्य उमड़ आने से उनके एनों से दूध की नदी—सी वह चली। व्रजराजकुंवर के सौन्दर्य को देखकर उनकी आँखे शीतल हो गई। वे प्रभु के चारों ओर चित्रलिखी—सी आकर खड़ी हो गई,

१९०

अरे ? गायों को जलदी ही घेर लो । वे खादर में इधर उधर फैल रहीं हैं, उन्हें मुरली सुनाकर बुला लो । इन्होने जमुना में चार अंजुली भी पानी नहीं पिया—वे तुस हो गई । हुलकती हुंकारती बछड़ों की सुधिकर वे खिरक की ओर दौड़ पड़ी हैं । और भी जो—इधर उधर हों उन्हें घेर लो । अब दुहने का समय ही गया है चलो घर चलें ।

१९१

गोपाल के बदन पर आरती उतारूँ । चित्त की सुंदर बाती बनाऊं और अनेक युक्तियों के घी और कपूर मिलाकर उसे संजोऊं । आरती के समय ताल, डफ, शंख, मृदंग, झाँझ, घंटा आदि वादों की सुन्दर ध्वनि करूँ । जिव्हा से सरस यश गाकर अपने हाथों उन पर चंचर ढुलाऊं । कीटि—कोटि सूर्य के समान दमकते अंग—प्रत्यंग का दर्शन कर सभी लोकों का अन्धकार दूर करूँ । इस प्रकार लाल गिरिधर के रूप को अपने नेत्रों से भर—भरकर देखूँ ।

### आसक्ति—वर्णन—

१९२

नागरी ! तू नंद—भवन आने के लिये कितने उपाय ढूँढ निकालती है ? और वृथा की कितनी बातें बनाया करती है ।

प्रातःकाल से लेकर सांझ तक तू अवसर ही देखा करती है, तू बड़ी चतुर है, टोकने पर तत्काल उत्तर दे देती है। तुझे अपने घर एक श्वेत भी चैन नहीं पड़ता ? रोकने पर भी तू नहीं मानती ? मुझे जान पड़ता है कि—लाल गिरिधर से तेरा मन लगगया है ।

१९३

अरी ? तू तो नैन की सैन से ही सब बातें कह देती हैं। ऐसा मालुम पड़ता है इनके भीतर बहुत-सी रसनाएँ और चालें भरी हुई हैं। ब्रजसुन्दरि ! दृम से इतना छल कपट क्यों ? मेरी विनतियों पर तूने थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया। ये तेरे नेत्र बड़े चपल दूत हैं—बड़ी २ युक्तियाँ ढूँढ़ लेते हैं। तेरे मन में जैसी तरंग उठती है तू उसकी युक्ति भी निकाल लेती है ? सदा श्याम सुन्दर की घात लगाए रहती है। अपने सभी मनोरथ पूरेकर हृदय को सन्तुष्ट कर लेती है। यह निश्चय है कि—गिरिधरलाल के चित्त में दिन-रात तू बसी रहती है ।

१९४

‘तू नंदराई के घर क्यों आती जाती है—ये तेरा भेद क्या मुझे नहीं मालुम है ? अरी खालिनी ! यह तो बता तेरी जाति क्या है ? सांझ—सवेरे तुझे यहीं देखती हूँ—तुझे रात कैसे कटती होगी ? घर के कामधंधे तूने सभी छोड़ दिये, घर के स्वामी से भी तुझे संकोच नहीं आता ? सच है—तेरा मन मर्दनगोपाल से उरझ गया है, इससे तुझे घर में चैन नहीं पड़ता । नयनों से लाल गिरिधर के रूप का पान करती तू अघाती नहीं है ?

१९५

सखी ! श्याम—स्वरूप के निहारते ही तेरे नयन इकट्ठक ही रह गये। नागरी ! तू ठिठक कर रह क्यों गई, एक डग भी न चल

सकी ? तब तू एसी लगी मानों--चित्र में चित्रित कर दी हो । तेरे सिर बड़ी कठिन मोहिनी पड़ गई है, चेताए विना कब, किसी की शंका मानती है ? लाल गोवर्धनधर ने सचमुच ही तेरे तन, मन दोनों चुरा लिये हैं ।

१९६

तूने ज्योंही स्मित हास्य किया - तू गोपाल के मन में समागई । मदनगोपाल तुझ मृगनयनी को देखते ही रीझ गये । उनके हृदय में तू जा बसी ।

किशोरी ! तेरी गज सरीखी चाल, सूक्ष्म कटि, कसी हुई कंचुकी, हेम-सा वर्ण, और शरदचन्द्र-सा मोहक तेरा मुख है । सघन निकुंज में तुझे बुलाते हुए व्रजनायक चले गए ।

यह सच है कि-ऐसी कौनसी खी है ? जो-गिरिधर के मुख कमल को देखते ही आर्य-पथ से विचलित न हो जाय ?

१९७

मोहन ने कुछ मोहिनी विद्या-सी कर दी है ? तभी तुझ से मिले विना रहा नहीं जाता । वास्तव में नई प्रीति बड़ी कठिन होती है । अरी ! मृगलोचनी ! जब से तू नंद-नंदन के साथ खेली तभी से तुझे घर-बार नहीं सुहाता, अकेली बन-बन में डोलती फिरती है । रातदिन तेरे प्राण वहीं अटके रहते हैं, वन निकुंज की द्रुमबल्लरी-सभी तू छूँढ़ती फिरती है । तू निश्चित ही गिरिधर की प्रीति में अटक कर कुल-मर्यादा को भी छोड़ बैठी है ?

१९८

सखी ! जब से मोहन से आँखें चार हुई-तभी से मैं ठगी-सी खड़ी रह गई, अंचल संभलना भी भूल गई । सहज ही नंद-घर आई थी कि सहसा श्यामसुंदर दीख

पड़े, बस टकटकी लग गई, पैरों ने आगे बढ़ने से जवाब दे दिया। प्रयत्न करने पर भी चित्त उस-से-मस न हुआ। मदनमोहन के स्नेह के कारण कामकाज भी छूट गया।

कुंभनदास कहते हैं कि—गिरिधर तो प्रेम रस के लोभी हैं तूने भी आर्य-पथ को अच्छा निबाहा?

१९९

विना देखे तेरे नेत्रों में चटपटी लगी रहती है। अरी! तेरे ऊपर नंदनंदन की ठगौरी तो नहीं पड़ गई है? घर के सभी कामकाज छोड़ दिये, तुझ से एक घड़ी भी शान्त बैठा नहीं जाता? आते-जाते किसी का डर भी नहीं लगता? कठिन हिलग के कारण लोकलज्जा भी अब तुझे नहीं रही। प्रभु गोव-द्वन्धर ने मन चुराकर तुझे अपने वश करलिया है!

२००

तेरे लोचनों में चटपटी-सी लगी रहती है। माई! मैं तुझे बराबर देखती हूँ तू थोड़ा पलक लगाना भी नहीं सह सकती। श्यामसुन्दर की रूपमाधुरी देखकर तुझे अंगडाई आती है। यह तो बता—तू प्रिय गिरिधर से आँखों-आँखों में क्या बात करती रहती है?

२०१

माई! देखो यह ग्वालिनी उलटी रई से रीती मथनियां में दही बिलोरही है। हाथों में नेत भी तो नहीं है, चंचल हाथों से योहीं माखन निकाल रही है। गिरिधर के सुंदर रूप पर इसका चित्त चिहुंट गया है—इकट्क उनके मुखकमल को देख रही है। इसी अकवकी में दही तो वह भूल गई है—और दूसरा ही पात्र धोने लगी है।

२०३

सखी ! मनोहररूप यह सांचला नंद का लाला मेरे पीछे—पीछे लगा डोलता है, और तू मुझे ठपका दिया करती है ? उसे तो दूसरों के अंग—स्पर्श की लालसा रहती है, कहने पर भी नहीं मानता । सच तो यह है कि—गोवधेनधर श्याम मुझे बहुत प्यारे लगते हैं ।

२०४

‘प्रेम पूर्वक शुक—शुककर सोती हुई गोपी सुन्दरी के मुख से मुख मिलाकर श्यामसुन्दर सौन्दर्य देखते हैं । उसके जगने की शंका से ठिठक जाते हैं—फिर देखने लगते हैं । कभी आंचल पकड़कर खेचते हैं—कभी हाथ पकड़कर खेचते हैं—कभी हाथ पकड़ कपोल—स्पर्श करलेते हैं । अपने मन की चाहना पूरी करते हैं । इस प्रेमरस में कोई अनरस मालुम नहीं पड़ता, हृदय का ही प्रेम प्रगट होता है । बस, गिरिधर का ध्यान ही सब में श्रेष्ठ है, और सब रस फीके हैं ।

२०५

प्रियतम श्याम बारबार वृषभानु—नंदिनी के रूप, रस, प्रेम की सराहना करते हैं । श्यामस्वरूप और गौरस्वरूप दोनों इस प्रकार निले हैं—जैसे घन और दामिनी ।

कुंभनदास कहते हैं कि—प्रभु गिरिधर सौन्दर्य के कारण श्रीराधा के वश में हो गये हैं । सखियाँ दोनों का गुणगान करती हैं ।

२०६

अरी ! माई ! ज्योंही उनकी इकट्ठक हष्टि श्रीराधा के सुन्दर मुखचन्द्र पर पड़ी, वे गाय—दुहना भूल गये स्तब्ध रह

गए। नवल नागरी श्रीबृष्टभानु-कुमारी भी तो परम चतुर और लावण्यरूप हैं।

कुंभनदास कहते हैं कि— श्रीराधा की तिरछी भ्रुकुटि के कुटिल कटाक्षों ने श्यामसुन्दर का मन हरलिया है।

### आसक्ति-वचन

[ प्रभु प्रति ]

२०६

अहो मोहन ! तुम हृदय को परम द्रिय हो । नयनों के आगे से ओझल मत होओ । मैं जबतक जीती रहूँ तबतक तुम्हें देखती रहूँ । आपके पैरों पडती हूँ—देखो दूसरे ठिकाने चित्त न लगा देना ? मुझे तबतक चैन नहीं पडता जब तक आप अंकभर के मिल नहीं जाते । नन्दनन्दन ! तुम तो परम रसिक हो । मेरे सभी दुःख मेट दो । घर आने-जाने रहने में प्रभु गोवर्द्धनधर ! तुम्हें किसी से डरने की क्या आवश्यकता ? तुम तो अरि-दमन हो ।

२०७

लाल ! तुम्हारी चितवन चित्त चुरा लेती है । नंदगाम और बरसाने के बीच में आना-जाना कठिन हो गया है । मैं मार्ग में आते-जाते डर जाती हूँ । ललिता आदि सखियां और भी डरपा देती हैं । \*

[ सखी प्रति ]

२०८

छबीले गिरिधरलाल धौरी धेनु दुह रहे थे । उन्होने थोड़ा-सा मुड़कर मुझे जो देखा तो उनका बदनकमल देख कर मैं भी अपने को भूल गई । कंकण, कुण्डलों की झलमलाहट, शरीर पर लगी चंदन की खौर, श्रीमस्तक पर पीत टिपारा

\* यह पद स्पष्ट रूप में नहीं मिला ।

और पीत पिछोरी से उनकी कान्ति भी दुगुनी होरही थी । सखि ! क्या करूँ ? मुझे कल नहीं पड़ता, कुछ ठगौरी—सी लग गई है, अब तो श्यामसुन्दर को अंक भरकर न मेटूँगी तबतक चैन नहीं होगा ।

२०९

माई ! मेरे नयन आतुर हो रहे हैं—इन्हें श्यामसुन्दर के दर्शन कर लेनेदो । इन नयन चकोरों को वदनचन्द्र की किरणों का पान किये बिना चैन कहां ? दर्शन—बिना कितने दिन बीच में निकल गए । रोम—रोम में लालसा भर रही है । जब सुखदाता गिरिवरधरण से गले लगकर मिल्हंगी तभी शान्ति हो सकती है ।

२१०

अरी माई ! अब मैं क्या करूँ ? कमलपत्र विशालनेत्र श्यामसुन्दर ने तो मेरा मन ही चुरा लिया है । बंधु—बांधव, लौक—कुदुम्ब, परिवार सभी ने मुझे कई बार समझाया—पर मैं तो मुग्ध हो गई हूँ । यशोदा के घर जाए बिना रहा ही नहीं जाता । हृदय की तीव्र लगन के कारण मैंने सभी लाज भुला डाली है । प्रभु गिरिवर—धारी ने मन्द मुसकान द्वारा मेरे ऊपर ऐसी ठगोरी डाली है कि—लुटकारा कठिन है ।

२११

मेरे चित्त में तभी से कल नहीं पड़ती जब से उस श्याम का रूप निहारा है । अंग—अंग की शोभा का क्या कहना ? आली ! ऐसा लगता है मानों एक—एक अंश में कोटि कामदेव का प्रागद्वय हो गया है । कन्हैया जब सुन्दर भेष धारणकर जारहे थे, उनके श्यामल अंग की छटा ने मेरा मन हरलिया, अब तो उनके विरह में एक—एक पहर कल्प के समान थीत रहा है ।

२१२

नयनों से नयन मिलाकर कुछ संकेत देते हुए श्यामसुन्दर प्रीति-जोड़कर वन में चले गए ।

जब से नंदनंदन उसे दीख पड़े, तभी से उसे घर-आंगन काटने को ढौड़ने लगा । मन अत्यन्त आतुर हो उठा क्षण-क्षण कल्प के सहश्य व्यतीत होने लगा । वह मृगनयनी सज-सिंगारकर सबकी दृष्टि से बचती हुई कुंज-वन में जाकर लाल गिरिधर से जामिली ।

२१३

इस मन की लगन बड़ी कठिन है । सजनी ! देखो ? इसी कारण सभी लाज छोड़ देनी पड़ी । धर्म जाओ, सभी लोग हँसो, और कुल को लांच्छन लगाओ, गाली दो-पर हृदय-हितकारी से मिले बिना अब नहीं रहा जा सकता । संगीत रसिक मृग के समान रस का लोभी अपनी प्रिय वस्तु को एक क्षणभर भी छोड़ नहीं सकता-भले ही उससे अनिष्ट हो जाय ? सच तो यह है-कि सहज स्नेह का मर्म तो गोवर्धनधर ही जानते हैं ।

२१४

क्या करूँ ? वह स्वरूप मेरे हृदय से टलता ही नहीं है । नंद-कुमार के बिछोह के बाद रात-दिन में कभी नींद ही नहीं आती । उनका वह मिलन एक क्षणभर को भी नहीं भूलता । चित्त में उनके गुणों का स्मरण होते ही नयनों से आंसू ढलकने लगते हैं । कुछ अच्छा ही नहीं लगता, मन में तालावेली-सी मच्ची रहती है । विरह-अनल से जली जा रही हूँ । अब लाल गिरिधर के बिना कौन समाधान कर सकता है ?

२१५

सुंदर साँवरे ने न जाने क्या कादिया । नेत्रद्वार से हृदय में घुसकर उन्होनें मन-माणिक चुरा लिया है । मार्ग में मुझ से दही लुड़ाकर उन्होने पी लिया, मुख-चुंबन कर मन्द मुसकाते हुए उन्होने मेरा स्पर्श कर लिया । सखी ! उस मधुर मिलन को स्मरण कर अब पछिताती हूँ कि—मैं संग ही क्यों न चली गई ? लाल गिरिधर के बिना अब मेरा जीवन भी दूभर हो गया है ।

२१६

मेरी आँखों को तौ अब यही टेब पड़ गई है । सखी ! क्या करूँ ? कमल पर भौंवरी के समान यह आँखें बदन पर जा अटकती हैं । ठहर-ठहरकर यह प्रियतम के मुख का पान करती हैं—एक घड़ी भर भी विरत नहीं होतीं । ज्यों-ज्यों यत्न करती हैं त्यों-त्यों और भी कठोर बनती जाती हैं । प्रेमामृत से मत्त हो कर अब तो यह रूप-समुद्र में जा झूर्ची है । गिरिधर का मुख देखते २ सारी निधि लुट जाती है ।

२१७

माई री ! नागर नंदकुमार मेरी ओर देखकर हँसे । मने देखा—उनका नव मेघ जैसा इयाम वर्ण, श्रीशोभासम्पन्न मुख और दामिनी जैसी दन्तावली दमक रही थी । नयन-द्वार से वह हृदय-भवन में आकर धँस बैठे । इस प्रकार लाल गिरिधर सदा के लिये मेरे प्राणों में आकर बस गये हैं ।

२१८

मेरे लोचन करमराते हैं । गिरिधरन-छवीले को देखने के लिये बहुत प्रयत्न करते रहते हैं । घनश्याम जैसे श्रीर में चन्द्रवदन देखने के लिये अधिक तृष्णित बने रहते हैं । चकोर

और चातक की भाँति इनका भी किसी और से समाधान नहीं हो सकता, ये वस में नहीं रहते ।

२१९

हरि के मधुर वचनों ने मोहनी-सी करदी है । ज्योंही इस मार्ग को छोड़ने को मुझ से कहा गया, काम के बाणों से शरीर धायल हो गया । सखी ! शरद-कमल सदृश और चंचलता की सीमा इन नेत्रों के द्वारा परम सुजान श्याम ने जब से गूढ़ भाव का संकेत किया है, तब से कुछ भी अच्छा नहीं लगता, चित्त में चैन नहीं आता । मुझे तो मनोहारी गिरिधर ने अचानक ही ठग लिया है ।

२२०

सजनी ! मुझे मान करना आता ही नहीं है । वह चितवन, वह मधुर मंद मुसकान सभी दुःखों को भुला देती है । पल-भर उनके ओझल होते ही छटपटा जाती हूँ—नेत्रों में चटपटी पड़ जाती है । प्रभु गिरिधर से तो रूस जाने पर भी बोलने को मन होता है ।

२२१

सजनी ! यदि मिलने की उत्कण्ठा हो तौ फिर कोई लाख बाधाएँ ढालै—उसके बिना कैसे रहा जा सकता है ? दोनों और विरह व्यापता है, तभी कुछ काम बनता है । उस समय लोक-लाज, कुल-मर्यादा, इनमें से किसी की भी चित्त परवाह नहीं करता । मन में इस चोंप के लगजाने पर फिर कुछ अच्छा नहीं लगता । रसिक गिरिधरलाल को देखे बिना एक-एक पल कल्प के समान निकलता है ।

२२२

माई ! प्रेम तो किसी से भी न करै । वियोग में बड़ी

कठिनाई आ पड़ती है। उस समय जीना भी असंभव-सा हो जाता है। इस प्रेम में रक्ती-रक्ती संग्रह करना और हिल-मिलने पर सर्वस्व दान करदेना पड़ता है। एक निमेष के सुख के लिये युग-समान दुःख झेलना पड़ता है। जान समझकर भी विष जल क्यों पिया जाता है, कुछ समझ में नहीं आता? गोवर्धनधर इस अवस्था को स्वयं जानते हैं, इसमें खेद उठाकर शरीर को छिजाना पड़ता है।

२२३

सखि ! चतुर नागर नन्दकुमार ने नयनों से नयन मिला-कर मेरा मन चुग लिया है। कमलनयन झरोखा में बैठे थे, और मैं इधर उस गली से आरही थी—श्याम की मनोहर मूर्ति आँखों में आते ही मैं काम-बाणों से आहत हो गई। आली ! अब मैं वहाँ क्या मिस बनाकर जाऊं, जो उस सुजान से मिलाप हो सके? गोवर्धनधारी ने मुझे अचानक ही भरमा लिया है।

२२४

माई ! तुम देखो ? इन नेत्रों ने मेरा सर्वस्व हरकर हरि को समर्पित कर दिया है। घर के चोर को चोरी करने से कैसे रोका जाय ? क्या करूँ अब तो मेरा बस ही नहीं रहा। तन, मन, बुद्धि और हृदय सभी परवश हो गये। गिरिधर-बिना मेरा जीवन अब किसी प्रकार नहीं रह सकता।

२२५

अरी ललना ! श्याम मनोहर बन जाते २ मेरे घर के आगे जो बात कह गये—उसे कैसे पूरा करूँ ? तभी से मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। प्राणपति को देखे—बिना कल नहीं पड़ती। उधर

गोवर्द्धनधर मेरा मार्ग देख रहे हैं, इधर मेरा एक पल-भर नेत्र भी नहीं लगता ।

२२६

मोहन के नेत्रों ने मेरा मन मोह लिया है । भृकुटि-विलास और चपल चित्तवन से ऐसा भान होता है मानों-वे कामदेव को नचा रहे हों । रसिक-शिरोमणि गोवर्द्धनधर ने अपने कटाक्ष द्वारा जो बात कही वह समझ नहीं पड़ी, अचानक उन्होने मुझे ठग लिया है, अब तो सुखपूर्वक रहना कठिन हो गया है ।

२२७

माई ! इस नंद के ढोटा ने तौ मुझे बहका लिया है । देखते ही कुछ टोना किया और मोहन मंत्र-सा पढ़ डाला है । विकल मन होकर इधर-उधर डोल रही हूं, बिना देखे रहा नहीं जाता । बाट, घाट, बन, बीथी-जहां भी छूटने जाती हूं लोग मुझे पागल बताते हैं । मेरा मन श्याम के सौन्दर्य-सागर में छूब गया है, छूटते २ हार गई । कि—गोवर्द्धनधर ने क्या बात समझाकर कही थी ।

२२८

सखि ! जब से नयन भरकर नंदकुमार को देखा तभी से भूल गई हूं, पति-परिवार सब छूट गये हैं । अब देखे बिना मैं विकल हो रही हूं । सब अंग थक गये हैं, जब साँवरी मूर्ति की सुध आती है तब लोचनों में नीर भर-भर आता है । उस रूप-राशि की तौ कोई सीमा ही नहीं है—उस कन्हाई से फिर कैसे मिलूँ ? मेरी प्यारी सजनी ! एकबार फिर प्रभु गोवर्द्धनधर से तू मुझे किसी प्रकार मिला दे ।

२२९

माई ! अब तो ऐसा लगता है कि—सदा गिरिधर के गुण

गाती रहूँ । मेरा तौ यही व्रत है, अन्यत्र रुचि नहीं । लाडिले ! एक बार आंगन में खेलने को आ जावो, तौ थोड़ा-सा तुम्हारा दर्शन पालूँ ? मुझे तुम्हारे प्रति लगन लगगई है, इस कारण इसी लालच में पड़ी हुई हूँ ।

२३०

सुंदरि ! मेरे लोचनों में टगटगी-सी लग गई है । लाल गिरिधर के नखशिख-अंग की शोभा देखते २ अनमनी-सी हो गई हूँ । मैं प्रातः उठकर घर से दही-बेचने निकली कि—श्याम सुन्दर से मार्ग के अधविच ही भेट हो गई । बस घर-व्यवहार सब भूल बैठी । ज्वालिनी ! मैं मनसिज संकल्प से व्याकुल हो गई ।

कुंभनदास कहते हैं कि—गोपी की ऐसी दशा देखकर प्रभु ने प्रीति कर उसे स्वीकार करलिया ।

२३१

नंद—कुमार ने कमलदल लोचन की चपल चितवन से मेरा मन हरलिया । इससे बुद्धि भी ठिकाने नहीं रही, शक्ति न जानें कहाँ चली गई ? अंग सब विकल हो गए । घर का काम-काज भी भूल गई । अब ऐसी दशा में लाल गिरिधर के बिना दूसरा कोई उपचार नहीं है ।

२३२

रूप देखकर नेत्रों के पलक लगते ही नहीं हैं । गोवर्द्धन-घर के जिस २ अंग पर दृष्टि गई, वह वहीं जमकर रह गई । क्या कहूँ ? कुछ कहते भी नहीं बनता । उन्होने दही क्या मांगा ? मेरा चित्त चुरा लिया ।

कुंभनदास कहते हैं कि—उस गोपी ने इस प्रकार प्रभु से मिलने की अपनी बात सखियों से कह डाली ।

२३३

माई ! मेरा मन तौ हरि के संग चला गया ? किस को दोष दूँ ? उसे तौ नेत्रों ने परवश कर दिया । नंद-कुमार ज्योंही दीख पडे—नेत्रों ने उनके श्यामल स्वरूप को अपने भीतर धर लिया । मैं गिरिवरधरन से भी क्या कहूँ ? इन नेत्रों ने उन्हें बलात् अपने भीतर जो छिपा लिया है ।

२३४

नंद-नंदन की बलिहारी जाऊँ । उनके श्यामल, मृदुल तन की कान्ति देखकर क्यों न सुख जठाऊँ ? सभी लोक के पति, श्रीपति और ठाकुर का विमल यश अपनी रमना से गाते रहना चाहिये । परम रसिक प्रभु गिरिवरधर को तन-मन सर्वस्व निवेदन कर देना चाहिये ।

२३५

मोहन की मनोहर मूर्ति मन में बसगई है । उनका अंग श्याम आकाश सदृश और मुख शोभायमान शरदकाल के पूर्ण चन्द्र-जैसा है । उन्हें गोप-वृन्द के साथ खेलते देखकर सखी ! मेरे ऊपर काम-भुजंगम का विष-सा छा गया । अब तो रसिक गिरिधरलाल के प्रेमरस में मैं मग्न हो गई हूँ—उन्हें जब देखूँगी तभी सुख होगा ।

२३६

सखी ! मेरा और उनका एक ही गांव का निवास है । तू ही बता मैं धीरज कैसे धरूँ ? यद्यपि मैं प्रयत्न करती हूँ पर लोचन-भ्रमर रोकने पर भी नहीं रुकते । यहीं से उनका गौ-चराने जाना और वहीं से मेरा दही-बेचने जाना—बस देखते ही मैं पुलकित, गद्दस्वर और आनन्द भरित हो जाती हूँ । जब वे ओझल हो जाते हैं तौ एक-एक क्षण कल्प-समान

बीतता है, मैं विरह-संतप्त हो जाती हूँ। अब तू ही बता ? मैं कुल-मर्यादा से कहाँ तक डरती रहूँ ?

२३७

मेरी माई ! अब क्या करूँ ? जग से नंद-नंदन दीख पड़े हैं, घर-आंगन कुछ भी नहीं सुहाता। 'तैने कुल की लाज छोड़ दी' यह कह कर माता-पिता त्रासते हैं—घर में तौ यह दशा है, और बाहर—'देखो ! देखो कान्हा की सनेहिनी आई' ऐसी बातें लोग आपस में चलाया करते हैं। रात-दिन मुझे कल नहीं, घर-द्वार काटने को दोड़ते हैं। प्रभु गोवर्धनधर ने तो हँसकर मेरा चित्त चुरा लिया है।

२३८

सजनी ! मेरा मन मोहन से उलझ गया है, छुड़ाने पर भी नहीं छूटता। चारों ओर से प्रेम ने धेरा डाल रखवा है। उनके शरीर में नख से शिख तक रंगीली आभा है—और मंद मुसकान में महान् रस झलकता है। मुझे लाल गिरिधर के बिना कोई नहीं सुहाता।

२३९

सखी ! इस लोचन-द्वार से भीतर आते अब उन्हें कौन रोके ? आँखों की पुतली भी उनहीं की पोलिया बन गई हैं। भीतर जाकर उन्होने अंजन रूपी छड़ लगाकर पलक रूपी कपाट दे दिये हैं। रूप-रस में छके रहकर हरि ने वहाँ रात दिन रहकर मनके सभी पात्रों को ढूँढ लिया है।

२४०

सदा गोवर्धनराय को देखती ही रहूँ। मनसा बचसा बस इन्हीं का हो जाना है। सुनो सखी ! मेरा मन उन्हीं के हाथ

विक चुका है। सुंदर श्याम कमलदल लोचन लाल गिरिधर ज्योंही मेरी ओर मुँह कर मुसकराए बस उसी समय से नेत्रों के भीतर समा गए हैं।

२४१

अरी माई! श्याम तो मेरे संग लगा ही डोलता रहता है, मैं जहां जाती हूं वहां वह आ पहुंचता है। बोले बिना ही मुझ से बोलने लगता है मैं क्या करूं? इन लोभी लोचनों ने बिना मोल के मुझे विवस कर लिया है। वह गोवर्धनधर हँस कर अपने हाथों मेरा घूंघट खोल देते हैं। मैं कुछ भी नहीं कह पाती।

२४२

मैंने मदनमोहन से प्रेम किया है—अब भले ही कोई मुँह मोड़ता रहै। इस व्रत से कभी टलनेवाली नहीं हूं—मैंने सभी से नाता तोड़ लिया है। भले ही सास रिसा जाओ, माता मुझे त्रास दो—मैंने तो तो पति से भी घट-स्फोट-सा कर लिया है। मैं गिरिधर से मिले बिना नहीं रहूँगी। अब तो सभी के साथ आर्य-मर्यादा का व्यवहार छोड़ दिया है।

२४३

मेरे वामांगों के फरकने से लाल के मिलने की बात मुझे मालुम पड़ गई है। आज प्रातः प्रिय आवेंगे ऐसी आनंद की बात सुनकर आँखे पहिले ही मिल आई। इस आनंद में मैं हाथों को कंकण, हृदय को मोतियों का हार पारितोषक में ढूंगी—जिन्होने प्रियतम की बात चलाई है। जब गिरिधर आवेंगे तब सखी! मैं आनंद बधाई मनाऊंगी।

२४४

आली! ‘संकेत क्या होता है’ यह मैं क्या जानूं? श्याम सुन्दर का नाम ले—लेकर मुझे सभी चिढ़ाते हैं। सखी! न तो कानों

से सुना न आँखों से देखा ही कि वह कृष्णवर्ण है या श्रेतवर्ण । बात यह हैं कि—जिसका जिससे प्रेम होता है वह फिर कुछ सोचता विचारता नहीं है ।

२४५

अरी सखी ! मैं तो उनका मुख देखकर ही जीती हूँ । मेरा न तो कोई सगा है न सम्बन्धी, न मैं किसी की कोई हूँ—यह सब को सुनाए देती हूँ । जो मेरे मन आवेगा वही करूँगी—तू भले ही कहा कर ।

कुंभनदास कहते हैं कि— यह हिलग की बातें निवेदने (सुलझाने) से निवेड़ी (सुलझाई) नहीं जा सकतीं ।

२४६

तूने तो ब्रज—मोहन को मोह लिया है अब तू क्यों न ऐड़ी २ डोलेगी ? वह बन में गाय चराना भूल गए । मैं पूछती हूँ—तू ही बता वे कब किसी से बोलते हैं ? उनका लकुट कहीं, मुरली कहीं, पीताम्बर कहीं पड़ा है, कहीं आभूषण खुले पड़े हैं—यह सब क्या है ? तूने गिरिधर को वश कर लिया है अब यह बात प्रसिद्ध हो गई है ।

२४७

**मान—**

सखी ! तेरी ये मन को लुभानेवाली बातें जब तक सुनाती रहती हूँ तब तक गिरिधरलाल को आनन्द आता रहता है । थोड़े से भी समय के लिये घर आती हूँ उन्हें चटपटी—सी लग जाती है । उन्हें किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता । वे बुलाने के लिये एकके बाद एक को भेजते रहते हैं । बारंबार यही चर्चा चलाया करते हैं—उन्हें और कुछ सुहाता नहीं है । प्रभु इयाम सुन्दर अत्यन्त आतुर है । तुम तो उनके प्रेम को प्रबुद्ध करनेवाली हो ।

२४८

अरी ! देख, तुझे बुलाते हुए श्याम मनोहर कदम्ब खंडी में छांह में बैठे तेरी प्रतीक्षा कररहे हैं। वहाँ वृक्षों पर पुष्प फूले हैं, अलिकुल गुंजार और कोकिला मधूर कूजन कर रही है।

इस प्रकार दूती के वचन सुनकर व्रजकुंवरी के मन में उल्लास हो उठा और वह उत्कण्ठित हो कर रसिक कुंवर गिरिधर के सगीप मिलने चली।

२४९

अब यही नेत्र तेरे दूतपना कर रहे हैं। नागरी ! यह मैं जानती हूं, इसलिये मेरी बात तुझे अप्रिय लगती है। सच बात तो यह है कि प्रभु तेरे रस-वश हो गए हैं—सो कडवी मीठी-ऊँची नीची बात तुझ से नहीं कह सकती। तू गिरिधर लाल को जैसे नांच नचाती है—वे नांचते हैं। इतनी बात में ही ढीठ बनकर कहती हूं।

२५०

हरि का वदन देखते पलक नहीं लगता। वे नट-मेष धारण कर निर्कुंज-मण्डप में बिराजे हैं। ऐसा मालुम पड़ता है मानों निष्कलंक चंद्र अपनी शोभा बिखेर रहा हो। यह अवमर बीत जायगा, विलम्ब मत कर। जो तुझे ठीक लगै तो मेरा कहा मान। प्रभु गिरिधर से शीघ्र मिलने चल।

२५१

तुझे लेने के लिये मुझे गोपालने भेजा है। पर तू उत्तर भी नहीं देती ? कुछ बोलती भी नहीं—और अधिकः रिसाती जाती है। मैं तेरी प्रकृति समझ गई हूं—तू एसे ही अपनी जीत दिखाना चाहती है। अरी ! तैनें अपने स्वभाव का अच्छा परिचय दिया जो आते ही लडाई ठान ली। नंदकुमार से तुझे

जो कहना है सो भले कह, तेरी मर्यादा रखने के लिये मनहीं बोल्दँगी ।

कुंभनदास कहते हैं कि—स्वामिनी ऊपर से ही सखी से रुखा व्यवहार कर रही हैं—भीतर तो उसका कहना भागया है । अन्त में वे बोली—‘सखी ! गिरिधरलाल सब घोष के पति और व्रज के ठाकुर हैं उनको नांहो कैसे की जाय ?

२५२

तू नंदलाल को बहुत प्यारी लगती है, जब तू अपने मंदस्मित पूर्वक उनसे मिलती है । मदनगोपाल तो तुझे एक क्षण भी भूलते नहीं है । उनके हृदय में तू बसगई है । मृग-नयनी ! तू शृङ्खार साजकर वेश धारणकर, मांग सुधारकर, तन में चंदन लेपकर चल और उनसे शीघ्र मिलले । व्रज-भामिनि ! तू कनकलता (सोनजुही) सदृश और श्यामसुन्दर तमाल सदृश हैं—दोनों का संमिलन कितना सुन्दर होगा ? प्यारी ! तू गिरिधर से मिल, जिससे तेरे तन-ताप की निवृत्ति हो ।

२५३

अरी ! मैं तुझे मनाती—मनाती हार गई पर तू न मानी ? सीख सिखाते पहर बीत गया, पर तेरे ध्यान में एक भी बात न जँची । अपने रूपगुण के गर्व पर इतना क्यों इठला रही है ? समझती ही नहीं, तू भोली—भाली ग्वालिनी ही है । प्रधु गोवर्धनधर तो बहुनायिक है, उनसे अभिमान क्या करना ?

२५४

अरी माई ! मैं तुझ से कब की कह रही हूं—तू प्रियतम हरि के पास क्यों नहीं चलती ? रात बीतने को आई पर तुझे तो एक ‘नहीं—नहीं’ की ही जक लगी है । तुझ से मिलने के लिये गोवर्धनधर कबके अकेले बन में बैठे हैं । बड़ा आश्र्य

है कि-प्रभु मुझे बुलाते हैं ऐसा समझकर तू वार-बार बांह छुड़ा-कर बैठ जाती है ।

२५५

सजनी ! तुझे कान्ह निकुंज में बुला रहे हैं । देखो वसन्त क्रतु है—कानन में वृक्ष लता पुष्पित हो उठे हैं उन पर अलिकुल कल गुंजन कररहे हैं ।

तू नील पट पहिर कर, न् पुरो कों उतार ले—इस समय के योग्य साज सजले । चन्द्र-प्रकाश होने के पहल अंधियारी निशा में चुपचाप चलकर प्रभु गिरिधर से मिलले ।

२५६

भामिनि ! संकेत-स्थल पर हरि ने आने का वचन दिया था, अब क्यों व्याकुल होती है—थोड़ा ही दिन बाकी रहा है । प्रमुदित होकर नवल आभूषण वेश से श्रृंगार करले । अब क्यों मान धारण कर रखा है ? देख, गिरिधर के मिले बिना एक पल भी नहीं रहा जायगा ?

२५७

अरी ! अब तो हरि ने तुझे बुलाया है—अब चली चल । वृथा क्यों ढठ कर रही है ? तुझ से कुछ अधिक कहती हूँ तो तुझे रोष आ जाता है—मुख तमतमा उठता है—आँखों में आँसू भी आते हैं । मैं मना रही हूँ सखी ! अब तो तू मान जा ? देख मैं तेरे कबके पैर पड़ रही हूँ ? प्रभु गिरिधर से मिलने में ही आनन्द है—वृथा की बातें तू अपने मन में रखे हुए हैं ।

२५८

सुंदरी ? अब तू शीघ्र चल । देख ? रात बीतने को आ गई है । विलम्ब मत कर और नंद-नंदन से मिलले । प्यारी ! तू तो चतुर है—मन से वृथा की बातें निकाल दे ।

मदनमोहन बड़ी देर से तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, और तू चलने को नट जाती है? श्याम तमाल से कनकलता के समान तुझे गिरिधरलाल से मिल जाना चाहिये।

२५९

मेरा कहा तू नहीं मानती—सचमुच यौवन मद में तू मत्त हो रही है। उत्तर भी नहीं देती? तुझे मनाते आधी रात तो बीत गई। अभी तू अपने सौन्दर्य और गुणों के अभिमान में भूल रही है? जब में चली जाऊँगी तब पीछे से पछितायगी? प्रभु गिरिधर प्रियतम से अंकभर कर मिलले, जिससे तेरा हृदय शीतल हो जाय?

२६०

अरे! तब से तू मान किये हैं बैठे हैं? थोड़ी देर में चांदनी निकल आयगी? तुझे नहीं मालूम फिर कैसे जा सकेगी? जब रात्रि थी चारों ओर अंधकार था, तब तूने चलने का विचार न किया—अब किरणों से चारों ओर सारी पृथ्वी सफेद हो जायगी। अब भी जल्दी चल। मैंने तुझ से बार—बार कहा, पर तू गिरिधर प्रियतम से मिली नहीं, और वृथा विरह—पीड़ा सहती रही।

२६१

भामिनी! मोहनलाल गोवर्धनधारी तुझ से मिलने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हैं। मुझे तू उत्तर भी नहीं देती? कोई बात हो तो बता?

तेरे शरीर पर झूमक—साड़ी कैसी फव रही है—झरोखा में बैठी तू कैसी सुन्दर लगती है—सचमुच तू प्राण प्यारे के तन—मन में बस रही है—एक पलभर को भी वे तुझे मन से नहीं बिसराते।

तू कहे तौ संकेतित स्थल तक मैं तेरे साथ चलूँ? देखो उस ऊँची चित्रशाला में प्रभु पौढ़े हुए हैं।

२६२

सखी ! रिमझिम २ पानी बरस रहा है। ज्योंही मोर बोलते हैं—कोकिला कूजती है—बिजली चमक उठती है। बादल चारों ओर उमड़—घुमड़ रहे हैं। पृथ्वी पर आकर बरस जाते हैं। ऐसे सुहावने समय में प्रिय गिरिधर तुङ्ग से मिलने की चाहना कर-रहे हैं और तू मान किये बैठी है ?

२६३

अब तू ही देख ले ? निशापति अस्त होने को आ गया है। अब भी क्यों गर्व करती है ? आँखों में काजल लगाकर चल। चारों ओर अन्धकार छा गया है—जिसे तू चाह रही थी, अब वस्त्र ठीककर पहिन ले, और प्रभु गिरिधर के अंग में घन में दामिनी के समान मिलकर तू शोभित हो जा ।

२६४

भामिनी ! सुन, प्राणनाथ से इतना मान नहीं करना चाहिये ? जिसके बिना एक क्षण भी रहा नहीं जा सकता, बिछुड़ने पर शरीर छीजता है। इन आँखों को प्रियतम प्यारे लगते हैं। उनके दर्शन कर चार दिन सुख क्यों नहीं उठाती ? प्रभु गिरिधर प्रियतम को तन—मन सब क्यों समर्पण नहीं कर देती।

२६५

सुन्दर नट—वेष धारण किये हुए गोविन्द सघन गहर—निकुंज में विराजमान हैं। नागरी ! जब से तुम दोनों का नयन—सम्मिलन हुआ है, तब ही से नटनागर प्रसन्न होकर वन में जा बैठे हैं।

रसिकवर नन्द—कुंवर ने अपने ही हाथों से पुष्ट—शश्या सजाई है। यमुना का तट, विमल जल का प्रवाह, सुन्दर त्रिविध मलयज पवन यह सभी सौन्दर्य वहाँ हैं।

श्यामसुन्दर तुझसे मिलने को अति आतुर हो रहे हैं। उन्हें एक रक्षण युग—समान बीत रहा है। वे एकटक पंथ निहार रहे हैं। सखि ! सुकुमार गोवर्धनधरण ही तो व्रज—युवतियों के मन-हरण करनेवाले हैं।

२६६

सखि ! तू मेरी बात मान कर चल। नंदनंदन तेरी बाट जोह रहे हैं। व्याकुलता में एक—एक पल उन्हें कल्प—समान बीत रहा है। युवतिजनों के सन्तापहारी उनके मुखकमल को एकबार लोचन भरकर देख ले, और भामिनि ! कुंवर रसिक नवल गिरिधरलाल को अंक भरकर भेट ले।

२६७

मनमोहन हरि ने तेरी सब बातें मान ली हैं। जब गिरिधर प्रियतम एकान्त में बैठे थे, तभी मैंने उनके हाथ में तेरी पाती रख दी थी। भामिनी ! दिन के बाद जबतक रात नहीं आई, तब तक धीरज धर।

कुंभनदास कहते हैं कि—इस प्रकार दूती के बचन सुनते ही उस युवती का हृदय शीतल हो गया।

२६८

तूने सीधे मुख से उनके साथ बात भी नहीं की ? हरि तेरे भवन मान मनाने आए थे, पर तू तो बस मौन लेकर बैठ गई ? अधिक मान अच्छा नहीं—कुछ तो मर्यादा होनी चाहिये। रात्रि के चारों पहर तू एक ही रस में मत्त रही। क्या करूँ ? अब पछताने से क्या हो ? तूने गिरिधर से न मिलकर वियोग—पीड़ा सहकर वृथा अपने तन मन को काम की ज्वाला में झुलसा डाला ?

२६९

सखी ! तुझ से हँसी-हँसी में कुछ कह दिया तो तू मान-कर के बैठ गई ? इतनी रिस क्यों करती है ? गोवर्धनधारी तो प्रिय और सुखनिधान हैं। अब मेरा कहा मान कर अटपटी चाल और अपना स्यानपन छोड़ दे। प्यारी ! तू स्वामी से इतना रुखा व्यवहार मत कर।

२७०

तेरे प्रियतम ने जो बात तुझ से कही उसको सुनकर अब क्यों रिसाती है ? प्राणनाथ और तेरे बीच में भेद डाले उसके सदृश अज्ञ कौन है ? अरी सयानी ! जिसके बिना रहा ही नहीं जाता, उससे क्रोध करना कैसा ? अब तो वही कर जिससे गिरिधर के हृदय से लिपट सके।

२७१

प्यारी ! सचमुच तू बड़ी अलकलडी-विचक्षण है। रात्रि-दिवस गिरिधरलाल के हृदय में ही गड़ी-सी रहती है। समीप रहने में ही तुझे सुख मिलता है। एक पल को भी साथ छोड़ती नहीं है। ब्रज-युवतियों में सब से श्रेष्ठ तू ही राधा स्वामिनी है।

२७२

तेरे मन की बारें कौन समझे ? भय की इसमें क्या बात थी ? ऐसी कौन युवती है जो नंद-नंदन के बुलाने पर न माने ? तेरी और हरि की खूब मिल्हत चलती है इसीसे तू निधड़क बोलती है—यह मैं अच्छी तरह मन में समझती हूँ। ब्रजसुंदरि ! गिरिधरधरण तेरे आगे अन्य को कुछ गिनते ही नहीं हैं।

२७३

प्यारी ! कहने से यह बात तुझे अच्छी नहीं लगती ? पर मैं सच कहती हूँ नंद-नंदन विना तुझ से रहा नहीं जायगा ? और फिर मुझे तू याद करेगी । राधे ! समझाने पर भी तू नहीं समझती—चतुर भी जब अनजान बनने लगे तो क्या किया जाय ? नटवेषधारी गोवर्धनधर निकुंज में बैठे हैं—एक बार उनके दर्शन तो करले ।

२७४

मैं तुझे वरज रही हूँ । तू प्रियतम से क्यों भेद पाड़ रही है ? सुख के निधान नंदनंदन को चलकर क्यों नहीं निहार लेती ? सखी ! इष्ठा कोप करने से लाभ क्या ? हठ छोड़ दे । अन्त में तो तुझे हार मानकर कमलनयन से मिलना ही पडेगा । समीप चल, अपना यौवन वृथा क्यों खोती है ?

वे प्रश्न सभी ब्रजाङ्गनाओं के प्रिय हैं—यह तेरे समझ में नहीं आता ? सखि ! अपने इस आचरण से रस में क्यों कुरस उत्पन्न करती है ? गिरिधर से अपना व्यवहार क्यों तोड़ती है—अपना भरा जल क्यों ढोलती है ?

२७५

अरी ! हाथ पर कपोल रखे तू अनमनी होकर क्यों बैठी है ? हलती, चलती, बोलती कुछ भी नहीं है, क्या मौन धारण कर रखता है ? तू जो कहेगी, श्यामसुन्दर उसे अवश्य मानेंगे । ऐसी कौनसी बात है, जिसके लिये इतना दिखावा हो रहा है ? गिरिधरलाल को तो सदा तेरा ही ध्यान बना रहता है, तू ही मृगनयनी उनके हृदय में बस रही है ।

२७६

आली ! हरि मनमोहन अपने हृदय पर गुंजामणि की

माला धारण किये रहते हैं। दूसरे और सभी अमूल्य आभरण उन्होंने त्याग दिये हैं। उस माला की मणि को तेरा नासा-मौक्किक, गुंजा की ललाई और श्यामता को तेरे अधर की अरुणिमा और अंजन की श्यामता मान रखवा है। गोवर्धनधरलाल उसे ले कर मन-कर्म-वचन से तेरा रातदिन जप करते रहते हैं—यह बात में शपथ पूर्वक कहती है।

२७७

भामिनि ! अब तू यह उलटफेर छोड़ क्यों नहीं देती ? चंद्रमा पश्चिम की ओर धीरे २ खिसक रहा है। देख ? देर हो रही है। सखि ! अभी थोड़ी ही देर में तमचुर (ताम्रचूड़-कुकट) की टेर सुन पड़ेगी उषःकाल हो जायगा। जब तुझे विरह व्यापेगा तब तू पछतायगी। इसलिये सुंदरी ! मेरा वचन मानकर श्यामसुंदर से चलकर मिल। वे गिरिधरलाल ही तो तेरे जीवन-धन हैं।

२७८

“ प्यारी ! तुझे कान्ह कुमुदवन में बुला रहे हैं। वहाँ कदम्ब की छाया में अतिशय मनोहर ठौर बनी हुई है। मृगनयनी ! उठ, अभिमान छोड़ दे—मैं तेरे पांव पड़ती हूँ। यहाँ आए बड़ी देर हो गई है—चलो अब चलें ”।

इतना कहकर दूती चलने लगी तभी नायिका ने उसकी बांह पकड़ कर कहा—गिरिधरलाल का त्रास मुझ से सहा नहीं जाता।

२७९

मदनगोपाल के सौन्दर्य को जब से देखा तभी से तेरा मान छूट गया था। विशाललोचन श्यामसुंदर की चितवन ज्योंही तेरे चित्त में बसीथी तभी से तूने शपथ खाकर कहाथा कि—“अब मैं कभी नहीं रुसूंगी ”।

ऐसा सुनकर व्रजसुन्दरी गिरिधरलाल को सन्तुष्ट करने के लिये शृंगार साजकर उनके पास चली और जिस प्रकार तमाल द्रुम से बछुरी लिपट जाती है—वह उसी प्रकार उनसे मिल गई।

२८०

“मैं सदा प्रियतम की रूख लिये रहूँगी—उन्हें अप्रसन्न नहीं होने दूँगी। वह जो कुछ आज्ञा करेंगे तदनुसार ही आचाण करूँगी। कभी उलटकर अप्रिय प्रत्युत्तर न दूँगी। मेरे मनमें यही एक बड़ा सोच है—जो एक पल को भी वियोग होगा तो कैसे सहा जा सकेगा? अब प्रभु गिरिधरलाल से कभी भूलकर भी मान न करूँगी”।

सखी! तूने कभी ऐसी प्रतिज्ञा की थी—यह जानकर ही मैं मनाने के लिये तेरे चरण पकड़ती हूँ।

२८१

सखी! उठ चल, मनमोहन के मुखारविन्द का दर्शन क्यों नहीं करती? रंगीले गिरिधरलाल को देखे बिना वृथा समय क्यों खोती है? तुझे ध्यान नहीं है—अंजलि के जल के समान यह यौवन भी व्रजनाथ के सम्मिलन बिना क्षण—क्षण क्षीण होता जाता है। अपने इन विशाल नयनों से उस मुखकमल को देखकर जीवन क्यों नहीं प्राप्त करती? यदि तू मेरा कहा मान लेती तो आज अनचाही बात क्यों होती? श्रीगिरिधर नागर वैकुण्ठ छोड़कर क्रीड़ा करने के लिये ही तो व्रज में आये हैं।

२८२

गिरिराज—धरण तुझे कितना सन्मान देते हैं? अरी? भोली भाली! तू अब हठ करना छोड़ दे। व्रजभामिनी! देख यामिनी बीत रही है—सबेरा हो रहा है। हरि को अपना ही प्रियतम समझ।

जो क्षण बीत गया वह फिर नहीं आता । प्रभु के वियोग से बढ़कर और क्या हानि हो सकती है ? लाल गोवर्धनधर तुझ से मन-कर्म-वचन से विनय करते हैं, अब उनके सामने घूंघट क्यों डालती है ।

२८३

अपने अंग-प्रत्यंग छिपाकर चुपचाप मेरे संग चली चल । देख मौन धारण करले । अधरों पर हाथ धर ले क्योंकि तेरी दंत पंक्ति दामिनी-सी चमक उठती है । नूपुर और किंकिणी उतार दे—उनके कल शब्दों से खग-मृग चौंक उठेंगे । स्वामिनी ! अब शीघ्र चलकर मिल ले । गिरिधर लाल यहीं तेरे निकट तो हैं ।

२८४

श्यामा ! चल, तुझे यमुना-तट के सघन कुंजों में घनश्याम बुला रहे हैं—वे तेरा ही नाम रट रहे हैं । चंचल मृगशावाक्षी ! मृंगार करले, और कंठ में मौलसिरी की माला धारण करले । चलकर सकल सुख-निधान श्रीगिरिधरलाल से भुज भरकर भेटले ।

२८५

जो-तू धीरे-धीरे धरती पर पैर धरती हुई चलेगी तो अंधेरी रात में कोई पहिचान न सकेगा । देख अपने नूपुरों का कोलाहल मत होने देना ? चलकर देख, नवीन कुंज-दरी में डहडहे फूलों की शश्या की रचना हुई है । स्वामिनी ! अब तू शीघ्र ही रसिकराय गिरिधर से चलकर मिलले ।

२८६

आली ! चल, तुझे नंदननंदन बन में बुला रहे हैं । चपल मृगलोचनी ! शृंगार कर कसूंभी परिधान धारण करले । यौवन के अनियारे नयन-शुष्प और वक्षोज-श्रीफल की अमोल भेट

लेकर उनसे मिल । प्रभु गोवर्धनधर भी तुझ से निष्कपट भाव से ही मिलेंगे ।

२८७

देख लेना, तेरा मन गिरिधर मनमोहन के बिना नहीं मानेगा ? चारों ओर सावन की घटा उमड़ आयगी और पिक, मयूर पक्षी बोल उठेंगे—तब तू मुझे स्मरण करेगी जब कामदेव तुझे क्लेशित करेगा । लाल गिरिधर के बिना देखना— तेरे नयनों से प्रेमाश्रु का प्रवाह बह चलेगा ?

२८८

मैं भी देख लूँगी ऐसी कौन है, जो श्याम सुंदर के मुख कमल का दर्शन करके भी मान करने लगे ? तब तक भले ही मान कर लो—जब तक वह दृष्टिगोचर नहीं होते । दृष्टि पड़ते ही मन—मधुकर तत्क्षण ही बदन—सरोज पर स्वभाव से ही दौड़ जायगा । त्रिभुवन में ऐसी कोई वंदनीय युवती नहीं दीखती जो—आर्यपथ से विचलित न हो ? बात यह है कि—गोवर्धनधर सहज में ही कुल—मर्यादा को ढहा देते हैं ।

२८९

“ सहचरी ! मोहन नंदराय कुमार ने अर्द्ध गत्रि में तुझे बुलाया है । ले, यह तेरे प्रिय गिरिधरलाल की प्रेम—पाती है, अब चलकर उनसे मिलले । ”

इस प्रकार अपनी आली के मधुर वचन सुनकर नायिका की छाती धड़कने लगी, और उसने लाल गिरिधर की सब बातें मान लीं ।

२९०

अरी ? मेरे मन वचन तो थक गये, अब क्या करूँ ? ग्रति क्षण मैं तेरे पैर पकड़ती हूँ—पर तू मानती ही नहीं है । ऐसा

लगता है मानों तू बड़ी गही पर बैठ गई है । मेरे मुख की ओर भी नहीं देखेगी क्या ? अब चन्द्रकला—आकाश में फैलने ही वाली है । अब पहिले की भाँति प्रमुदित होकर तू न तो कुंज भवन के द्वार पर ही जाती है, और न भीतर ही । मोहन नागर तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । उन्हें कितनी आर्ति है—यह तू नहीं जानती ? गिरिधरलाल से तू मिलै, यही मुझे अच्छा लगता है ।

२९१

राधे ! तूने तो मान को अपना गढ़—सा बना लिया है, उसका घूंघट—रूपी कोट जीतने में ही नहीं आता । नेत्रों को दूत बनाकर भेजा था, सो वे भी अपने सहयोगी दूतों से जा मिले—उन्होंने कुछ उत्तर भी नहीं दिया । अब तो प्रभु से मिल कर अधर सुधा—रस का पान कर ।

२९२

राधिके ! गिरिधर ने अपने मुख की प्रसादी बीड़ी तेरे लिये पठाई है, इसे ले । प्याणप्यारे का प्रेम—संदेश सुननें को पास में क्यों नहीं आती है ? घूंघट खोलकर अच्छी तरह बांच ले, यह प्रियतम की ही चिट्ठी है । अब प्रभु गोवर्धनधर से मिलकर अपने नेत्र और हृदय दोनों को शीतल करले ।

२९३

सखी री ! तुझे बात सुनना अच्छा लगता है । रुचिर प्रेम रस से आतुर होकर अब प्रिय से मिलले । उनको जागरण करते चार पहर बीत गये हैं । उन्होंने मनुहार करके मुझे फिर से भेजा है । अधर सुधा—रस में मत्त प्रभु गोवर्धनधर तो अब तेरे ही प्रेम—रस में पड़ गये हैं—उन्हें अन्य कुछ नहीं सुहाता ।

२९४

## परस्पर-सम्मिलन—

“ कामिनी राधे ! मदनगोपाल से मिलने के लिये शृंगार धारण कर कुंजवन में चलो । तुम्हारा समस्त नख-शिख शृंगार अत्यन्त अनुपम और दिव्य प्रतीत होता है । गजगामिनी ! तुम्हारा यौवन नवल और केहरी-सी कटि, कदली-सदृश जंधा युगल हैं । तुम्हारे मुखचन्द्र को देखकर निशा-ब्रम से चकई बिछुड़ गई और कमल संपुटित हो गये हैं । ”

सखी के इस कथन पर स्वामिनी जैसे ही प्रियतम के समीप आकर खड़ी होकर उनके हृदय से संयुक्त हुई दोनों की घन-दामिनी सदृश अनुपम द्युति हो गई ।

२९५

मोहनराय ने मृग के समान चपलनयनी राधा को हृदय से लगा लिया और मधुर रस-भरी प्रेम वार्ता की । नख-शिख पर्यन्त अनुपम सौन्दर्य से संयुक्त और सम्पूर्ण रसाखाद की गतिविधि से परिचित श्रीराधा ने शरद-निशा में प्रभु गिरिधर को अपने कौशल से वश में करलिया ।

२९६

“ प्रियतम ! अब मैं तुम्हें किसी के घर न जाने दूँगी । गिरिधर प्यारे ! आप अनेक रमणियों के रमण कहलाते हो—मैं आपकी प्रतिज्ञा देखूँगी ? एक मैं ही अकेली हूँ जो तुम्हारे पीछे इधर-उधर भटकती फिरती हूँ, अब देखूँ आप कहाँ और कैसे जाते हो ? मैं इतना और भी-कहती हूँ कि-देखूँ ? वह कौन है जो—मुझ से स्पर्द्धा कर सके ” ।

२९७

“कुंवर कन्दाई ! ऐसी रमणीय वेशभूषा बनाकर कहाँ पधार रहे हो ? ऐसी कौन कामिनी है जो तुम्हारे चित्त पर चढ़ गई है ? आपका मुखचन्द्र तो दूज के चन्द्र की भाँति थोड़ा दीखकर ओझल हो जाता है । अरे ! थोड़े खड़े रहो, देखो ? आप तो चले ही जा रहे हो—तुम्हें ऐसा क्या पाठ पढ़ाया है ? देखो ! गोवर्धनधर ! कहाँ आपकी ठकुराई की ठसक को टेस न लग जाय ? ”

२९८

अरी ! सारंगनयनी ! आज तैने सुंदर ढंग से आँखों में काजल आंजा है । यह गजवेली ( शुद्ध लोहा ) की खरसान चढ़ी कटारी जैसी तीखी हो गई हैं । जब तू कटाक्ष से निरीक्षण करती है तो नयनकोर ( अपाङ्ग ) में इयामता और बढ़ जाती है—ऐसा लगता है मानों—इयाम के सुभग शरीर पर धात करने को धूंघट-ओट में बैठा हुआ मन्मथ-रूपी बहेलिया भ्रकुटि-धनुष पर तिलकबाण चढ़ाकर बैठा हो ।

ऐसी सगाहना सुनकर साज सजकर भामिनी ! गिरिधर रसिक सुजान से मिलने के लिये चली ।

२९९

### शयन—

देखो ! वहाँ झरोखें में दीपक का प्रकाश हो रहा है । हरि ऊंची चित्र-सारी ( शाला ) में पौँछे हुए हैं । सुंदर वदन देखने के लिये ऐसा यत्न किया है, जो दीपक का प्रकाश होता रहे । दोनों प्रिया प्रियतम परस्पर सरस प्रेमालाप कर रहे हैं । नवल नागरी राधिका और नवल लाल गोवर्धनधारी की मधुर जोड़ी सौभाग्य-सुषुमा की सीमा प्रतीत होती है ।

३००

युगल स्वरूप शयन कर रहे हैं। विविध पवन वह रहा है—उसी प्रकार शरद-निशा की चांदनी छिटक रही है। विविध पुष्पों की शश्या सुख और विलास को बढ़ानेवाली है। विकसित नवकुंज और तन पर तनसुख के वस्त्र शोभित हैं। युगलस्वरूप घन-दामिनी जैसे भासित हो रहे हैं। आनन्द विलास से प्रभु गोवर्द्धनधारी अतिशय आनन्दित हो रहे हैं॥

३०१

कुंज-सदन में युगल स्वरूप पौढ़े हैं, सेवार्थ सखियाँ द्वार-पर विद्यमान हैं। दोनों स्वरूप परस्पर रसविलास विविध प्रेम-चेष्टाएँ कर प्रमुदित हो रहे हैं। लाल गिरिधर और स्वामिनी राधिका दोनों स्वरूप प्रातःकाल, नवकुंज से पदार्पण कर रहे हैं।

३०२

सुरंग पड़दा पड़ी हुइ रंगमहल की तिवारी में युगल स्वरूप पौढ़े हुए हैं। प्रिया के आभरण जगजगा रहे हैं। प्रभु गोवर्द्धनधर भी रत्नभूषण धारण किये हैं और अपनी शोभा से कामदेव को मोहित कर रहे हैं।

३०३

“ प्रियतम ! रिमझिम २ मेह बरस रहा है, मैं उस ऊँची चित्रसारी में आपके पास कैसे आउं ? बादल चारों ओर उमड़ घुमड़ रहे हैं—मेरी साड़ी भींज जायगी मुझे वहाँ ले जलो ”

यह सुनकर प्रियतम ने अपना पीताम्बर उड़ा दिया और उसे गोरबड़ा तिवारी में लेकर पवारे। दोनों परम आनन्दित हुए।

३०४

सुरतान्त—

अरी ? तू अपने विखरे केश बांधती क्यों नहीं ? वे मुख-

चंद्र पर धिरे हुए बादलों के समान लगते हैं, और यह ऊपरसे कटि तट तक लटक आए हैं। तेरी अंग-अंग की शोभा अवर्णनीय है। रात्रि-जागरण से तेरा वेश अस्तव्यस्त हो गया है। तेरा उल्लास देखकर अनुमान होता है कि-तुझे व्रजयुवति-नरेश प्राणप्यारे गोवर्द्धन-धर मिले हैं ?

३०५

स्वामिनीजी के मांग में बिखरे हुए मोती ऐसी दीख रहे हैं मानों चन्द्र की पूजा करने को नक्षत्र आए हों ? उनका अंचल काम-नृप की ध्वजा जैसा उड़ रहा है। विरहरूपी राहु से कूट जाने पर द्विज-कला विमल हो गई है, हास्य झलकने लगा है। जिसे देखकर सुख होता है। इस शोभा को देखकर प्रभु गोवर्द्धनधर सौन्दर्य सुधा का पान करने लगते हैं।

३०६

प्यारी ? तेरे नयन रसम से हैं—वे रात्रि के उनीदे हैं। काम-कला की विपरीत बातें छिपाने से नहीं छिपती ? मुख पर जंभाई, चलने में, बोलने में सभी में आलस्य की छटा झलकती है। इन सब लक्षणों से प्रेमपूर्वक प्रियतम गिरिधर के मिलने की प्रतीति होती है।

३०७

सखी री ! तू जागरण से अलसाई हुई है। क्या चोर के भय से तुझे नींद नहीं आई ? या तू अकेली कुंज में बसी ? घरबालों के विरोध से रुसकर तू सांझ होने के पहिले ही बन में जा बैठी ? ऐसा भी कई कहते हैं। तेरे पास जो मोतियों की माला है—यह गिरिधर की है, यह मैं अच्छी तरह जानती हूं। तुझे पैरों में पड़ी मिल गई होगी ?।

३०८

प्यारी ? आज तेरा मुख प्रमुदित है, और नयन अरुण-राग से रंजित हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि शरद-कमल पर उन्मत्त खंजन युगल लड़ रहे हों ? सच है—रसिक शिरोमणि गिरिधर के शीतल कर—स्पर्श हो जाने से तू फूली २ क्यों न फिरेगी ? ।

३०९

आली ? तू विथरी हुई अलके क्यों नहीं सँभारती ? तेरी अकुटी कमान जैसी चढ़ी हुई है और नयन रतनारे हो रहे हैं, सो—रात्रि को तेरे पलक नहीं लगे ऐसा लगता है ? मत्त गजेन्द्र-सी चाल और रोमाञ्च अन्तःसुख को प्रकट कर रहे हैं। तू गिरिधर के साथ ऐसी मिली है जैसे—चन्द्रमा की झलक ।

३१०

मेरी समझ में आ गया है ? सखी ? तू प्राणप्यारे से मिल कर अपना मनोरथ पूर्ण करनुकी है। क्रीड़ा की रस—मत्तता के कारण सारी रात्रि तेरी पलक से पलक नहीं मिली, गोवर्धनधर को प्राप्त कर तूने अब अपना हृदय शीतल कर लिया है ।

३११

सखी ? तूने रसिक—शिरोमणि नंदलाल को प्राप्त कर विविध भाँति से अपना मनोवाच्छित पूरा कर लिया है ? निकुञ्ज में आनन्द-प्राप्ति का सौभाग्य और सुधा-रस तुझे ही मिला है। राधिके ! तू सचमुच बड़ी भाग्यवती है—जो त्रिभुवन-पति श्याम को आकृष्ट कर लिया और गोवर्धनधर ने हँसकर तुझे कंठ से लगा लिया है ।

३१२

प्यारी ? तेरी डगमगी चाल है, वेणी खुली हुई है, तेरे कुछ और ही ढंग दीखते हैं ? अधरों का रंग उड़ा हुआ है,

नख-चिन्ह, मरगजी माला और टूटा हुआ मुक्ताहार है। अंचल में जहाँ तहाँ पीक लग रही है। यह सब देखकर सखियाँ भी कुछ कानाफूंसी कर रही हैं। सुन्दरी ? ऐसा लगता है कि गिरिधरलाल से कहाँ तेरा मिलाप हो गया है ?

३१३

प्रियतम से मिलन के आनन्द को यह तेरे अलसाए नयन ही बतला रहे हैं। यह श्यामसुन्दर के रूप रस-स्पर्श से लास्य-सा कर रहे हैं, दीर्घता में आगे बढ़ते २ यह नंदनंदन के पास पहुंच जाना चाहते हैं—पर श्रवणों ने इनका मार्ग रोक दिया है। प्रभु गिरिधर की प्रीति-रस से मस्त होकर यह चारों ओर केरा कर रहे हैं—अपनी चंचलता दिखा रहे हैं।

३१४

माई ! तेरा प्रसन्न होना ठीक ही है। गिरिधरलाल के शरीर-स्पर्श से तेरा मन चाव से भर गया है। सखी ! तेरा दाव लग गया, जो श्यामसुन्दर निभृत निकुंज में तुझे अकेले मिल गये ? वे नंदकुमार सचमुच आनंद-सागर और रसिकवर ही तो हैं।

३१५

अब तो तेरा मनचाहा हो गया ? अब तू क्यों न फूलेगी ? गिरिधरलाल को मनाकर तूने रूप-सुधा का पान कर अपने हृदय का विरह-दुःख मिटा लिया। उनके विविध विहार और रस-रंग द्वारा कालिंदी-कूल पर तुझे सुख मिल गया। रस-निधान नंदनंदन के मिलने से तू आनन्द-मग्न हो गई है, अब तेरा पांव पुथ्यी पर क्यों पड़ने लगा ?

३१६

ब्रजसुन्दरि ! यह तो बता, आज रसिक गोपाल को तू कैसे मन भागई ? मृगनयनी ! सोलहों शृंगार सजकर तू ऐसे ही

भली जलदी चली आ रही है ? तेरा लाल लहँगा, झूमक साड़ी कस्बंबी रंग की है—सो क्या प्रियतम के लिये ही इस रंग में उसे रंगाया है ? तेरे नेत्र रसमसे और सालस्य हैं। अंग—अंग से शोभा विखर रही है। प्रभु गोवर्द्धनधर ने तुझे आज अपना लिया है ?

३१७

श्रीराधे ! आज तुम्हारी चूनरी अधिक सुन्दर लग रही है। परम गुण—प्रवीण मोहन इसकी बार—बार सराहना कर रहे थे। इसी प्रकार तेरे लोचनों में अंजन, भाल में तिलक, मांग में सेंदुर और शरीर पर बुख सभी सुन्दर हैं। वास्तव में तू गिरिधर-लाल के प्रेम—रस—रंग में सरावोर सनी हुई है।

३१८

बृषभानु—किशोरी गधा सोकर उठी हैं, अंगड़ाई लेते समय शरीर को मोड़ते हुए उन्होंने अपनी कोमल झुजाओं को मिलाकर ऊपर उठाया—उस समय उन दोनों के बीच मुख ऐसा लगा मानों सनाल कमल—युग ने अपना वैर लेने को चन्द्रमा को बांध लिया हो। युगल वक्षोंज, ऐसे लगते हैं मानों ब्रमर सहित दो कमल कोश निःशंक हो कर ऊचे उठ आए हों, शरीरकी शोभा और मुखपर प्रमुदित दोनों नेत्रों और उनकी अरुण—कटाक्ष—छटा ने त्रिभुवन की शोभा को चुरा लिया है। ऐसा लगता है मानों—चंद्र पर दो कमल एकत्रित हो रहे हों—सरसता देखते ही बनती है।

३१९

अरी ! आज तू फूली—फूली—सी क्यों डोल रही है ? मृगनयनी ! आज तेरा मुखचंद्र विशेष उल्लसित हो रहा है ? चोली कंचुकी, लाल रंग का लहँगा, उस पर रगमगी साड़ी कैसी क्फ़ब रही है ? नूपुरों की रुनझुन, कटि में किंकिणी, मलकरती हुई

चाल कुछ विचित्रा-सी ही है। नेत्रों में सुहंगी काजल और भाल पर तिलक-बिन्दी बांकपन से भरी हुई मांग के साथ अनोखी दीखती है। सखी ! ऐसा लगता है कि-तू आज गिरिधरलाल के प्रेम में रंग-सी गई है।

३२०

भासिनी ! तेरे केशों में वियुरे हुए कुमुम, रात्रि में नीले आकाश में छिटके हुए तारों-जैसे शोभा दे रहे हैं। मुख पर सहज छटी हुई अलक-लट, चंद्र को छिपा देनेवाली घन-घटा से क्या कम है ? वक्षस्थल पर विलुलित मोतियों की माला मानसरोवर-सी और दोनों ओर वक्षोज, तट पर बैठे हुए वियोगी चक्रवाक-से जान पड़ते हैं। सखी ! तुने मनोमोहक सौन्दर्य से गोवर्द्धन-धर को सहज ही वश में कर लिया है ?

**खण्डता ( वञ्चिता )—**

३२१

लाल गिरिधरधर ! तुम संध्या समय आने को कह गए थे, और अब सबेरा होते २ आपके दर्शन हुए हैं ? रात्रिभर ताग गिनते-गिनते नेत्र व्याकुल हो गए, चार पहर चार युग से बीते हैं। आपने अच्छा किया जो केलि चिन्हों को मिटा डाला ? पर अधर तो रुखे हैं, और वक्ष पर नख-आभूषण आदि के चिन्ह स्पष्ट दीख रहे हैं। रसिक शिरोमणि गिरिधर ! यह आपके कैसे ढंग हैं ?

३२२

लालन ! तुम इतनी देर तक कहां रहे ? सारी रात तुम्हारा पंथ निहारते २ मेरी आँखों में दाह हो गया। उसीके होकर रह गये जिसने आपको झुलावा दिया था ? गिरिधर ! आपने संध्या समय दिये हुए अपने वचनों का अच्छा परिपालन किया ?

३२३

मोहन ! आपके लोचन रात्रि-ज्ञागरण से उनींदे और रसमसे हो रहे हैं। आप लजित क्यों होते हो ? लालन ! कहिये तो आपने रात्रि में कहाँ निवास किया ? डगमगाती चाल, आलस और ज़माई, अस्तव्यस्त वस्त्राभूषण, स्पष्ट ही तो दीख रहे हैं। गिरिधर ! ऐसा विदित होता है मानों—किसीने तुम्हें भुज-पाश में जकड़ कर हृदय में कस कर बांध लिया हो ।

३२४

श्यामसुन्दर ! कहिये तो रात्रि कहाँ व्यतीत की ? जो अब अरुणोदय पर आ सके हो ? इसमें संकोच की बात क्या ? आप तो सचमुच ताम्रचूड़ (मुरगा) का बोल सुनते ही उठ कर दौड़ आए ? आपकी आँखे देखकर साक्षी की क्या जरूरत ? कीड़ा के चिन्ह सभी तो स्पष्ट हैं ? प्रभु गिरिधर ! अब छिपते क्यों हो ? मेरी समझ में सब आ गया है ।

३२५

लाल ! आज रात्रि कहाँ बसे ? जो उषःकाल होते ही डग-मगाते पैरों से भागे आए हो ? अभी तो तमचुर और चिड़ियाँ बोल रहीं हैं, इतने सबेरे क्यों उठ बैठे ? अधरों पर काजल, लटपटी पाग, मरगजी माला, अरुण नेत्र और ज़माई से मालुम होता है—आपने जागकर रात बिताई है ? श्याम ! चिन्हों को छिपाने से क्या लाभ ? ये तो स्पष्ट ही है कि—आप किसी चतुर नागरी के कँदे में कैस गए थे ।

३२६

मैं तो आपके पैर पूजती हूँ। प्रिय ! तुम्हे बातें बनाना अच्छा आता है। अरुण अधरों पर श्यामलता और गति में लटपटापन कैसा है ? कपोलों पर पान का रंग और वक्षस्थल पर पत्र-रचना

कैसी है ? गिरिधरलाल ? अब तो आप जहाँ रात्रि को जगे हो, वहाँ जाकर सुख दो तो ठीक है । प्रभु ! अटपटी देना छोड़ दो, अब आप पर कौन विश्वास करेगा ?

३२७

लालन ! तुम्हारी इन बातों से मन कैसे मान सकता है ? बना-बनाकर बात उससे कहिये जो आपकी लीला न जानता हो ? बहुत छिपाने पर भी चिन्ह नहीं छिपेंगे, वे स्पष्ट दीख रहे हैं । प्रभु गोवर्धनधर ! तुम तो बड़े भोले लगते हो ?

३२८

नंद-नंदन ! संध्या समय दिये हुए वचन आपके सत्य निकले ? रात्रिभर जागकर आप प्रातः होते ही बहुत शीघ्र आ गए । हड्डबड़ी में आपने पीत पट भूलकर नील पट ओढ़ लिया ? यह भी सावधानी का काम किया है । प्रभु गोवर्धनधर ! आपने अपने वचनों का अच्छा प्रतिपालन किया ?

३२९

लाल ! आज आप अनुराग से रंजित होकर जागरण कर किस के रंग में पगे हो ? लाल नयन, मरगजी साला, शिथिल चाल-ढाल तो दीख ही रही है । आपकी अंग-प्रत्यंग की छबि का क्या वर्णन किया जाय ? अलल-गलल आपके बोल भी सुहावने हैं । प्रिय प्रभु गोवर्धन-धर ! आप बड़े भले लगते हो ? आपके यह हाल कैसे है ?

३३०

गिरिधर ! रात्रि में आप किसके भवन में जागरण करते रहे ? संकोच मत करो, प्रियतम ! कुछ तो कहो ? आप मेरे घर पधारिये, मैं अपने पलकों से मार्ग साफ करूँगी, मेरे भाग्य आकर जगाइए । रगमगे पाग के पेंच खुल रहे हैं, अलकें बिखर

रहीं हैं; पीत पट खिसका जा रहा है, जरा इसे तो सँभाल लीजिये। प्रभु गोवर्द्धनधर ! आपकी छवि का क्या वर्णन करूं ? बस देखती रहें और सुख पाती रहें—यही इच्छा होती है।

३३१

मोहन ! आप बोलते क्यों नहीं हो ? हमसे क्यों लजा रहे हो ? मैंने वहां से आते देखकर ही आपको पहिचान लिया था। भुज-मूल पर कर्णफूल के और कंकण के चिन्ह पहिचाने हुए हैं। प्रभु गिरिधर ! आपके रंग-ढंग मुझ से क्या छिपे हुए है ? सब जाने-पहिचाने हैं।

३३२

श्यामसुंदर ! आप निशा में कहां जगे हो ? उस स्थल पर बिना गुण की माला (गडे हुए मोतियों के चिन्ह) अधर पर अंजन, भाल में महावर और कपोल पर पीक के चिन्ह तो हैं ही। रगमगी चाल, शिथिल अंग, अस्फुट वचन और वक्ष पर अंकित नखरेखा, पीठ पर गडे हुए कंकण के आकार और विह्वल चितवन से आपके रात्रि-जागरण का भान होता है। रात्रि-भर आपके पलक नहीं लगे हैं ?

सत्य बात कहिये, संकोच क्यों ? कहिये तो वह बड़भागिनी कौन है ? जिसके प्रीति-फंद में आप फंस गये थे, किसके अनुराग में रंगे थे। गिरिधर ! यह सब होते हुए भी आप शपथ खाकर अपनी निर्देषित प्रमाणित करना चाहते हो ?

३३३

अपने भवन में गोपी सिसक सिसक कर कह रही है कि— ‘नंद-सुत व्रजराज सांवले को किसी चतुर व्रज-नागरी ने मोहित कर लिया है। चार मास के लिये आनन्द-विहार और निवास अब वहीं हो गया है। वे मुझ पर अब कब कृपा करेंगे ? मैं

विधाता से अचरा पसार कर वर मांगती हूँ। गोवर्धनधर ! अब तो शीतकाल भी दोनों हाथ झाड़कर चला गया है, अब भी आपका आगमन नहीं हुआ ?

### विरह [ द्वितीय अवस्था ]—

३३४

वह दिन कब आयगा ? जब मैं नयन भरकर सुखदाता श्याम-सुन्दर के मनोहर अंग-प्रत्यंग का दर्शन करूँगी । गोप-वृन्द को संग लेकर प्रतिदिन वृन्दावन में विहार करना और गोदुग्ध का तथा बांट-बांटकर पयःफेन-घैया का पान करना—स्मरण हो आता है । हाय ! सुख की नींद सोए बिना कितने दिन बीत गए ? अब तो गिरिधर के बिना किसी प्रकार भी मन में चैन नहीं पड़ता ।

३३५

अब तो दिन-रात पहाड़—से भारी हो गये ? जब से हरि मधपुरी चले गए, तब से इनका अन्त ही नहीं आता । ऐसा लगता है कि—विधाता ने युग के समान नया एक २ पहर बनाया है, जो बीतता ही नहीं है—जागते २ अकुला जाती हूँ । वियोग के पहर मित्र के समान पीछा छोड़ते ही नहीं हैं । ब्रजबासी वैसे ही अत्यन्त दीन-हीन है, फिर विरह से व्याकुल हो उठे हैं, ऐसे प्राण—विहीन हो गए हैं ? जैसे पाला पड़ने से कमल । नंदनंदन के विछोह से अनेक सन्ताप उठाने पड़े हैं । गिरिधर के बिना दोनों आँखों में आँखू छल-छलाए ही रहते हैं ।

३३६

विरह बाण की चोट जिस को लगती है, वही जान सकता है ? यह दुःख तो भोगने से ही समझ पड़ता है, कहने से समझ

में नहीं आता। जैसे ब्रह्मलिया का विष से बुझा तीर थोड़ासा भी लगने से नखसख-पीड़ा पहुंचाता है—वही इसकी स्थिति है। वहुत यत्र करने पर रातदिन एक पल भर भी चैन नहीं पड़ता। इस मार्मिक व्यथा को लाल गिरिधर के बिना और कौन पहचान सकता है?

३३७

आह! तस्णकिशोर रसिक नंद-नंदन के मुखकमल को—जिस पर कुछ २ रोमरेखा भींज रही है—बिना देखे आज कितने दिन बीत गए? अनुपम कोटि चन्द्र को लजाने वाली वह मुख-शोभा, शरीर का लावण्य, तरछी चितवन, स्मित हास्य और विचित्र नट-रूप का स्मरण करते ही हृदय मसोस जाता है। नंद-कुंवर के संग मिलकर खेलने की उत्कण्ठा होती है। लाल गिरिधर के बिना जीवन-जन्म का कोई मूल्य नहीं है।

३३८

जब से प्रियतम का बिछोह हुआ? तभी से मेरी नींद भी विलीन हो गई? भूलकर भी कभी आँख नहीं लगी। मुझे रात्रि युग के समान हौं गई है। आहार-विहार शूंगार सभी से ग्लानि-सी हो गई है, चित्त की चिन्ता एक पल भी नहीं घटती।

कुंभनदास कहते हैं—प्रभु गोवर्द्धन के विरह में गोपिका सूखकर पीली पड़ गई है—उसे प्रतिदिन नई पीड़ा उठानी पड़ती है।

३३९

“वह दिन चले गये जब हरि मुझे अपने पास बैठा लेते थे। अहा! एक दिन अर्द्धरात्रि में उन्होंने गिरि-शिखर पर चढ़कर वेणुनाद द्वारा बुलाया था। अपने करकमलों से विविध कुमुमों को वेणी में गूंथा और मेरी मांग सँवारी थी। जब प्रेम

से परस्पर अंग-निरीक्षण करते थे ? कितना सुख मालुम पड़ता था—अब वह कहाँ ” ?

यह सब बातें उनसे एकान्त में कहना जब कोई समीप न हो—कहना प्रभु गोवर्द्धनधर ! आप के ये रंग-ढंग कैसे हैं ?

३४०

माधव ! इतने दिन योंही निकल गए । अरे ! गोकुल और मथुरा में कितनी दूरी थी ? इसे थोड़ा भी तो नहीं बिचारा ? न कभी संदेशा आया न पत्र पाया । आपको स्मृति भी नहीं रही ? प्रीति एक तिनके का सहारा था, रहा—सहा वह भी टूट गया । प्रभु गिरिधर के बिना एक-एक क्षण कल्प के समान व्यतीत हो रहा है ।

३४१

गोपाल ! तुम्हारे मिले बिना कुलवधू व्रज की सुन्दरियाँ अत्यन्त आतुर और विरह से विह्वल हो गई हैं । उन्हें शीतल चन्द्र सूर्य के समान संतापदायक हो रहा है, किरणें तीखीं लग रही हैं, कमलपत्र सर्प-विष जैसे दाहक हो गये हैं । चंदन, पुष्प आदि शीतल उपचारों से शरीर में ज्वाला—सी लग जाती है । घनश्याम ! आपके बिना यह व्रजबालाएँ ग्रीष्मऋतु में कनकलता के समान सूख गई हैं । गिरिधरलाल ! आप अधरामृत का सिंचनकर उन्हें जीवन-दान दीजिये ।

३४२

काली घनघोर घटा देख कर विरहिणी व्रजनारियाँ मूर्च्छित हो धरती पर बेसुध गिर जाती हैं । कोयल की कूक और बिजली की कौंध ने धेर-धेर कर विरहिणियों को झुलसा दिया है । सुख-निधान प्रभु गिरिवरधर ! आप गोवियों की रक्षा वयों नहीं करते ?

३४३

अंधियारी रात्रि में जब बिजली कोंध जाती है, तब हरि के बिना सूनी सेज पर सखी ! मैं डरकर उच्च पड़ती हूँ। जैसे २ प्रीतम की सुरति आती है, औंधती हुई गाघर के समान नेत्रों से आँख निकल पड़ते हैं। प्रभु गिरिधर के बिना अब नींद भी प्रतिक्षण छाती रोंधती हुई चली जाती है।

३४४

सखि री ! प्रियतम नहीं आए ? मुझे जगते २ ही रात बीत जाती है। चारों पहर बैठी २ अकुलाते नेत्रों से दशों दिशाएं देखती रहती हूँ। मैं तो तेरे भरोसे पर रही, समझा था तू गिरिधरलाल को लेने गई थी ? तूने मुझ से कष्ट तो नहीं किया था ? आली ! चातक को घनरस की प्यास के समान मुझे भी प्रभु की चाह लगी हुई है, उनके बिना अब मैं रह नहीं सकती ?

३४५

नयन-घन नीर वरसाए बिना अब एक घड़ी भर को भी शान्त नहीं रहते ? व्रज में वियोगाश्रु की वर्षा निरन्तर होती रहती है। विरहरूपी इन्द्र रातदिन वस्त्रये ही जा रहा है, ऊर्ध्व श्वासरूपी पवन के तेज झक्कोरे चलने लगते हैं, और उरः स्थली भींज-भींजकर लवालव भर गई है। अबम्बर-वस्त्ररूपी आकाश, द्वुमरुप भुजाएँ और स्तन-रूप ऊंची भूमि भी बूढ़ी जा रही है। पैर अटक जाते हैं, मन पथिक थक जाता है, चंदन रूपी कींच मच गई है। सभी ऋतु अब मिटकर वर्षा बन गई हैं—हरि ने यह क्या उलटी बात कर दी है ? लाल गिरिधर के बिना तो सभी नीति-मर्यादा टलती जा रही हैं !

३४६

माई ! देखो वर्षा की अगवानी होने लगी, कुंजों में दादुर,

मोर, पपीहा बोलने लगे। आकाश में बक-पंक्तियाँ उड़ने लगीं। घुमड़ते बादल देख और उनकी गर्जना सुनकर सयानी ! तू ही ही बता ? कैसे जिऊं, इस समय तो प्रभु गोवर्द्धनधर ही सुख शान्ति दे सकते हैं।

३४७

अरी ! वर्षा ऋतु आ गई इधर-उधर चातक मोर बोलने लग गए। उमड़-घुमड़ कर उठते काले बादलों के बीच सफेद बक-पंक्ति कैसी उज्ज्वल लगती है ? हा ! हरि के संयोग विना यह दिन कैसे पूरे होंगे ? दादुर की रट से रात्रि में नींद भी नहीं आती। प्रभु गिरिधर ने अब भी इधर आनेका विचार नहीं किया, क्या उनका विछोह ही मेरे हिस्से में पड़ा है ?

३४८

अरी माई ! इन चौमासे की रातों, वर्षा की बूंदो आदि से कैसे पार पाऊं ? नन्दकिशोर से वियोग जो आ पड़ा है ? जब दामिनी कोंध जाती है, अकेली शश्या पर डरप जाती हूं। चारों ओर गरजते धन देखकर तो रहा नहीं जाता। सखी ! तू गिरिधर से मुझे मिला दे, जो—सदा उनके अंक से लगी रहूं।

३४९

चारों ओर बादल उड़ल पड़े हैं। शश्या पर गिरिधर के वियोग में रात्रि में डरप जाती हूं। कहां यह मनोरम ऋतु और कहां प्रियतम का वियोग ? विधाता ने न जाने किस ईर्ष्या से मेरे भाग्य में इसे लिख डाला है ? अब तो यह नयन—युगल प्रियदर्शन की तृष्णा से परितम हो उठे हैं।

३५०

आली ! श्रावण का महिना आ गया, अब कैसे ढांडस

बांधू ? चातक, कोयल, मयूरों का बोल सुन २ कर कान जल उठे हैं। चारों ओर पहाड़ के समान ऊंचे २ बादल उठ रहे हैं—इनका घनश्याम वर्ण देखकर धैर्य कैसे बांधा जाय ? आली ! अब तो प्रभु गिरिधर से मिलन, हो ऐसा कोई उपाय जल्दी कर ।

३५१

मार्ग देखते—देखते यह लो ! सावन ही आ गया ? अवधि के दिन कभी के पूरे हो गए । अब भी प्रियतम का आगमन नहीं हुआ ? घन की गर्जना कैसे सही जाय ? इस पर चातक की पियू—पियू की रट सुन पड़ती है । वह कैसे सही जाय ? हा ! वह समय कब आवेगा ? जब मनभावन गिरिधर के नयनभर कर दर्शन कर सकूंगी ?

३५२

हरि समीप नहीं है, यह हरियाला सावन का महिना कैसे निकलेगा ? अंधियारी रात्रि में जैसे २ चंचला चमकती है—मेघ की गर्जना होती है, वैसे २ मुझे चित्त में डर लगता है । चारों दिशाओं में उठते हुए बादलों को देखकर धैर्य भी तो नहीं बंधता ? प्रभु गिरिधर के विरह में किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता अब क्या किया जाय ?

३५३

माई ! घन में मोरों का शोर सुनकर अब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता । श्याम घटा, और उड़ती हुई बगुलओं की कतार देखकर नयनों में आंख भर २ आते हैं । बादलों की गड़गड़ाहट बिजली की तड़तड़ाहट, और भयंकर अन्धकार से चित्त डरप जाता है, मैं बेचेन हो जाती हूं । गोपाल—बिना सूनी सेज देख कर नींद नहीं आनी, चौंक २ पड़ती हूं, चंदन चन्द्रमा, शीतल वायु और पुष्पमालाएँ विष—समान लगती हैं—इससे तो

मन और भी जलने लगता है मदन-दुःखमोचन प्रभु गिरिधर  
अब न जानें कबतक मुझे मिलेंगे ?

३५४

अंधियारी रात्रि और उसमें भी यह विजली क्षणक्षण में  
चमक २ कर डरपा जाती हैं। बूँदों के पड़ने चारों ओर  
घन की गरजन तरजन से हृदय और भी व्याकुल हो जाता है,  
आँख नहीं लगती और नींद में चौंक पड़ती हूँ। समझ में नहीं  
आता ? रसिकवर लाल श्रीगोवर्द्धनधारी कब मिलेंगे ?

३५५

अब लो वर्षा भी आगई। गोपीनाथ ने शीघ्र ही लौट  
आने को कहाथा, पर अवतक न आए ? न जानें किस मुहूर्त  
में वे पधारे थे ? घन गरजने और चातक-मोर बोलने  
लगे—अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। प्रातःकाल से पंथ निहारते  
प्रतीक्षा करते दिन निकल जाता है, रात्रि हो जाती है। प्रभु  
गिरिधरलाल प्रियतम के बिना कैसे रहा जाय ? तू ही बता।  
उनके बिना सारा ब्रज शून्य लग रहा है।

३५६

दूसरों को सामीप्य और मेरे बाटे में वियोग पड़ा है।  
आली ? सभी कोई अपनी २ सुख की नींद सोते और उठते हैं—  
मैं चारों ओर मार्ग देखा करती हूँ। समझ में नहीं आता ?  
विधाता ने किस अपराध पर क्रोधित होकर मेरे भाग्य में एसे  
अंक लिखे हैं। तृष्णाकुल चातक घन के लिये जैसे रट लगाता  
रहता है। वैसे ही ‘गिरिधरलाल’ ‘गिरिधरलाल’ की रट रात-  
दिन मुझे लगी रहती है।

३५७

इस वियोग की रचना न जाने किसने की है ? इससे बढ़ कर संसार में कोई दूसरी पीड़ा नहीं है । इसमें हृदय जलता और भस्म होता रहता है । एक २ पल युग समान बीतता है, जीना कठिन हो जाता है । प्रभु गोवर्धन जबसे इस ब्रज से पधारे हैं तभी से तन, मन, प्राण सभी वे अपने संग ले गए, ऐसा मालुम पड़ता है ।

३५८

जिस दिन से हरि हमें छोड़ गए, तब से भूलकर भी आँखों में नींद नहीं आई । वे युवतियाँ धन्य हैं जो स्वप्न में भी प्रियतम को निहार कर एक क्षण भी विरह से छुटकारा पा लेती हैं । यह शीतलोपचार चंदन, चंद्रमा की किरणें तो अग्नि के समान और भी हृदय जलाया करती हैं । गिरिधरलाल के बिना अब तन की तपन कौन बुझा सकता है ?

३५९

गोविंद आप तो वृन्दावन की साध हैं । लोचनों को अगाध तृप्त करने वाली वह मनोहर भूमि हैं-अगाध तृप्ति के स्थल हैं । प्रभु ! यह तो बताओ ? आपको इस क्षार समुद्र का निवास कैसे प्रिय लगता है, राधिका के बलभ आपको कालिंदी के समीप जो सुख मिलता है वह वहाँ कहाँ ? सभी ब्रजवासी आपके पैरों पड़ते हैं-एक बार आप ब्रज में आइये । प्रभु गोवर्धनधर ! आपके बिना सर्वत्र शोक ही शोक छाया हुआ है ।

३६०

गोपाल ! सुनिये ? एक ब्रज की सुंदरी आपसे मिलने को तरस रही है । मुझे मिला देने को बार-बार कहती है, सचमुच उसके चित्त में बहुत आर्ति है । रातदिन तुम्हारा नाम जपती

रहती है। समझाने पर भी उसके चित्त में कोई बात नहीं बैठती। चित्त श्यामल-तन में चिहुंट गया है, लोक-लाज का अब उसे कोई डर नहीं रहा, क्षणभर को उसे चैन नहीं। वह अतिशय आतुर और विरहिणी हो रही है। प्रभु गोवर्धनधर ! आपके विना वह अपने शरीर को योंही गला रही है।

३६१

मोहन ! एकवार इधर देख लोगे तो तुम्हारा क्या बिगड़-जायगा ? आपने तो अपना मन चल-दल (पीपल) के पत्ते के समान चंचल कर लिया है—कभी ठहरता ही नहीं, जबतक इकट्ठक तुम्हारा मुख देखती रहती हूँ तभीतक मुख मिलता है—हृषि से ओझल होते हृदय व्याकुल हो जाता है। प्रभु आप इतने क्यों विमन हो गये हो ? देखो २ उसका शरीर गल गया है।

३६२

बात कहने जैसी हो तो कही भी जाय ? प्राणनाथ के वियोग की व्यथा तो हृदय में ही समझी सकती है। उसे दूसरे कों कैसे बताया जा सकता है। बताया भी जाय तो उसका दूसरों को क्या अनुभव होगा ?

इति लीला-पद

**ॐ**

**ॐ** प्रकीर्ण विभाग के कुछ पदों को छोड़कर बहुत से पद 'कुंभनदास' कृत प्रतीत नहीं होते। किसी विशेष शृंगार या प्रसंग के लिये प्रचलित पदों की तुक लेकर इनकी रचना की गई है। प्रस्तुत कारण और किसी विशेष भाव के द्वातक न होने से सं. ३६३ से ४०१ तक पदों का सरल भावार्थ नहीं लिखा गया।

शरदुत्सव,  
सं. २०१०.

भावानुवादक,  
पो. कण्ठमणि शास्त्री.

इति  
श्रीकुंभनदास कृत  
पद-संग्रह  
तथा  
सरल भावार्थ

स  
मा  
स

“ कुंभनदास कृत—पदसंग्रह ”

## प्रतीक—अनुक्रमणिका

[ १ प्रस्तुत अनुक्रमणिका में कोषान्तर्गत प्रतीके पाठन्तर की प्रतीके हैं। प्रारंभिक रूपान्तर के परिचयार्थ उनका देना आवश्यक समझा गया है।  
 २ बड़े टाइप की प्रतीकवाले पद वातसे सम्बन्धित हैं, तदर्थ विद्याविभाग द्वारा प्रकाशित ‘अष्टछाप’ वार्ता [ सं. १६९७ का संस्करण ] देखी जा सकती है।  
 ३ जिन प्रतीकों के आगे \* चिन्ह और संख्या के स्थान पर शून्य दिया गया है, वे असम्बद्ध और अस्वाभाविक होनेसे प्रक्षिप्त हैं। संग्रह में उन्हें स्थान नहीं दिया गया है। ]



| प्रतीक                 | पदसंख्या | प्रतीक                   | पदसंख्या |
|------------------------|----------|--------------------------|----------|
| अ                      |          | * आजु कलु वदरनि अंबर     | ०        |
| अनमनी-सी तुं काहे      | २७५      | आजु कौन अंग तें          | ३१६      |
| अब ए नैनाई तेरे करत    | २४९      | आजु छठी जसुमति के        | ६        |
| अब दिन राति पहार-से    | ३३५      | आजु तेरी चूनरि अधिक      | ३१७      |
| अब हाँ कहा करों मेरी   | २३७      | आजु दधि देखों तेरो       | १३       |
| अवधि असाठ धाम          | ०        | आजु दसहरा सुभ दिन        | २४       |
| अरी इह दान जु लैहैं    | १८       | आजु निसि जागे अनुरागे    | ३२९      |
| अरी माई देखत कौ        | १३५      | आजु प्यारी पिय के संग    | ३८४      |
| अरुक्ति रह्यो मोहन सों | २३८      | आजु ब देखियत वदन         | ३०८      |
| आ                      |          | आजु बधाई श्रीवल्लभ द्वार | ५९       |
| आई रितु चहुं दिसि फूले | ६७       | [ आजु माई आगे नई ]       | [९५]     |
| आई सकल व्रजनारि        | १०९      | आजु माई धन धोवति         | ४८       |
| आए माईं वरखा के        | ३४६      | * आजु सखी उठि भोर        | ०        |
| आगम सावनु क्यों भरिये  | ३५०      | आजु हमारे मोहन जैवे      | १८४      |
| आजु आंजी आछी अखियाँ    | २९८      | आजु हरि जैवत अति         | १८०      |
| आजु उर चंदन लेप        | ३६४      | आजु हरि जैवत छाक बनाइ    | ३६९      |
| आलु उहै बन जाइवौ       | १२       | * आंधी अधिक उठी आवति है  | ०        |
|                        |          | आनि पाए हो हरि नीके      | १२९      |

| प्रतीक                    | पदसंख्या | प्रतीक                    | पदसंख्या |
|---------------------------|----------|---------------------------|----------|
| आयो हो बरसि बादर          | ३५५      | कमलनयन प्यारे अबघर        | २८       |
| आरोगत मोहन मंडल           | १८२      | करत केलि भिलि कुंज        | ३८७      |
| [ आवत गिरिधर मन जु ]      | [ १८७ ]  | कहत न वर्नि आवै हरि       | १४८      |
| आवत मोहन चित्त            | १८७      | कहति तू तौ नैननि ही       | १९३      |
| आवत ही जु करी चतुराई      | १४३      | कहा करों उह मूरति जिय तें | २१४      |
| इ                         |          | कहा नंद के तू आवति        | १९४      |
| [ इतनि बार लों तुम कहां ] | [ ३२२ ]  | कहिये कहा कहिये की        | ३६२      |
| इनि ढोटा है डहकी री       | २२७      | कहे तें बात न भावै        | २७३      |
| इनि नैननि तुम देखो री     | २२८      | कहो धों आजु कहां बसे      | ३२५      |
| इह तौं एक गांउ कौ वास     | १७       | कहो धों कहाँ तुम रैनि     | ३२४      |
| [ इह दान जु लै हैं रस ]   | [ १८ ]   | बह्यौ न मानति जोवन        | २५९      |
| उ                         |          | कारी निसि में दामिनि      | ३४३      |
| उठि चलि काहे न मोहन       | २८१      | काहू तुम चलन न देत        | १६       |
| उडत वंदन नव अवीर बहु      | ७०       | [ काहे तें बात न भावत ]   | [ २७३ ]  |
| उलरे बादर चहूं दिसा तें   | ३४९      | काहे तें आजु विशुरी       | ३०९      |
| ए                         |          | काहे बांधति नांहि न छूटे  | ३०४      |
| एक गांउ कौ वास सखी री     | २३६      | काहे मोहन बोलत नांहिने    | ३३१      |
| एरो यह फेटा ऐठवा          | १८८      | कान्ह तिहारी सौं हाँ      | १३७      |
| ऐ                         |          | कान्ह दुहि दीजै हमारी     | १३८      |
| ऐसी को मन भाई             | २९७      | * कित बरखा आगम के डंकर    | ०        |
| ऐसी बातनि लालनुं          | ३२७      | किते दिन है (जु) गप बिनु  | ३३७      |
| औ                         |          | कुंजनि घास अति तपत        | ३७३      |
| औरनि कोंब समीप बिछुरनो    | ३५६      | कुंवरि राधिका तू सकल      | १५९      |
| क                         |          | को रोकै री आवत इहि        | २३९      |
| कदम तर ठाडे हैं बल        | ३८२      | कौन के भवन नीके रैनि      | ३३०      |
| कबकी वचन तोसों कहति री    | २५४      | क्रोडत कान्ह कनक आंगन     | १३२      |
| कब हौं देखि हों भरि       | ३३४      | ख                         |          |
|                           |          | खेलत फाग गोवर्द्धनधारो    | ७६       |
|                           |          | खेलत बन सरस वसंत          | ७३       |
|                           |          | खेलन कों धौरी अकुलानी     | ४९       |

| प्रतीक                            | पदसंख्या | प्रतीक                   | पदसंख्या |
|-----------------------------------|----------|--------------------------|----------|
| <b>ग</b>                          |          | <b>च</b>                 |          |
| [ गरजि उठे वादर ]                 | [ ३४९ ]  | चंदन पहिरत गिरधर         | ८६       |
| गरजि गरजि रिमि-झिमि २             | १७७      | चलहि राधिके सुजान        | २७       |
| गहरी सघन स्याम ढाक की             | १७६      | चलहु नव नागरी रुप गुन    | ३६       |
| गांइ खिलावत स्याम                 | ५०       | चलि अंग दुरायें संग मेरे | २८३      |
| गांइ सब गोवर्द्धन तें आई          | १८९      | चलि चलि री बन बोली       | २८४      |
| गावति गिरिधरन-संग                 | ३५       | चलि बन बहत मंद सुगंध     | ६८       |
| गिरिधर आवत गांइनि पाछै            | ३६६      | चारु नट-भेसु धरि बैठे    | २६५      |
| गिरिधर ढूढ़त फिरी बन              | ०        | चाहत-चाहत मारगु अब       | ३५१      |
| गिरिधर पिथ के हुड़ै बसी           | १६३      | चितवत नेंकु कहा है जात   | ३६१      |
| गिरिधर लाल रस-भरे                 | ७२       |                          |          |
| गिरिराज-धरन तोहिं देत             | २८३      |                          |          |
| गुंजामनि की माल हरि               | २७६      |                          |          |
| गुमानी घन काहे न बरसते            | ३९२      |                          |          |
| गोकुल की जीवनि गोपाल              | ५७       |                          |          |
| गोकुल की (तें) ब्रजनारि [दानलीला] | २३       |                          |          |
| गोकुल घर-घर होत बधाई              | ६०       |                          |          |
| गोपाल के बदन पर आरती              | १९१      |                          |          |
| गोपाल तरनि-तनया तीर               | २९       |                          |          |
| गोपाल तोसों खेलै कौन              | १३९      |                          |          |
| गोपाल सखी लियो मेरौ               | २२३      |                          |          |
| गोवर्द्धन की सघन कंदरा भोजन       | ३७४      |                          |          |
| गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर परम        | ९३       |                          |          |
| गोवर्द्धन पूजत परम उदार           | ५४       |                          |          |
| गोवर्द्धन पूजत हैं ब्रजराइ        | ५५       |                          |          |
| गोवर्द्धन पूजन चले गोपाल          | ५२       |                          |          |
| गोविंद करत मुरली गान              | ३१       |                          |          |
| गोविंद वृंदावन की साध             | ३५९      |                          |          |
| ग्वालिनि तैं मेरी गेंद            | १४०      |                          |          |
| <b>घ</b>                          |          |                          |          |
| घटा घनघोर उठी अति                 | ३४२      | जुवति-जूथ संग फाग        | ७४       |
| घर-घर तें आई छाक                  | १७५      | जुवतिनि संग-खेलत फागु    | ६१       |
|                                   |          | * जैवत हरि बैठे कुंजनि   | ०        |

| प्रतीक                                   | पदसंख्या | प्रतीक                      | पदसंख्या |
|--|----------|-----------------------------|----------|
| जैवत हैं री मोहन अब<br>जो कछु बात कहि गए | १८३      | तू तौ चलि वेणि रजनी जाइ     | २५८      |
| जो तू अछत-अछत पगु                        | २२५      | तू तौ नंद-भवन आवन           | १९२      |
| जो तोसों बात कही पिय                     | २८५      | तू नंदलाल हि बहुत           | २५२      |
| जो पें चोंप मिलन की                      | २२१      | तू ब देखि [री] निसापति      | २६३      |
| जोरी रति नैननि नैन                       | २१२      | तू भाई गोपाल हिं चितै       | १९६      |
| <b>झ</b>                                 |          | ते दिन विसरि गए जब          | ३३९      |
| झूलें माई गिरिधर सुरंग                   | ११०      | तेरे तन की उपमा कों देख्यौं | १६८      |
| झूलें माई जुगल किशोर                     | १०७      | तेरे नैन चंचल वदन           | १६९      |
| झूलें माई स्यामा स्याम                   | १११      | तेरे मन की बातें कौन        | २७२      |
| <b>ट</b>                                 |          | तेरे सिर कुसुम विथुरि       | ३२०      |
| टीक दुपहरी में खस-खाने                   | ८७       | तेरौ भांवतो भयो री          | ३१५      |
| <b>ड</b>                                 |          | तेरौ मन मोहन [गिरिधर] विनु  | २८७      |
| डगमगि चालि आजु                           | ३१२      | तै तौ लाल विलगु करि         | ३११      |
| डोलति फूली-सी तू काहे                    | ३१९      | तैं सूधें बातौ न कही        | २६८      |
| <b>ढ</b>                                 |          | तोसों जु रस में कछु         | २६९      |
| ढरकि रहौ सीस दुमालौ                      | ३६३      | तोहिं मिलन हित बहुत         | २६१      |
| <b>त</b>                                 |          | तौ हौं कहा करों री माई      | २१०      |
| तबकी तू मान कियें रही                    | २६०      | <b>द</b>                    |          |
| तरनि-तनया तीर आवत                        | १५३      | दम्पति दोउ राजत कुंज        | ३८५      |
| [तरनि तनया-तीर रास] [२९]                 |          | दरसन देखन देहु मेरे         | २०९      |
| [तुम देखो री सोभा नागर] [१४६]            |          | दान कैसो रे तुम भए          | ३९१      |
| तुम नीकें दुहि जानत गईयां                | १३६      | दान दै रसिकनी चली           | १४       |
| तुम विनु को ऐसी कृपा करै                 | ४०१      | दान ब्रजराज कौ लाडिलौ       | २२       |
| तुम्हारे पूजिये पिय पाइ                  | ३२६      | * दूलहै सिर फूल मेहरौ       | ०        |
| तुम्हारे मिलनबिनु दुखित                  | ३४१      | देखत स्याम सुरूप सखी री     | १९५      |
| तू चलि नंद-नंदन बन बोली                  | २८६      | देखि री आवनि मदन            | १८५      |
| तू तौ आलस भरी देखियत                     | ३०७      | देखि वसंत समै ब्रज          | ७१       |

| प्रतीक                      | पदसंख्या | प्रतीक                       | पदसंख्या |
|-----------------------------|----------|------------------------------|----------|
| देखो माई देखहु उलटी         | २०१      | निरखत रहिये गोवर्द्धन रानौ   | २४०      |
| देखो वे आवें हरि धेनु लियें | १८६      | निसि अँधियारी दामिनी         | ३५४      |
| देखो री सोभा स्याम तन       | १४६      | निसि के उनींदे मोहन नैन      | ३२३      |
| देखो सखी चहुं दिसि तें      | ९५       | नैन घन रहत न एकु घरी         | ३४५      |
| देखो सखी मोहन नंद           | ३६८      | नैननि चटपटि लागिये           | २००      |
| [देखो हरि आवत धेनु]         | [१८६]    | नैननि टगटगी लागी             | २३०      |
| देहु कान्ह कांधे कौं कंबर   | ९६       | न्याइ री तू अलकलडी           | २७१      |
| दोऊ जन भीजत अटके            | ९९       | <b>प</b>                     |          |
| <b>ध</b>                    |          | पठई गोपाल हौं तोकों          | २५१      |
| धनि दिन आजु विजय दसभी       | २५       | परम कुलाहल होइ               | १०       |
| *धरें कटि स्याम पिछोरा      | ०        | परम भावते जिय के ह्वो        | २०६      |
| <b>न</b>                    |          | पलना झूलत गिरिधर             | ४        |
| नउवर झूलत सुरेग हिंडोरे     | ११३      | पवित्रा पहिरत गिरिधर         | १२१      |
| नन्द के लाल मन-हान          | १२८      | पवित्रा पहिरें राजकुमार      | १२४      |
| नन्द-नन्दन की बलि २         | २३४      | पवित्रा पहिरें श्रीगिरिधर    | १२२      |
| नन्द-नन्दन के अंक तें मुरली | १४१      | पवित्रा पहिरें श्रोगोकुल राइ | १२३      |
| नन्द-नन्दन नवल कुंवर        | १४७      | पहिरें सुभग अंग कसुंभी       | ९४       |
| [नन्द-भवन आवन के मिस]       | [१९२]    | पावस रितु कुंज सदन           | ११९      |
| नन्दलाल गोवर्द्धन कर धारयौ  | ५६       | पिय कौ रुख लिये रहों         | २८०      |
| नयन भरि देखे नंद-कुमार      | २२८      | पिय संग झूली री सरस          | ११२      |
| *नव निकुंज में जैवत दोऊ जन  | ०        | पीउ आए नाहिं सखी री !        | ३४४      |
| नव रंग टूलह रास रच्यौ       | ३८       | पूरत मधुरे वैनु रसाल         | ३०       |
| नवल निकुंज में जैवत मोहन    | ३७१      | पौढे राधिका के संग           | ३०२      |
| नवल वानिक बन्यो अंग-अंग     | ३८३      | पौढे हैं दोऊ पिय प्यारी      | ३००      |
| नवल लाल के संग झूलन         | ११४      | प्रगट भए फिरि धृष्णुभ        | ६२       |
| नवल हिंडोरना हो साज्यौ      | १२०      | प्रगटी नागरि रूप-निधान       | ८        |
| नागर नंदकुमार मुरली हरत     | १४२      | प्रगटे श्रोविड्गल बाल गोपाल  | ६१       |
| नाचति रास में गोपाल-संग     | ३७       | प्राननाथ सों सुनि हो भामिनि  | २६४      |
| ना तरु लीला होती जूनी       | ८५       | प्रोति तो काहु सों न कीजै    | २२२      |
|                             |          | प्रेम सों झुकि झुकि मिलवत    | २०३      |

| प्रतीक                      | पदसंख्या | प्रतीक                      | पदसंख्या |
|-----------------------------|----------|-----------------------------|----------|
| <b>क</b>                    |          | <b>क</b>                    |          |
| फुटिफट किन लै हौं घेरि      | १९०      | बोलत स्याम मनोहर बैठे       | २४८      |
| फूलनि कौ सेहरौ ढूलहै        | ३८०      | बोले माई ! गोवर्द्धन पर मोर | ९८       |
| <b>ब</b>                    |          | <b>भ</b>                    |          |
| बतियां तेरी ये जिय भावति    | २४७      | भक्त-इच्छा पूरन जमुने जू    | ३९६      |
| बंदे जो जबहिं मान धरि       | २८८      | भक्त (नि) कौं कहा सी करी    | ३९७      |
| बनी राधा गिरिधर की जोरी     | १७१      | भयो सुत नंद कें चलो         | २        |
| बरजि-बरजि हारे वरजत न       | १७९      | भामिनि ! छांडि दै किन       | २७७      |
| बरनों श्रीवल्लभ अवतार       | ८३       | भावत (है) तोहिं टॉड कौ      | ३९८      |
| बरिखा कौ आगमु भयो           | ३४७      | भीजत कब देखोंगी नैनां       | १०१      |
| बलि-बलि आजु की वानिक        | ३७८      | भीजत कुंजनि में दोउ आवत     | १००      |
| * बसे हरि राधिका के भवन     | ०        | मोजन करत नंदलाल             | ३७२      |
| बहुरि निहोरत स्याम धनी      | २०४      | <b>म</b>                    |          |
| * बादर झूमि-झूमि उलरि       | ०        | मंजुल कल कुंज देस           | ३९       |
| * बालक नंदराइ-घर हीरा       | ०        | मथनियां आनि उतारि           | २१       |
| बालक ही तें चोरिये हो       | १३०      | मदन गोपाल गोवर्द्धन         | ५३       |
| बिल्लुरनो इहै व किनि कियो   | ३५७      | मदन गोपाल मिलन कों          | २९४      |
| * बिराजत रंग महल वलवीरा     | ०        | मदन गोपाल हठीलौ             | २०       |
| बिलगु जिनि मानों री         | १३१      | मदन मोहन सों प्रीति         | २४२      |
| बिसरि गयो माई लाल हिं       | २०५      | मन मोह्यौ री मोहन           | २२६      |
| * विहरत बंसीबट के तीरा      | ०        | मन वच थकित करों कैसी री     | २९०      |
| बिहारीलाल आई छाक            | १७४      | मनयो न मानें मेरौ           | २५३      |
| बीते हो माधव एते दिना       | ३४०      | माई कछु न सुहाइ मोहिं       | ३५३      |
| बैठे दोऊ झ़लत कुंज          | ३८९      | माई गिरिधर के गुन गाऊं      | २२९      |
| बैठे लाल फूलनि के चौबारे    | ८१       | माई तेरे फूलिवे कौ-न्याउ    | ३१४      |
| * बैठौ भैया मंडल में सब संग | ०        | माई री नागर नंदकुमार        | २१७      |
| बैठ्यो आइके बन मांहि        | ३९९      | माई री स्याम लग्यौ संग      | २४१      |
| बोलत कान्ह कुमुद बन         | २७८      | माई हो होरी खिलाइ           | ७७       |
| बोलत कान्ह निकुंजं          | २५५      | मात जसोदा राखो बांधै        | १२५      |

| प्रतीक                        | पदसंख्या   | प्रतीक | पदसंख्या |
|-------------------------------|------------|--------|----------|
| मानिनी मान तज्यौ तब           | २७९        |        |          |
| मिले की फूल नैनाइ             | ३१३        |        |          |
| मुदित झुलावत आपु अपुने        | ११६        |        |          |
| * मुरली धरी गिरिवर-धरन        | ०          |        |          |
| मेरी अँखियनि यही टेव          | २१६        |        |          |
| मेरी बात तू मानि री           | २६६        |        |          |
| [मेरे लाडिले गोपाल गोवर्द्धन] | [५६]       |        |          |
| मेरौ मन तौ हरि के संग         | २३३        |        |          |
| मोतिनि मांग विथुरी            | ३०५        |        |          |
| मोरे जिय तौही तें परति        | २११        |        |          |
| [मोहन करत मुरली गान]          | [३१]       |        |          |
| * मोहन निरखि सीतल होत         | ०          |        |          |
| * मोहन बन तें आवत नीके        | ०          |        |          |
| * मोहन मदन गोपाल शाखिका       | ०          |        |          |
| मोहन मधुर कूजत वेनु           | २६         |        |          |
| मोहन (मन) झूलत बह्यौ          | ८०         |        |          |
| मोहन मूरति जिय में बसी        | २३५        |        |          |
| मोहनराह बोली री अध            | २८९        |        |          |
| मोहनराह लीनी लाइ              | २९५        |        |          |
| मोहन लाल बाल हरखि             | १७८        |        |          |
| मोहन हरि मानि लई तेरी         | २६७        |        |          |
| मोहन हरि मोहिनी तोहिं         | ११७        |        |          |
| मोहि धरी इक झूलन              | ११५        |        |          |
| मोहिनी मेली हो मधु            | २१९        |        |          |
| मोह्यौ री ब्रज-मोहन           | २४६        |        |          |
| य                             |            |        |          |
| यह कौन है री याहि दान         | १९         |        |          |
| यह गति नांचि नांचि लई         | ४०         |        |          |
| यह सुख देखो री तुम            | ९          |        |          |
| या तें तू भावति मदनगोपालै     | ४१         |        |          |
| र                             |            |        |          |
| * रंग रंगीलौं छैल छबीलौ       | ०          |        |          |
| रंगीले री छबीले री नैना       | १५०        |        |          |
| रच्छा बांधति जसुधा मईया       | १२७        |        |          |
| रतन खचित कंचन कौं             | ५          |        |          |
| रथ बैठे मदनगोपाल              | ८८         |        |          |
| रथ बैठे श्री त्रिभुवननाथ      | ९०         |        |          |
| रथ पर राजति सुन्दर जोरी       | ८९         |        |          |
| रसमसे नैना तेरे निसि          | ३०६        |        |          |
| <b>रसिकनी रस में रहति</b>     | <b>१७२</b> |        |          |
| रसिक रास सुख विलास            | ४५         |        |          |
| रह्यौ ढरि स्याम दुमालौ        | ३७९        |        |          |
| राखी बांधति है नंदरानी        | १२६        |        |          |
| राधा के संग पौढे कुंज         | ३०१        |        |          |
| राधे जू सोमा प्रगट मई         | ७          |        |          |
| राधे तै मान मदन गढ            | २९१        |        |          |
| रास मंडल बने गिरिवर           | ३२         |        |          |
| रास में गोपाल लाल             | ४२         |        |          |
| रास रंग नृयत मान              | ३४         |        |          |
| रास रथ्यौ नंद लाला            | ४३         |        |          |
| रास रस गोविंद करत             | ४४         |        |          |
| रास विलास रंग भरि             | ३३         |        |          |
| रिमि-झिमि बरखत मेह प्रीतम     | ९१         |        |          |
| रिमि-झिमि रिमि-झिमि घन        | २६२        |        |          |
| रिमि-झिमि रिमि-झिमि बरसत मेह  | ३०३        |        |          |
| *री झुकि-झुकि झूलत            | ०          |        |          |
| री राधे बदन तेरौ विधि         | १६५        |        |          |
| रूप देखि नैननि पलक            | २३२        |        |          |
| रूप मनोहर सांवरौ नंदजू        | २०२        |        |          |

| प्रतीक                             | पदसंख्या | प्रतीक                    | पदसंख्या |
|------------------------------------|----------|---------------------------|----------|
| ल                                  |          |                           |          |
| *ललना माधुरी भूरति मन              | ०        | श्रीलछमन-एह आजु           | ८२       |
| लला रे आजु अवेरो आयो               | १३४      | श्रीविठ्ठल चरन-प्रताप तें | ६४       |
| [लाल के वदन पर आरती] [१९१]         |          | श्रीविठ्ठल जू के चरन कमल  | ६३       |
| लाल तेरी चितचनि चित                | २०७      | स                         |          |
| लाल देखौ बरसन लाग्यौ               | १०३      | सखि कहा कहों तुव रूप      | १६०      |
| लालन इतनि बार लौं                  | ३२२      | सखि तेरी मोहिनो टेढी      | १६६      |
| *लालन कटि पीरो पीताम्बर            | ०        | सखि तेरे चपल नयन अरु      | १५८      |
| लाल बन भयो सकल                     | १८१      | सखि तेरे तन की सुंदरता    | १६१      |
| लाल मिलन कौ आगम                    | २४३      | सखि हौं कहा जानों संकेत   | २४४      |
| लै राघे गिरिधर दै पठई              | २९२      | सखी तू देखि मदनगोपाल      | १५७      |
| *लैहें री हम लैहें रस              | ०        | सखी री जिनि व सरोवर       | १६७      |
| लोचन करमरात हैं मेरे               | २१८      | सखी री जीवति हौं मुख      | २४५      |
| लोचन मिलि गए जन्म चारों            | १९८      | सखी री बुंद अचानक लागी    | १०५      |
| व                                  |          | सखी री यै बडभागी मोर      | १०२      |
| वदन की भाँति सबै सखि               | १४५      | सखी री सौने सीतल लाग्यौ   | २९३      |
| * विधाता अवलनि की                  | ०        | सब व्रज अति आनंद          | ३        |
| विधाता एकौ विधि न                  | १६२      | सरद सरोवर सुभग            | १५२      |
| विधि कै रचे विधाता                 | १६४      | सांझ के सांचे चोल         | ३२८      |
| विरह वान की चोट जु                 | ३३६      | सांझ जु आवन कहि गये       | ३२१      |
| वे देखि बरत झरोखे दीपक             | २९९      | सार हिं श्रीवल्लभ-पद      | ४००      |
| व्रज पर नीकी आजु घटा               | ९७       | सारी भीजि है नई           | ९२       |
| व्रज पर स्थाम घटा                  | ५८       | सिर परी ठगौरी सैन की      | ३९०      |
| व्रज में गोकुल चंद बिराजे          | ३८१      | सिसकि सिसकि रही           | ३३३      |
| *व्रज में बड़ी मेवा टेंटी [भूमिका] |          | * सीतल सदन में भोजन       | ०        |
| श                                  |          | सींवा नैननि तेरे को       | १७०      |
| श्रीजमुना अगनित गुन                | ३९३      | * सीस हुमालौ नंद जू कौ    | ०        |
| श्रीजमुने पर तन मन प्रान           | ३९५      | * सीस सोहै कुलहै चंपक     | ३८६      |
| [श्रीराधा सोभा प्रगट भई]           | [७]      | * सुघर बना संग जागी       | ०        |
|                                    |          | सुंदर अति जसुमति कौ       | ३६५      |

| प्रतीक                   | पदसंख्या | प्रतीक                     | पदसंख्या |
|--------------------------|----------|----------------------------|----------|
| सुंदर करत गान गोपाल      | ४७       | हरि के नैननि की उपमा       | १४९      |
| सुंदरता की सींवा नैन     | १४४      | हरि के बोलत तू चलि         | २५७      |
| सुंदर सॉवरे कछु कियो     | २१५      | हरि कौ वदनु देखत पलु       | २५०      |
| सुनहु गोपाल एक व्रज      | ३६०      | हरि जु आवन कहो             | २५६      |
| सुबल गिरि ऊपर चढि        | १७३      | हरि संग बिहरत है           | ३७०      |
| सुभ दिन सुभ घरी सुभ      | ६५       | हरि सर्माप विनु कैसे भरों  | ३५२      |
| सुरंग हिंडोरें झूलें     | १०६      | हरथौ मन चपल चितवनी         | २३१      |
| सोइ उठी वृषभान—किशोरी    | ३१८      | हिंडोरें झूलत स्यामा स्याम | ११७      |
| सोभित लाल परधनी          | १५६      | हिंडोरें ब झुलवन आई        | ११८      |
| सोहत आड वंद अति नीकौ     | ३७६      | हिंडोरें हारे झूलत व्रज    | १०८      |
| सोहै कटि सेत परधनी       | ३६७      | हिलगनि कठिन है या          | २१३      |
| सोहै सिर कनक के वरन      | ३७७      | [हो जीते हो मावौ एते]      | [३४०]    |
| स्याम सँग स्वामिनी विलास | ४६       | [हो रावलि राधा प्रगट]      | [७]      |
| स्याम सिर सोभित पगा      | ३८८      | होरी कौ है औसह             | ७५       |
| स्याम सुंदर रैनि कहां    | ३३२      | होरी खेलत कुंवर कन्हाई     | ७९       |
| स्याम सुनु नियरें आयो    | १०४      | हो हो होरी कहि खेलत        | ७८       |
| स्याम सुभग तन सोभित      | ६६       | हों जगाई री माई बोलि २     | ३४८      |
| *स्याम संग वतियाँ करत    | ०        | [हों तो झूली री रमकि]      | [११२]    |
| ह                        | ११       | हों बरजति हों माई री       | २७४      |
| हमारो दान दै गुजरेटी     |          | हों श्रीवल्लभ की बलिहारी   | ८४       |

